सम्पादक: हेतु भारद्वाज

अनुक्रम

प्रथम संस्करण 1989

मूल्य : पैंसठ रुपये मात्र

आवरण : स्वामी अमित

प्रकाशक . राजस्थान साहित्य अकादमी
सेक्टर-4, हिरणमगरी, उदयपुर-313 001

मुद्रक . सांखला प्रिन्टर्स
चन्दन सागर, बीकानेर

TAPTI DHARTI KA PER (An Anthology of Hindi Short Stories of Rajasthan) Edited by HETU BHARDWAJ Rs. 65 0

अनुक्रम

सम्पादक: हेतु भारद्वाज

अनुक्रम

तपती धरती का पेड़

भूमिका

ा की विकास-यात्रा भले ही बहुत पुरानी न हो, किन्तु समृद्ध
तोकि अपने जन्म-काल से ही हिन्दी में कथ्य एवं शिल्प दोनों
उच्चकोटि की कहानियाँ लिखी जाती रही है। यद्यपि हिन्दी
प्रारम्भ भावुकतापूर्ण, कौतूहलपूर्ण तथा काल्पनिक कहानियों से
न्तु हिन्दी कहानी ने शीघ्र ही वास्तविक जीवन की यथार्थ और
मीन पर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी
।' शीर्षक कहानी इस तथ्य का प्रमाण है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी
वल यथार्थ की जमीन पर स्थापित किया प्रत्युत इस विधा को शिल्प
थ्य दोनों ही दृष्टियों से एक ऐसी ऊँचाई प्रदान की कि कहानी
त्यक विधा के रूप में लोकप्रिय होने के साथ-साथ अभिव्यक्ति का सशक्त
म बनी। प्रेमचन्द के ही समकालीन प्रसाद ने 'आकाशदीप' तथा
कार' जैसी आदर्शवादी किन्तु शिल्प की दृष्टि से चुस्त दुरुस्त कहानियाँ
के साथ ही 'मधुआ' 'गुण्डा' 'छोटा जादूगर' जैसी यथार्थवादी कहानियाँ
दी। यद्यपि यहा से हिन्दी कहानी में दो धाराएं प्रचलित हुई जिन्हे प्रेमचन्द-
म्परा तथा प्रसाद-परम्परा के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

न्तु अब यह बात साफ हो गयी है कि हिन्दी कहानी की मुख्य धारा वही
जो अपने को प्रेमचन्द से जोड़ती है। जब हम राजस्थान में लिखी गयी
हिन्दी कहानी के [illegible] यात्रा पर दृष्टिपात करते है तो अनायास ही दो
प्र [illegible] जस्थान के (1) कौन-कौन कहानीकार अपनी
[illegible] ी मुख्य धारा से जोड़ पाए है? (2) हिन्दी
[illegible] म कौन-कौन [illegible] नीकार अपनी पहचान बना

[illegible] चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का
[illegible] कहानी साहित्य में अपना
[illegible] देन है, अब राजस्थान
[illegible] रही है। पुरानी पीढ़ी
[illegible] भाव रहा है। जयमुद्दार

स्वतन्त्रता के पश्चात् यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने हिन्दी कथा साहित्य में अपना स्थान बनाया है। राजस्थानी जन-जीवन की झाँकी सही अर्थों में 'चन्द्र' की कहानियों में ही मिलती है। वे स्वयं कहानी में दो चीजों को महत्व देते हैं—रोचकता और सोद्देश्यता—इन दोनों चीजों का भरपूर निर्वाह हमें उनकी कहानियों में मिलता है। 'चन्द्र' की कहानियों के विषय जीवन के विविध, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक क्षेत्रों में चुने होते हैं तथा समस्या की गहराई तक जाना 'चन्द्र' की कहानियों को गरिमा प्रदान करता है। सहजता, सरलता तथा स्पष्टता 'चन्द्र' की कहानियों के विशिष्ट गुण हैं। उनकी कहानियों के पात्र अत्यन्त सजीव तथा मानवीय संवेदनाओं से भीगे हुए हैं। 'राम की हत्या', 'एक देवता की कथा' से लेकर 'उस्मानिया' 'जनक की पीड़ा' तथा 'अजीबदास' तक 'चन्द्र' की कहानी यात्रा पर्याप्त समृद्ध है तथा उनके बाबत श्री रामदेव आचार्य ने ठीक ही लिखा है, 'चन्द्र के लिए कहानी लिखना कोई औपचारिकता नहीं है, बल्कि उनके कलाकार मन का रचनात्मक धर्म है। न तो व्यावसायिक चोचलेबाजी से वे क्षतिग्रस्त हुए न उन्होंने जिन्दगी का समझौता-परस्त नक्शा रचा। अपनी बुनियादी आस्थाओं से कभी विरक्त न होने वाले चन्द्र जीवन के सन्धि-प्रस्तावों के समक्ष कभी समर्पित नहीं हुए।' चन्द्र पुरानी तथा नई पीढ़ियों के सेतु हैं, किन्तु कथा-लेखन के क्षेत्र में वे सर्वाधिक सक्रिय लेखक हैं।

चन्द्र की तरह ही मोहनसिंह सेंगर तथा शरद देवड़ा भी नयी तथा पुरानी पीढ़ी के बीच में खड़े हैं। सेंगर की कहानियों में समस्याओं की प्रधानता है तथा उनका स्वर विद्रोह का स्वर है, पर वह अधिक यथार्थवादी तथा नग्न है। उनकी कहानियाँ प्रगतिवादी विचारधारा तथा सामाजिक समस्याओं से सम्पृक्त हैं, किन्तु कहानियों में समस्याओं का सरलीकरण अधिक मिलता है। शरद देवड़ा ने अपनी समस्याओं में जीवन के विभिन्न स्तरों, स्थितियों तथा विसंगतियों को ढंग से देखा और समझा है तथा 'मास्टरनी बाई' 'भूख' 'खिड़की की चौसट' जैसी कहानियाँ शरद देवड़ा की कथा-दृष्टि की परिचायक हैं, पर पत्रकारिता के प्रति झुकाव ने देवड़ा के कथा-लेखन को आहत किया है। बीच की पीढ़ी के एक और कथाकार हैं—विशन सिन्हा, जिनकी कहानियाँ मार्मिक हैं, रोचक हैं, किन्तु उनकी कहानियाँ गहरा प्रभाव नहीं छोड़तीं। फिर भी 'हरामी' तथा 'लाडली' उनकी अच्छी कहानियाँ कही जा सकती हैं जिनमें गरीब तथा निम्न वर्ग की आर्थिक विषमताओं का चित्रण हुआ है। बीच की पीढ़ी के कहानीकारों में 'चन्द्र' ही ऐसे कथाकार हैं जिन्हें हिन्दी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में ख्याति मिली है।

'अन्धा कुआ' 'ब्रह्मराक्षस' 'दोहराव' जैसी कहानियों में उन्होंने राजस्थान के आँचलिक परिवेश के साथ मशीनीकरण के बीच घुटते मानवीय जीवन की कथा कही है। 'अजनबी आकाश' में भी नगरीय जीवन के दर्द का तीखा अहसास है।

राजस्थान के कहानीकारों में मणि मधुकर सब से चर्चित नाम रहा है। 'हवा में अकेले' 'भरतमुनि के बाद' तथा 'एक वचन बहु वचन' मणि मधुकर के चर्चित कथा-सकलन हैं। मणि मधुकर में प्रयोगशीलता भी है, और जीवन स्थितियों को गहराई से पकड़ने की शक्ति भी। उनकी कहानियों में फन्तासी का खूब प्रयोग हुआ है। 'हवा में अकेले' तथा 'विस्फोट' उनकी अच्छी फन्तासियाँ हैं। उनकी कहानियों में राजस्थानी जीवन का खुरदुरापन भी है तो यहाँ की भयावहता भी है। 'उजाड और अधमरे' में मरु-जीवन की अकाल-जनित विभीषिका का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। 'चुपचाप दुख', 'एक वचन . बहु वचन', 'चरित्र' आदि कहानियाँ समकालीन जीवन के विविध सन्दर्भों के अनेक पक्षों को उद्‌घाटित करती है। मणि मधुकर की कहानियों की एक सीमा यह है कि वे स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो को यौन स्तर पर बहुत जल्दी उतार लाते है तथा गलाजत की सीमा तक भी पहुँच जाते हैं। 'भरत मुनि के बाद' कहानी से यह तथ्य सहज ही उद्‌घाटित हो जाता है।

युवा कथाकारों में अशोक आत्रेय की कहानियो ने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया था। अशोक आत्रेय ने अपनी कथाओं में परिवेश की पहचान करने की सार्थक कोशिश की थी। 'गोल नहीं है धरती' 'तैंतर' 'समयाहत' 'सोलह घण्टों की धुन्ध' 'तुम लौट जाओ' उनकी अच्छी कहानियाँ है, और वे लेखन में सक्रिय हैं।

ईश्वर चन्दर ने खूब लिखा है तथा उनकी कहानियों की चर्चा भी खूब रही है। 'न मरने का दु ख' 'आतक' आदि उनके चर्चित कथा-सकलन हैं। निम्न-मध्य वर्ग की तकलीफों का चित्रण ईश्वर चन्दर की कहानियों का प्रमुख फलक है। ईश्वर चन्दर की विशेषता यह है कि वे अत्यन्त सहजता के साथ जीवन की भयावहता को उभार देते हैं। उनकी कहानियों में उभरी करुणा मानव जीवन में व्याप्त आर्थिक गैर-बराबरी के कारण उभरी करुणा है। आर्थिक गैर-बराबरी आदमी को किस कदर बेरहम बना देती है, इसका अच्छा उदाहरण उनकी 'न मरने का दु ख' कहानी है जिसमें पति-पत्नी माँ के न मरने पर दुखी है। 'कमजोर पैसों वाला घर' कहानी में भी मानवीय रिश्ते अप्रत्याशित हादसे से गुजरते हैं। श्री नन्द चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा

है—ईश्वर चन्दर की कहानियों की बुनावट एक भिन्न तरीके की है, जिसका विस्तार अन्दर ही अन्दर होता है। बाहर से गुम्बज, मीनार कुछ भी उठे हुए नजर नही आते। कहानी बहुत मामूली जगह से शुरू होगी फिर एक आन्तरिक रचावट के जरिये फैलती जाएगी। मेरी दृष्टि मे यह विशिष्टता ईश्वर चन्दर की है, और इसी तरह वे एक कतार मे खड़े कहानीकारो से भिन्न होते है और महत्वपूर्ण भी।

आलमशाह खान ने ज्यादा कहानियाँ नही लिखीं पर जो लिखी हैं उन्होंने समीक्षकों, पाठको का ध्यान अपनी ओर खींचा है। सजीव परिवेश, अभिव्यक्ति का खुलापन, सहज अनुभूति, तीखे सवाद तथा भाषा का टटकापन उनकी कहानियो की विशेषताएँ हैं। 'परायी प्यास का सफर' तथा 'एक गधे की जन्मकुण्डली' संग्रहो की कहानियो मे सभी बाते देखी जा सकती हैं।

राम जैसवाल की कहानियाँ सभी अच्छी पत्रिकाओं मे छपी हैं। वे मूलत: चित्रकार हैं, अत: उनकी कहानियो मे दो कलारूपो का परस्पर अतिक्रमण देखा जा सकता है। राम जैसवाल मध्यवर्ग के जीवन की विसगतियो का चित्रण करते हैं किन्तु एक चित्रकार की बारीक कलात्मक बुनावट उनकी कहानियों की सीमा बन जाती है। कमर मेवाडी की 'रोशनी की तलाश', 'बौना', 'उसने कहा', 'वह' आदि ऐसी कहानियाँ है, जो कमर मेवाडी की कथा-क्षमता का परिचय देती है।

स्वय प्रकाश एक दृष्टि-सम्पन्न कथाकार हैं, जिनके पास निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की विपन्नताओ और उन विपन्नताओ के मूल कारणो को पकड़ने की गहरी क्षमता है। उनकी कहानियाँ मानवीय त्रासदी की कहानियाँ हैं। 'सूरज कब निकलेगा' 'आसमा कैसे कैसे' सकलनो की कहानियाँ इस तथ्य का प्रमाण है। वे निरतर कहानी-लेखन मे सक्रिय हैं।

राजस्थान मे हिन्दी कहानी के ताजा हस्ताक्षरों में मोहरसिंह यादव का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनकी कहानियो मे राजस्थानी जीवन के प्रभावो को पूरे तीखेपन से उभारा गया है। उनसे हिन्दी कहानी को बहुत आशाएँ है।

हरदर्शन सहगल ने खूब लिखा है और उनकी कहानियाँ पर्याप्त चर्चित रही है। उनकी कहानियों मे जीवन के विविध पक्षो की झाकियाँ मिलती है तथा वे छोटी-छोटी घटनाओ को लेकर महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखने मे सिद्धहस्त है।

इधर कहानीकारो की नयी पीढी कहानी क्षितिज पर उभरी है जिनमे से कुछ के नाम तो अखिल भारतीय स्तर पर चर्चित हो रहे है, मालचन्द, सूरज

पालीवाल, हसन जमाल आदि ऐसे ही नाम है। नयी पीढी के कहानीकारो की क्षमताओ का परिचय इस सग्रह मे सकलित कहानियो मे मिल सकेगा।

'राजस्थान के कहानीकार' शृखला के इस तीसरे सकलन का सम्पादन दायित्व मुझे सौपा गया, इसके लिए मै अकादमी के अध्यक्ष, सचिव तथा उसकी सचालिका का कृतज्ञ हूँ। मेरा अपना विचार ऐसा रहा कि अकादमी के माध्यम से राजस्थान की हिन्दी कहानी की एक एन्थॉलॉजी प्रस्तुत हो, इस-लिए मैंने इस सकलन मे उन्ही कहानीकारो की कहानियाँ ली, जिनकी कहा-नियाँ 'राजस्थान के कहानीकार' (भाग 1 और 2 मे) सकलित नही थी। इस प्रकार यह सग्रह एक शृखला की कडी है तथा यह शृखला अकादमी के प्रयासो से आगे भी जारी रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस सकलन को तैयार करते समय कहानीकार बधुओ का मुझे मुक्त एव स्नेहपूर्ण सहयोग मिला, इसके लिए मैं सकलित रचनाकारो के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

इस सकलन मे सकलित कहानियाँ राजस्थान के कहानीकारो की रचना-क्षमता का परिचय देने मे समर्थ होगी, ऐसा मेरा विश्वास है तथापि पाठको और समीक्षको के सुझावो की मै प्रतीक्षा करूगा।

—हेतु भारद्वाज

छावनी, नीम का थाना
जिला-सीकर (राज)

अनास्तित्व

अशोक आत्रेय

मैं अब अकेला हूँ। यहा बाग की एक बेच पर बैठा हूँ। मेरे आसपास कोई नही। सडक भी नही। घर भी नहीं। अस्पताल भी नही। अफसर नहीं। पत्नी नहीं। बाग की यह अकेली बेच मेरी आज की उपलब्धि है।

मुझे भय है, थोडी सी देर बाद कोई आगे-पीछे आसपास दिख जाएगा। मेरी समस्या शुरू हो जाएगी। दिन निकलने लगेगा। आदमी सडकों से होकर इधर आ जाएँगे। मेरा अकेलापन मुझसे छीन लिया जाएगा।

बाग में अकेले होने के लिए जरूरी है—आपका कोई 'घर-बाहर' नही हो। मेरा घर-बाहर तो है, पर इधर मैं अकेला हो रहा हूँ। घर से बाहर आकर। तीन बजे के आसपास। रात की तीन बजे। तीन बजे निकल जाता हूँ मैं घर से बाहर और सुनसान रास्ते से होकर इस बाग मे आ जाता हूँ।

यह बाग मेरा ही है। इसके कई सारे पेड मेरे लगाए हुए है। कीकर-बाडी मेरी सबसे बडी उपलब्धि है। बडे-बडे लोग यह कीकर-बाडी देखते हैं और तारीफो के पुल बांधते है। ऐसी कीकर-बाडी दुनिया के किसी भी बाग मे नही है, ऐसा कहते है लोग। मैं लोगो की बाते सुनता हूँ, और खुश हो लेता हूँ। ..पर अब जाने क्या हो गया है कि मैं आदमी से बचकर रहना चाहता हूँ। कतराता हूँ। नजरें नहीं मिलाता। आदमी देखते ही मैं घबरा जाता हूँ। मुझे कभी-कभी कँपी सी होने लगती है। बसों मे आदमी औरतें बच्चे। ठसाठस। ठेले चलाते नगे भूखे पसीने से चिपचिपाते आदमी।

भारी बोझ से भरी धूप मे साईकल रगडते आदमी, दफ्तर जाते। टायर सोल की चप्पल पहनकर ट्यूशन के लिए दूसरो के बच्चे पढाते आदमी। राशन पानी के लिए दीन हीन हुए उखडे पलस्तरो की तरह अपनी जिंदगी को चौराहो, गलियो, सड़को पर पोस्टरो की तरह चिपकाते आदमी। हर जगह हर गली कूचे मे आदमी। टूटे फूटे आदमी। ऊचे-नीचे आदमी। दम तोडते आदमी। गाली-गलौच करते आदमी। भागने-दौडते और हांफते आदमी। घिच घिच

करते आदमी। आदमी, आदमी और आदमी। सारे संसार मे दूर-दूर तक भरे आदमी।

मैं तब बहुत खुश होता हूँ जब आदमी सोते है। जब आदमी खर्राटे भरते हैं। जब आदमी अपना घर छोड देता है तो, घर मे शांति छा जाती है। खिडकियाँ हँसने लगती है। दीवारें तनाव की मुद्रा छोडकर ढीली पड जाती हैं। किन्तु तब सड़कों पर मारम्मार शुरू हो जाती है। यह स्थानान्तरण अब सड़कों पर, दफ्तरों मे, होटलों मे। मक्खियों, सूअरो, कुत्तो की जगह लेने लगता है यह आदमी।

मैं इसीलिए सारे आदमी घरों मे छोड़कर चुपचाप कुछ देर के लिए इधर बाग मे आ जाता हूँ। यह बाग मेरा है। इस बाग का चप्पा-चप्पा मेरा जाना पहचाना है। इसकी कमल तलाई। कितना अच्छा लगता है जब मेरे आसपास केवल कमल तलाई होती है, दूधिया कमलों की खिली कतारें, एक पर एक उलझी हुई। यह कमल तलाई मेरी खुशी मे और अधिक नाचने लगती है जब मैं सब कुछ छोडकर अकेले मे मिलने आता हूँ इस जगह। दूर-दूर तक केवल मैं रहता हूँ या यह कमल तलाई। इसके चारो ओर फैले पेडो के झुण्ड। जामुन, अमरूद के असख्य पेड। एक-एक पेड़ मुझे जिंदा रखता है और मुझे कसमें दिलवाता है कि मैं यों ही इनसे अकेले मे मिलता रहूँगा। चाँदनी रात मे यह कमल तलाई जैसे एक स्वप्नलोक सी बन जाती है। सचमुच परियों की कहानी सा लगता है सब कुछ। सगीत मे डूबा हुआ। धीरे-धीरे तैरता हुआ। सब कुछ हल्का-हल्का। सब कुछ बेहद खुश मिजाज।

किन्तु मेरी इस बगिया मे दिन निकलते-निकलते जैसे भूत-प्रेतो के चक्कर लगने लगते है। सबसे पहले नजर आते है कुछ बूढे लोग। खूसट, तमाम उम्र जो एय्याशी करके भी चुप नही हो गए है। चले आते है बाग की हवा खराब करने। अपनी पुरानी दुनिया अपने से चिपकाकर आते है और मेरे पास की किसी बेंच पर बैठकर लगते हैं उधेडने अपनी ज़िंदगी के पुराने किस्से। मै इन बूढे खूसट लोगो से बडा दुखी रहता हूँ। इनकी किसी से पटरी नही बैठती। कोई इनसे खुश नही रहता। न ही ये किसी के प्रति खुश रहते है। सबकी शिकायतें करते हैं। सरकार की। घर की। बीबी बच्चो की। पडोसियों की। अखबारो की बातें करते हैं सुबह सुबह और बदबू फैलाते है।

बूढो के साथ-साथ कुछ जवान भी चले आते है। कसरत करने। इधर उधर हाथ पैर मारते है। तेज धीरे चलते है। ऊँचा नीचा होते है। सीना फुलाते हैं। हवा भरकर छोड़ते हैं। पैरों के जूते खोलकर दूब पर चलते हैं। ओस

कणों की शीतलता का स्पर्श पाकर खुश होते है । जाने क्या-क्या सोचते है बेचारे यहाँ आकर, किन्तु दुर्भाग्य की शुरुआत हो जाती है उनकी, जैसे-जैसे दिन निकलने लगता है। उनके चक्कर शुरू हो जाते है। धूप के साथ-साथ उनकी जिंदगी की तबाही का सिलसिला शुरू हो जाता है। बच्चो की स्कूल की फीस, घर का राशन-पानी, बीवी की दवा, अफसर की डॉट, बूढे मा-बाप की आलतू फालतू की बाते, बहनो की शादी की चिंताएँ। छोटे भाइयो की नई-नई माँगें। कभी नई चप्पल की, कभी साईकल ठीक कराने की, कभी सिनेमा के लिए पैसा, कभी किताब की जरूरत। ये बेचारे जवान आदमी जैसे दिन निकलते-निकलते कपडे धोने के मशीन मे बद कपडो की तरह ठुस जाते हैं, फिर जमकर धुलाई होनी है सारे दिन भर इनकी।

सब कुछ इसी तरह घेरने लगता है दिन निकलते-निकलते। घरो से निकलता है धुआ और सडको पर भरने लगता है। पेटीकोट पहने बच्चो को गुसल कराती औरते दिखने लगती है, जाँघिया बनियान पहने कधो पर पानी की चरी लिये आदमी सीढियाँ चढता है उतरता है। जवान लडके-लडकियो के टेबल लेम्प बुझने लगते है और यो रोमास बीच मे ही टूट जाता है। उनकी जिंदगी की चिचपिच शुरू हो जाती है। कुछ लोग साईकल लेकर अपने काम पर निकलने लगते है। कुछ लौटते हैं रात की ड्यूटी के बाद। मदिरो, मस्जिदो मे हाय हूय शुरू हो जाती है। बूढी टेढी-मेढी औरते और थुलथुले पण्डो पुजारियो की अवैध साझेदारी का सिलसिला शुरू होने लगता है। कोई एक-आध पागल आदमी नग-धडग होकर किसी बिजली के खम्भे के नीचे की अपनी 'गिरस्ती' को समेटकर सडक पर चलना शुरू कर देता है। अपने कपड़ो पर कुछ और चिथडे लटका लेता है। दूध वालो की फेरियाँ लगने लगती हैं, और दूकानो, घरो, सडको, बरामदो, कमरो मे झाडुएँ लगने लग जाती हैं। नई सुगबुगाहट के साथ........और यो सारा कूडा-करकट आम रास्तो मे आकर जमा हो जाता है।

मेरी कमल तलाई और मेरी कीकर वाडी दिन की रोशनी के साथ उजडने लगती है। दिन की धूप और चिपचिपाहट से जैसे मेरे इस खास अपने हिस्से पर सूनी पागलपन उतरने लगता है। महिलाओ के मासिकधर्म की चिड-चिड़ाहट की तरह मेरी इस कमल तलाई और कीकर वाडी को कोई अपनी गिरफ्त मे ले लेता है और मैं इससे कट जाता हूँ। यह मेरे लिए अछूत-कन्या हो जाती है।

मेरे [illegible] फिसलना शुरू कर देती है। जैसे अपने आप एक युद्ध की [illegible] है। चीजें अपना स्वभाव बदलना शुरू कर देती हैं। ठहरी

और स्थिर चीजें भागती हुई लगती है और भागने दौड़ने वाली वस्तुओं को जैसे कोई मंत्र फूककर जड़ कर देना चाहता है। मेरी घबराहट का दौर शुरू हो जाता है।

मैं सोचने लगता हूँ अब इस दिन के बारे मे।....जैसे कोई अनाथ बच्चा सुबह-सुबह मेरी आँखो के सामने आ पड़ा हो। एक कपड़े मे, नाइलन की थैली मे सिकुड़ा-सिमटा। जिंदगी की भीख माँगता हुआ सा। यह दिन कोई छोड़ गया है मेरे लिए। उखड़ी हुई साँसो मे लिपटा हुआ। अपने आप में बंद। किन्तु मुक्ति के लिए छटपटाता हुआ।

मैं बाग की बेंच से उठता हूँ और लौटने लगता हूँ। मेरे पैर अपने आप चलना शुरू कर देते हैं। मेरी आँखे मुझे रास्ता बताती है। मेरे दिमाग में हलचल शुरू हो जाती है। मैं तेज-तेज कदमो से चलकर घर पहुँच जाता हूँ।....

कुछ देर की खिच की मानसिकता के बाद जैसे कोई घर बन निकलता है मेरे बादशाह के लिए।.... ..और यह बादशाह, यह मैं, शतरज के इन चौसठ घरो मे तालमेल बैठाने के लिए हाथ-पैर मारना शुरू कर देता हूँ। बहुत चाहने पर भी मैं इस चौसठ घरो की बस्ती मे अपने आपको बिल्कुल अकेला और असहाय महसूस करता हूँ।

सोचने लगता हूँ मैं—

'नही, मै नही लड़ूँगा, यह युद्ध। यह मेरे ऊपर थोपा गया है—मै चीखते-चीखते रह जाता हूँ। मेरे पाँव सीढियो पर ठिठक जाते है।

और अब . .

सबसे ऊपर की सीढी पर दिख जाता है एक साँप फन उठाए। साँप और सीढी का खेल शुरू हो जाता है। एक आतक की शुरुआत। ज्यो-ज्यो ऊपर जाना है, त्यो-त्यो नए खतरो से जूझना है। हर कदम पर खतरा। हर कदम पर रोमाच। मुझे इसी खेल का एक हिस्सा होना है। यही है मेरा अभिशाप शायद।.......चीखने चिल्लाने से कुछ नही बनने का।

भविष्याक्रांत

हरदर्शन सहगल

आज ही आया था यहाँ। नए स्टेशन पर चार्ज लिया था। बच्चे साथ नहीं थे। प्रतीक्षालय मे नहा-धो लिया था। स्टेशन के एक मात्र टी-स्टाल से चाय आ गई थी। चाय पीने के बाद, ए एम एम, यार्ड मास्टर, बुकिंग क्लर्क सब ने, अपने-अपने यहाँ खाना खाने का अनुरोध किया था। मेरी आदत है, जितना हो सके, आज के जमाने मे किसी पर, बोझा न डाला जाए। इस दृष्टि के पीछे यह एक और अच्छे पहलू है। मैंने सब को किसी तरह प्यार मे टाल दिया।

वैसे तो खास भूख थी भी नहीं, सोचा, जब लगेगी तो निकट के किसी होटल-ढाबे से कुछ खा-पी लूगा। इस बीच मैं सारी फाइलें, रजिस्टर आदि सरसरी तौर पर, देख लेना चाहता था।

तभी विश्वेश्वर, ट्रेन क्लर्क हाथ जोड़े मेरे सामने आ खड़ा हुआ। बोला—बड़े बाबू खाना तो आपको मेरे साथ खाना होगा। स्वर मे गहरे तक आत्मीयता उभर रही थी।

मैं एकाएक उसे मना नहीं कर सका। कहा-क्यों नाहक परेशान होते हो और घर वालों को भी....

—बड़े बाबू, घर वाली, बच्चों के साथ बाहर गई हुई है। अपने लिए खुद खाना बनाता हूँ। कोई सी एक सब्जी और चार रोटियाँ। थोड़ा अचार। परेशानी काहे की।

—अच्छा शटल के बाद चलेंगे आपके क्वार्टर।

—हाँ शटल के बाद ही। तब गाड़ियों का रश एकदम मदा पड़ जाता है। खाने के लिए लम्बा गैप मिलता है। पाँच नम्बर लाइन पर प्वाइंट्स-मैन हरी झंडी हिला रहा था। मालगाड़ी धीरे-धीरे रुक रही थी। विश्वेश्वर उधर ही बढ़ गया।

स्नान के बाद हम दोनों विश्वेश्वर के क्वार्टर पहुंचे। क्वार्टर बहुत करीने से सजा हुआ था। सब चीजें व्यवस्थित ढंग से लगी हुई थीं। इसलिए मुझे वहां खिड़की के पास बैठने में बहुत अच्छा लगा। विश्वेश्वर वहीं कुर्सी से खाना बनाने में जुट गया।

थोड़ी ही देर में हम खाने की मेज पर बैठे थे। कुछ देर तक विश्वेश्वर मुझे स्टाफ और अफसर के बारे बात के विषय में बताता रहा।

खाने के बाद मैंने उसके परिवार के विषय में पूछा तो विश्वेश्वर ने उत्तर दिया – ट्राई मारने गए हैं।

मैं इस, लगभग गप, मुहावरे का एकदम से कोई अर्थ नहीं निकाल सका। पूछा – कैसी ट्राई?

इस पर विश्वेश्वर जोर से खिलखिला पड़ा – साहब! यह हमारे घर का एक मुहावरा हो गया है। वह हँसा जरूर पर मैंने महसूस किया कि इस हँसी की तरंग के साथ कहीं पीड़ा का स्वर भी उठ-बैठ रहा है।

—अब आप थोड़ा आराम कर लें बड़े बाबू। विश्वेश्वर ने एक चारपाई पर मेरे लिए चद्दर बिछा दी।

मैं चारपाई पर, सिरहाने से कुहनी अटका कर अधलेटा हो गया – हाँ विश्वेश्वर भाई, आपने ट्राई वाली बात बीच में ही छोड़ दी।

—नौकरी-चाकरी के लिए ट्राई करने की बातें हैं बड़े बाबू, विश्वेश्वर ने मूढ़ा मेरी चारपाई के निकट खींचा और उस पर बैठते हुए आगे बोला-लड़के ने इस वर्ष एम. कॉम. फाइनल की परीक्षा दी है। पद्रह-बीस रोज में रिजल्ट निकलने वाला है। जरूर पास हो जाएगा। मैं सोचता हूँ, यह ट्राई वाला प्रसग, अब जाकर शुरु होता तो ज्यादा बेहतर रहता। मगर यह दो ढाई वर्ष पूर्व ही शुरू हो गया, जिसने लडके को सुखा कर रख दिया और साथ में घर वाली भी आधी रह गई।

—हूं, मैंने सिरहाना ठीक करते हुए विश्वेश्वर की ओर देखा तो वह आगे बोलने लगा।

—कुछ लोग नालायक औलाद, लापरवाह पत्नी की वजह से परेशान रहते हैं, मगर यहाँ लगभग स्थिति कुछ उल्टी ही चल निकली। विश्वेश्वर के अनुसार लडके शिशिर और घर वाली शीला के अलावा घर मे दो लडकियाँ भी हैं, जो अभी छोटी हैं। वे दोनो भी समझदार हैं। सभी बच्चे पढाई मे अच्छे हैं। पर शिशिर बड़ा होने के नाते अधिक जिम्मेदारी महसूस करता

है। अभी मे उसे छोटी बहनो की फिक्र है। ढाई साल पहले से ही सर्विस के निए फार्म भरने शुरु कर दिए थे उसने। साथ मे टाइप शार्टहैण्ड भी करता रहा। इस कार्य के लिए मा भी उसे यथोचित प्रोत्साहित करती थी, जिससे दूसरे तीसरे रिटन टैस्ट मे वह पास हो गया। उधर बी कॉम की परीक्षाए बिल्कुल सिर पर थी। तभी दो दिन पहले उसे इस बात की सूचना मिली कि वह पास हो गया है और अब – परीक्षाओ के बीच की कोई तिथि थी – कि उसे दिल्ली शार्टहैण्ड टेस्ट मे बैठना था। सहसा पूरे घर मे खुशी की लहर दौड गई। शिशिर भैया पास हो गए। शिशिर भैया पास हो गये। लेकिन लडका बेचारा बहुत परेशानी अनुभव कर रहा था। कहने लगा – मुझे कौन-सा पता था कि पास हो जाऊगा और एक-दो दिन के नोटिस पर शार्टहैण्ड के लिए भी बुला लिया जाऊगा ? सारी स्पीड गिरी पडी है

खैर जैसे-तैसे वह और उसकी मा दिल्ली चले गए। विश्वेश्वर के भाई साहब उसी विभाग मे अफसर है, लेकिन वह उनके सामने इस विषय मे जुबान नही खोलना चाहता था। किन्तु शीला के पास मा का जिगरा था। बोली – मैं कह लूगी। कौन किस से नही कहता ? देखूंगी। आजकल के जमाने मे और भी बहुत कुछ चलता है।

10638
12 490

इतना कह कर विश्वेश्वर कुछ देर के लिए रुका। मूढे पर करवट बदली और फिर से बोलने लगा।

—सातवे रोज जब शीला गाडी से उतरी, तो उसका मुँह लटका हुआ था। पीछे-पीछे शिशिर भी अटैची और बिस्तर-बद घसीटता हुआ कपार्टमेंट से बाहर आ गया।

स्पष्ट रूप से कोई भी प्रश्न करना बेमानी था। उनके चेहरो पर ही 'काम न बनने' का उत्तर उग आया था।

—चलिए। शीला फुसफुसा कर यही एक शब्द बोली, और हम क्वार्टर की तरफ चल दिए। विश्वेश्वर सोच रहा था, जाती बार शीला के चेहरे पर कितना-कितना उत्साह फूटा पड रहा था और वह एक ही धुन मे चहके जा रही थी—मैंने आप को बताया नही, पर मैंने आपके भाई साहब से बात कर ली थी। उन्होने यही कहा था कि शिशिर रिटन पास कर ले। आगे मै देख लूगा।

हाँ, शीला के इन शब्दो को तब विश्वेश्वर ने बडी मुलायमियत से धो दिया था कि वह भाई साहब से कुछ नही कहे। बच्चा जो कुछ अपने बलबूते पर करता

है, उसके असर से वह आगे का जीवन ठोस आत्म-सम्मान से जीता है। वगैरह-वगैरह।

अब घर में कदम रखते ही क्रोध से भरे शिशिर ने सारा सामान फर्श पर पटक दिया और सर्वा मौन साधी।

इधर पत्नी ने भी बोझिल गट्ठर फर्श पर पटकने शुरू कर दिए। — हाय, इतना पैसा खर्च किया। गाड़ियों के धक्के खाए, मगर आपके भाई साहब का सलूक हद से घटिया रहा। किसी से एक लफ्ज कहना तो दूर, हम से बात तक नहीं की। जैसे उन पर बोझ बन कर जा बैठे हों। हमने तो खाना तक दूसरे रिश्तेदारों के यहां से खाया। और तो और इंसान पराए को भी थोड़ी सी सहानुभूति ही दिखा देता है....।

—देख लिया न कहने का फल। खुद ही जल रही हो। विश्वेश्वर ने कहा तो शीला की आग में घी पड़ गया।

—तो क्या करती। आजकल बिना सिफारिश के मामूली सा काम भी नहीं होता। यहां तो मामला ही नौकरी का था, शीला की आवाज रुआंसी हो आई किन्तु उसमें क्षुब्धता की मात्रा अधिक थी—यह हैं आपके भाई साहब। मरवा दिया। किसी और को पकड़ते या कुछ देने दिलाने की बात करते तो जरूर काम बन जाता।

—अपना शिशिर कौन सा बड़ा हो गया है। लग जाएगी नौकरी। विश्वेश्वर ने उसे शांत करने का यत्न किया।

—आप कौन सी दुनिया में रहते हैं? आजकल नौकरी मिलना ताज मिलने के बराबर हो गया है। अगर सचमुच मुझे कोई यकीन दिला दे कि कल को नौकरी मिल जाएगी तो मैं इससे फार्म भरवाने बंद कर दूं। पहले तसल्ली से एम कॉम करने दूं। कितना पैसा फूंक रहा है, फार्मों पर। बस आज सभी को यही डर खाता रहता है कि बच्चा नौकरी ढूंढते-ढूंढते ओवर-एज न हो जाए।

—अपना बच्चा लायक होना चाहिए। बस। 'बस' शब्द पर विश्वेश्वर ने खास तौर पर जोर दिया। जैसे इस तरह कहने से सारी बहस वहीं की वहीं खत्म हो जाएगी।

लेकिन जल्द ही विश्वेश्वर ने महसूस किया कि यह बहस तो ता-जिंदगी चलने वाली बहस थी। चाचा जी की मरनी पर यह टॉपिक। रानी के जन्म दिन का फंक्शन हुआ तो यही चर्चा। हर कहीं यह विषय जैसे आकाश से

पुच्छल तारे की मानिंद उनके आंगनों में आ गिरना। पहले धुम-धुम की ध्वनि पैदा करता। फिर धमाके शुरू हो जाते कि भाई साहब ने सगे भतीजे की नौकरी पर लात मार दी।

भांजे की शादी में वे सब गए तो वहां भी यही बात। साले साहब का कहना था कि आपके भाई साहब आदर्शवादी हैं। वह भाई-भतीजावाद के विरुद्ध आवाज खड़ी कर रहे हैं। इससे उनका नाम भी हुआ है।

दीदी ने कहा—कोरा यश बटोरने के पीछे बेचारे शिशिर का कैरियर चौपट करके रख दिया। देख लेती अगर शिशिर की जगह इनका अपना छोटा लड़का होता।

जीजाजी ने पूरी खीझलाहट व्यक्त की—देख लिये हैं सारे उसूल। चाहते तो हमारे लड़कों की भी मदद कर सकते थे। लेकिन असलियत यही है कि किसी को हँसता-खेलता फलता-फूलता नहीं देखना चाहते।

दीदी दोबारा बोली—कहीं कोई इनसे आगे न निकल जाए और इन से ज्यादा [illegible], यह इनसे बर्दाश्त नहीं होता है। अफसर बड़ा बन [illegible].

दीदी के शब्द पूरे नहीं हो पाए थे कि तभी वहां, बड़ा भतीजा शिशिर आ पहुँचा। आते ही घोषणा की—डैडी नहीं आ पाएंगे। उनके सिर में चक्कर आ रहे हैं। फिर आज ही शाम कानपुर भी जाना है। डॉक्टर ने रेस्ट करने को कहा है।

सब ने एक दूसरे की ओर देखा, जैसे एक दूसरे से तराजू लाने को कह रहे हों कि तौल कर देखें कि शिशिर की बातों में सच का पलड़ा भारी है अथवा झूठ वाला पलड़ा।

इस पर शिशिर बिगड़ उठा— आप हमें घटिया-छोटा समझते हैं।

—नहीं तुम छोटे हो, विश्वेश्वर ने उसकी आयु को लक्ष्य कर कहा।

किन्तु वह और और अनाप-शनाप बोलता, वहाँ से रूठ कर निकल गया, कि हैंडी अफसर हैं तो किसी की नहीं माने। हम किसी से छोटे नहीं। देखेंगे— अब शिशिर की नौकरी कैसे लगती है।

—तब से हम ने तोबा कर ली, किसी रिश्तेदार के सुख-दुःख में शरीक होने नहीं जाते। अपनी या भाई साहब की हँसी उड़वाने, लड़ाई-झगड़े से बेहतर है कि बिरादरी से कट कर रह लो। क्यों बड़े बाबू? विश्वेश्वर उठ खड़ा हुआ, अब गाड़ियों का समय होने वाला है। मैंने आपको आराम ही नहीं करने दिया।

—मैं तो बल्कि लेटा रहा। आप ही बैठे रह गए विश्वेश्वर भाई। रुको मैं भी चलता हूँ।

उसने क्वार्टर को ताला लगाया तो मैंने विश्वेश्वर को तसल्ली दी— ज्यादा चिन्ता मत किया करो। यह तो सबकी ज़िन्दगी के झमेले हैं। लगे ही रहते हैं। मस्त रहा करो।

—मैं तो ऐसे ही सोचता हूँ, बड़े बाबू। पर शिशिर है कि तब से जैसे अपने अन्दर दैत्य की शक्ति भर कर पागल सा बन गया है कि बिना किसी की सिफारिश के जल्दी ही कहीं लग कर ताऊजी को बता देगा कि दुनिया में वे ही सब कुछ नहीं हैं। हर विभाग के फार्म भरता चला आ रहा है। दूसरा वह आस-पास गली, मुहल्ले में नजर दौड़ाए रहता है। अपने साथ के पढे लिखे युवकों को देखकर घुलता रहता है कि देखो यह लडका इतना पढा-लिखा है। इसकी भी नौकरी नहीं लगी। उसकी भी नौकरी नहीं लगी। ये बेचारे बिना काम के थोडा इधर उधर घूम आते हैं, तो इनके मा बाप इन से नफरत करने लगते हैं।

कहते है हमारी जान को आफत है। घर से बैठे बैठे रोटियाँ तोडते हैं। फिर निकल जाते हैं आवारागर्दी करने। लम्बे समय तक इन्हें सगे माँ-बाप भी नहीं सह पाते। दरअसल इस में किसी का कसूर नहीं होता। मैं शिशिर की तकलीफ को समझता हूँ, जो वक्त से कुछ पहले ही आरम्भ हो गई थी। उसे तसल्ली देने के लिए कहता हूँ। उसे फिक्र करने की जरूरत नहीं। कुछ पैसे तो हमें कस्बे के मकान के किराए के भी आ जाते हैं। मगर वह है कि एक तरफ उसकी पढाई की बड़ी-बड़ी पोथियाँ हैं

भारी भरकम ग्रथ। इन दोनो के बीच पिस कर रह गया है, मेरा शिशिर। देखिए अब फिर ट्राई मारने गया है। लगता है, इस बार जरूर सफल हो जाएगा।

विश्वेश्वर फिर हँसा। वही रुदन की खनक भरी हँसी।

मैंने मन ही मन विश्वेश्वर तथा उसके परिवार की सराहना की। फिर काम मे व्यस्त हो गया।

इस घटना के कोई बारहवें रोज सुबह की गाडी के बाद विश्वेश्वर मेरे पास आया। वह बहुत खुश था। उसके हाथ मे अखबार देख कर मैं समझ गया। जरूर रिजल्ट निकला है। विश्वेश्वर को अपने पास बैठाते हुए पूछा– कहिए विश्वेश्वर भाई! लगता है शिशिर के पास होने का समाचार है।

जी हाँ बडे बाबू! सब आप बडे भाइयों की शुभकामनाएँ है। शिशिर ने फर्स्ट डिवीजन ली है।

—बहुत बहुत बधाई हो। मैंने गर्मजोशी से उसका हाथ छुआ।

—और आज ही शाम की गाडी से सब बच्चे लौट रहे हैं। कितना खुश होगा शिशिर। उसे तो ध्यान भी न होगा कि अब की रिजल्ट इतनी जल्दी निकल आया है।

शाम को मैंने भी खास तौर से गाडी अटेंण्ड की। गाडी रुकी। शीला बेहाल सी बाहर निकली। घबराए स्वर मे विश्वेश्वर से कहा–जल्दी से अन्दर चलिए। शिशिर की तबियत रास्ते में खराब हो गई। दो-तीन उल्टियाँ भी हुई है।

मै और विश्वेश्वर अन्दर गए। दोनो ने शिशिर को सहारा दिया, और उसे बाहर ले आए। बाहर आते ही, स्टाफ के अन्य लोगो ने उसे सभाल लिया।

मै थोड़ा अलग हुआ तो देखा, जैसे पतली पतली सलाखों वाला कोई ढाँचा हड्डियों का ढाँचा लिये जा रही है। मै पीछे-पीछे चलने लगा।

विश्वेश्वर ने धीरे से अखबार को शिशिर के हाथ मे पकड़ाते हुए कहा– बेटे तुम फर्स्ट डिवीजन से पास हुए हो।

[illegible] तरह, एक हाथ मे, अखबार पकड़ कर शिशिर दूसरे हाथ को पेट पर [illegible] गया। एक सिसकारी निकालते हुए उस ने कहा—इस से कहो, मेरा [illegible] डॉक्टर।

इधर मत बहो, हवा

हसन जमाल

सुबह से तबीअत गुम्म थी और अब यह सफेद कागज के टुकड़े पर गुलाबी तहरीर! फज्र की नमाज में पेश इमाम के पीछे सज्दे में गिरते हुए एकाएक कँपकँपी छूट गयी थी—वह शायद उनींदेपन के कारण थी, बाद में देर तक मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठ कर नमाजियों की बेमतलब बहस को बेदिली से सुनता रहा। टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर रेंगती हुई उसकी निगाह शहरपनाह के दरवाजे के बुर्जों के ऊपर क्षितिज में फैलती लालिमा पर गयी, तो वह उठा और हौले-हौले पांव घसीटता हुआ चलने लगा। हालांकि वह अभी छियालीस बरस का ही था लेकिन रोज उसे यूं लगता था, जैसे उसने अपनी उम्र पूरी कर ली हो।

घर पहुंचते-पहुंचते उसने फैसला कर दिया कि आज काम न मांडेगा। न हुआ, तो दोपहर के बाद। जिस्म साथ न दे तो कैसा काम, कैसी कमाई?

दबे पांव बैठक में दाखिल हुआ, जो उसकी बैठक भी था और कारखाना भी। मैली-चीकट गद्दी पर निढाल-सा पसर गया और रोज-रोज की सुस्ती व चक्कर से निजात पाने का कोई ठोस उपाय सोचने लगा—आंखें मूंद कर, गह-राई में उतरते हुए।

'टेलीग्राम' की आवाज पर चौंका। लिफाफा खोलते हुए लरजते हुए हाथ... एक आशंका जो सदा आस-पास मंडराती रहती है—तार तभी आता है जब खैरियत नहीं होती।

'किसका है?' एक बुढ़िया ने, जो उससे पांच बरस छोटी थी, चिकने पत्थर की सिल पर बिना हैंडिल के कप को रखते हुए पूछा। तारघर का आदमी जा चुका था।

—नसीमा कमिंग इलेवथ जून।

थोड़ी-थोड़ी अंग्रेजी वह जानता है। मतलब समझ आया। ऐसे गुलाबी पत्र उस ओर से बहुत आने लगे हैं '71 की जंग के बाद...सरहदें खुलते ही...

बार-बार....जैसे संकटग्रस्त जहाज से एक के बाद एक पैराशूट उतर रहे हों। लेकिन पैराशूटधारी से धरती को खतरा नहीं होता। खतरा उन घरों को भी महसूस न करना चाहिये, जहाँ कभी-कभार पैराशूट उतर आते हैं—साइबेरियाई पक्षी की तरह। लेकिन वे विशेष मौसम में अवतरित होते है, मेहमानों के लिये विशेष मौसम कभी नही होता। नसीमा मेहमान नही थी। उसकी सबसे बडी बहन थी–तीन हज और पांच उमरा की हुई।

चाय कड़ुआ जहर लगी—बेस्वाद और ठण्डी। निगाह उठा कर बुढ़िया को देखा। उसके सदा के पीले-मुरझाये चेहरे से बचाखुचा खून भी इन चन्द लफ्जो ने सोख लिया हो – एकदम सफेद – उजले कफन की तरह, वह चुप थी लेकिन कह रही थी– अब क्या होगा ?

वे देर तक इसी मुद्रा मे बैठे रहे, जैसे काठ के पुतले हो–किसी प्रयास के बिना हिलेंगे, न डुलेंगे। मँझली सुगरा एक बार वहां आयी और अब्बा-अम्मा को जड़वत बैठे देख उल्टे पांव लौट गयी—खाली कप साथ ले कर। गुलाबी तहरीर वाला कागज जूतियों की सिल के पास पडा था, जिसे दोनो बेबसी से देख रहे थे।

'पिछली बार कब आयी ?' कागज को तह करके बडी की जेब मे डाला और उठा, कलेंडर देखने के लिये। हालाकि उसकी जरूरत न थी। आज ग्यारह जून ही थी, चर्मकारो की कॉपरेटिव सोसायटी के गोदाम मे माल पहुचाने का अंतिम दिन, परसो खलील आया था–नौ को। धमकी दे गया था, 'ज्यादा पैसा चाहिये, तो ज्यादा मेहनत करो रमजान चचा ! यूँ कैसे काम चलेगा ? कितना एडवांस ले चुके है आप ! नहीं होता है तो छोड़िये ये सब....'

छोड़ना इतना आसन होता है ! ये कल का लौंडा—उसके पहले व आखिरी बेटे की उम्र का....यदि वह जीवित रहता तो आज उसी की उम्र का होता.... उतना ही खूबसूरत और गबरू.... पर अफसोस वह अपनी लाचार माँ को, बदनसीब बाप को और आरजूमन्द बहनो को कलपने के लिए छोड़ गया। अगर उसे जिंदगी मिलती तो वह उसे तमीज सिखाता, खलील की तरह गुस्ताख न होने देता, खलील का बाप सारी उम्र जूतियाँ गांठते-गांठते मर गया—कभी अभावो से न उबरा—और खलील मियां देखते ही देखते फाख्ता उड़ाने लगे। जमाना कितना जल्द करवट बदल लेता है—चुपके से सब बदल जाता है।

'नाना जी के चाँद मे।' दीर्घ चुप्पी के बाद ठण्डा सा जवाब मिला।

'रमजान भी तो यही किया था।'

'हाँ-सबे बागान भी।'

'बड़ा बेटा और बड़ी दुल्हन साथ थी। इस बार मेले के लिये कह गयी थी। शायद दामाद भी आए, दो बेटियाँ भी और बच्चे तो होंगे ही ...'

'पारसाल बहनोई साहब आये थे। उनके दो दोस्त भी थे। उनके साथ अजमेर, उदयपुर और आगरे भी जाना पड़ा।'

'वो आपके दरबान चचा... कै दिन हुए होंगे? पिछली सर्दी में आये थे।'

'मुझे तो लगता है बारहों महीने कोई न कोई आता ही रहा है। उनके आने और जाने के दरमियान हम उनको अपने से अलग नहीं कर पाते। तुम क्या सोचती हो?'

'मैं क्या सोचूँ? सोचना तो उन लोगों को चाहिए जिनकी [illegible] उमड़ आयी है।'

बार-बार....जैसे संकटग्रस्त जहाज से एक के बाद एक पैराशूट उतर रहे हो। लेकिन पैराशूटधारी से धरती को खतरा नहीं होता। खतरा उन घरों को भी महसूस न करना चाहिये, जहाँ कभी-कभार पैराशूट उतर आते हैं—साइबेरियाई पक्षी की तरह। लेकिन वे विशेष मौसम में अवतरित होते हैं, मेहमानों के लिये विशेष मौसम कभी नहीं होता। नसीमा मेहमान नहीं थी। उसकी सबसे बड़ी बहन थी—तीन हज और पांच उमरा की हुई।

चाय कड़ुआ जहर लगी—बेस्वाद और ठण्डी। निगाह उठा कर बुढ़िया को देखा। उसके सदा के पीले - मुरझाये चेहरे से बचाखुचा खून भी इन चन्द लफ्जों ने सोख लिया हो – एकदम सफेद – उजले कफन की तरह, वह चुप थी लेकिन कह रही थी– अब क्या होगा ?

वे देर तक इसी मुद्रा में बैठे रहे, जैसे काठ के पुतले हों–किसी प्रयास के बिना हिलेंगे, न डुलेंगे। मँझली सुगरा एक बार वहां आयी और अब्बा - अम्मा को जड़वत बैठे देख उल्टे पाँव लौट गयी—खाली कप साथ ले कर। गुलाबी तहरीर वाला कागज जूतियों की सिल के पास पड़ा था, जिसे दोनों बेबसी से देख रहे थे।

'पिछली बार कब आयी ?' कागज को तह करके बंडी की जेब में डाला और उठा, कलेंडर देखने के लिये। हालांकि उसकी जरूरत न थी। आज ग्यारह जून ही थी, चर्मकारों की कॉपरेटिव सोसायटी के गोदाम में माल पहुँचाने का अंतिम दिन, परसों जलील आया था–नौ को। धमकी दे गया था, 'ज्यादा पैसा चाहिये, तो ज्यादा मेहनत करो रमजान चचा ! यूँ कैसे काम चलेगा ? कितना एडवांस ले चुके हैं आप ! नहीं होता है तो छोड़िये ये सब....'

छोड़ना इतना आसान होता है ! ये कल का छोकरा—उसके पहले व आखिरी बेटे की उम्र का....यदि वह जीवित रहता तो आज उसी की उम्र का होता.... उतना ही खूबसूरत और गबरू.... पर अफसोस वह अपनी लाचार माँ को, बदनसीब बाप को और आरजूमन्द बहनों को कलपने के लिए छोड़ गया। अगर उसे जिंदगी मिलती तो वह उसे तमीज सिखाता, जलील की तरह गुस्ताख न होने देता, जलील का बाप सारी उम्र जूतियाँ गाँठते-गाँठते मर गया—कभी अभावों से न उबरा—और जलील मियाँ देखो तो देखो पैसा उड़ाने लगे। जमाना कितना जल्द करवट बदल गया है—पलक में सब बदल जाता है।

'खाला जी के बारे में।' दीर्घ चुप्पी के बाद ठण्डा सा जवाब मिला।

'रमजान भी तो यही किया था।'

'हाँ-सबके बारात भी।'

'बड़ा बेटा और बड़ी दुल्हन साथ थी। इस बार मँझले के लिये कह गयी थी। शायद दामाद भी आए, दो बेटियां भी और बच्चे तो होंगे ही।'

'पारसाल बहनोई साहब आये थे। उनके दो दोस्त भी थे। उनके साथ अजमेर, उदयपुर और आगरे भी जाना पड़ा।'

'वो आपके इरफान चचा... कै दिन हुए होंगे! लगती गर्मी में आये थे।'

'मुझे तो लगता है बारहों महीने कोई न कोई आता ही रहा है। उनके आने और जाने के दरमियान हम उनको अपने से अलग नहीं कर पाते। तुम क्या सोचती हो?'

'मैं क्या सोचूं? सोचना तो उन लोगों को चाहिए जिनकी मोहब्बत एकाएक उमड़ आयी है।'

वे यूं बोल रहे थे—निर्लिप्त जैसे रंगमंच के नये कलाकार हों जिन्हें बयान संवाद अदायगी से मतलब होता है। बावजूद इस के उनके चेहरों पर हल्की सी चमक उतर आयी थी—अपनेपन से भरपूर, कोई किसी के पास कहां जाता है—अपना ही समझ कर न, लेकिन मोहब्बत और अपनेपन से पर भी कुछ होता है और वह 'कुछ' ही शायद अपनापन बन जाता है।

काश! उनका अहसास जिंदा रहता—पांच बहनों का एक भाई और उनकी तमाम उम्मीदों का चिराग—लेकिन चिराग की जिंदगी का भरोसा नहीं होता, अंधेरे लम्बी उम्र पाते हैं।

सिगाओं और शौहर के सामने यूँ जाओ . . . . अम्मा तो ऐसी न थी, खुदा उन्हें जन्नत नसीब करे।'

वह बाजी के बचाव में कुछ कहना चाहता था, पर जन्नत के दुख को वह देने में उसे भी एक छोटा-सा सुख मिल रहा था, मानो वह उसी की अभिव्यक्ति हो। निहारता रहा उसे।

'आपकी दूसरी बहन तो ऐसी नहीं है, उन्होंने भी बुरे दिन देखे, अब खुदा का दिया सब कुछ है। क्या पाकिस्तान की हवा में ही मगरूरी है?'

'ऐसी नही कहते, अपना-अपना स्वभाव है। छोटी आपा का अपना मिजाज है।'

नही, वो हमारी हालत को समझती हैं, हम से बेजा उम्मीद नही रखती। उल्टे आडे वक्त मे मदद ही करती हैं। अपनी भतीजियों के लिये फिक्र करती रहती है। नसीमा बाजी को सोचना चाहिये न' ! गुस्से मे नथुने फूल जाते हैं जन्नत के—'माना कि भाई की खुद्दारी कुछ तलब नही करती, लेकिन वे खुद भाई का हाथ मजबूत कर सकती है। ढेर-सी दौलत किस काम की। मदद न करें, हमें बार-बार आजमाइश मे तो न डालें।'

आजमाइश ! . वह चुप रहा। सचमुच वे दिन आजमाइश के ही होते है जब उधर से कोई इधर आता है, उसके होते वे होटल या मुसाफिरखाने मे तो नही ठहर सकते। लेकिन जिन सुख-सुविधाओ के वे लोग अभ्यस्त हो चुके हैं, लाख कोशिश करे तो भी उपलब्ध नहीं करा सकता ..टोयोटो कार... आरामदेह बिस्तर. और मुरग्गन खाने...शानदार रेस्तारानो मे दावते . उनके हिसाब से बिल्कुल सिफर। मजबूरी न हो तो क्यो ठहरे ! लेकिन ये *बड़ी अजीब बात है कि उनका चुप-चुप रहना भी उसे सालता है और बड़*-बोलापन भी कौंचता है, हर पल जब तक वे बसेरा करते हैं उसे छीलते रहते है और वह निरंतर छोटा होता चला जाता है। उसकी जुबान तुतलाने लगती है और सहमा-सहमा-सा रहता है। अपनों के सामने जो करीब होते हुए भी दूर दिखाई पड़ते है।

गली मे कोलाहल उभरने लगा था। सुबह की धूप चुपके से नाली मे आ कर बैठ गयी थी। नाली-जिसमे आस-पास के सडासो का मैला बहेगा और पूरी गली एक सड़ाध की गिरफ्त मे आ जायेगी। कोठी मे रहने वाली बाजी को ये सब पसंद नही है। कितने गंदे हो तुम लोग, कुछ करते क्यो नही ? जब तक मैला बहता रहेगा, औरतो-जमादारिनो की चख-चख चलती रहेगी, नाक पर दुपट्टे का डाटा लगा कर वे सेहन के पास वाले बरामदे में पड़ी रहेंगी...

निढाल-सी। फिर भी मायका उन्हें बहुत प्यारा है। जड़ें तो इसी घर में दबी पड़ी हैं—साल तक। अम्मा कहा करती थी।

एकाएक जन्नत रोने लगी। वह जब-तब हर किसी के सामने अपने इकलौते अहसान को याद करके टेसू बहाने लगती है, उस तरह। उसके भीतर सदा कुछ न कुछ घुमड़ता रहता है और अचानक रुलाई के रूप में बाहर आ जाता है। फिर आप ही आप शान्त हो जाती है जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह ऐसा नहीं कर सकता। जब किसी सोच की गिरफ्त में होता है तो निरन्तर एक छटपटाहट उसके पास होती है—जैसे अंधी चिड़िया पर फड़फड़ाती हुई।

'स्टेशन जायेंगे न ?' जन्नत उठते हुए बोली। मातम करने से क्या फायदा ?

'हां, जाना तो होगा ही। वैसे आज मेरी तबीअत ठीक नहीं है, मुझे तो कोई बड़ी बीमारी लगती है, कब तक डॉक्टर से मुंह छिपाऊंगा। [illegible] डूबता हुआ दिल '

नमाज के दरमियान वाली बेचैनी ने फिर सिर उठाया।

'मत जाओ।' जन्नत ने उसके कंधे को छुआ।

'वे आस रखती हैं, दिल्ली तक की, स्टेशन भी न जाऊं आखिर तार किसलिए भेजा है ?'

जन्नत चुपचाप अंदर चली गयी, बेतरतीब घर को सवारना होगा, [illegible] शुरू हो जाएगी—तुम सदे लोग।

चचा तो हमारी नाक कटेगी सो अलग, मुल्क की भी साख जायेगी – क्या समझे ?'

सब समझता है वह माल ही खरा व पूरा न हो तो काम नफीस कैसे होगा ! वे तो पूरी दयानतदारी दिखाते है–माल में और मेहनत में, तलो मे मजबूरन 'पूर' डालने पड़ते है। शिकायत उभरती है तो सिंचाई भी उन्ही की। बनी हुई जूती को मुर्गी की तरह छील कर हवा मे नचाते हुए चीखेगा खलील–'ये है आपका काम, चचा ! बदमाशी छोड़ो, बताओ चुराया हुआ माल कहा छिपाया है ?'

—इस अधमुए के पास छिपाने के लिये क्या है रे ! दर्द ही दर्द है– देख सकता है तो। काश, वह देख सकता कि इस थोक-तैयारी मे कितनो की नाराजगी उसने ली····अपने अजीज दोस्तो के लिये एक जोड़ी भी मनोयोग और चाव से बनाने की मोहलत न बची। सब पैसो की जुगाड़ की नजर हो गया है।

यन्त्रवत उसके हाथ चल रहे थे जैसे सिर पर साक्षात खलील खड़ा हो–अदृश्य चाबुक लिये हुए। अन्दर सेहन मे गर्द उड रही थी। जन्नत, सुगरा, जाहिरा, और जाहिदा–सब जुटी हुई थी, झाड़-पोछ मे। सबसे छोटी जोहरा। गुड्डी घूम-घूम कर तमाशे की तरह आनद ले रही थी—ये मेरे बाबा की फोटू है ! अम्मां, अम्मां, बाबा पहले ऐसे थे, दाढी भी नही, ऐनक भी नही। कैसे दीखते है !

पुरानी तस्वीर खुद उसके लिये अजनबी-सी है। सिर्फ पन्द्रह साल पुरानी तस्वीर। गुड्डी को पुकार कर तस्वीर ले ली। वह दस पैसे पाकर खुश-खुश लौट गयी। उसके लिये तस्वीर से ज्यादा दस पैसे महत्वपूर्ण थे, पर उसके लिये तस्वीर-महज तस्वीर नही—एक तारीखी दस्तावेज थी जिसे देखते ही पतझड का मौसम याद आता या जहाज का डेक—जिस पर से एक के बाद एक मुसाफिर– जो मुसाफिर न थे– उतरते चले गये। बड़े भाई अहमदाबाद, मझले लाहौर और छोटे का पता नही कि उसे बबई का समुद्र निगल गया। अम्मा कब्रिस्तान मे करवटें लेती हुई और अब्बा मझले के साथ। कभी पलट कर भी न आए, बस वह रह गया है उजाड डेक पर—तन्हा – हर थपेड़ा सहन करता हुआ।

उसकी सांस तेज-तेज चलने लगी। उठकर बीच का दरवाजा भेड़ दिया—जो सेहन मे खुलता था। गर्द से दमा उभर आता है। आंखें मूंद कर देर तक वह सांसो के आरोह-अवरोह से जूझता रहा। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे अंधेरे में किसी शाख पर उकडू बैठा हुआ कोई बदर हो – गिर पड़ने के लिये तत्पर।

एकाएक जोर का खटका हुआ। लगा बाजी आ गयी हैं लेकिन वह डिब्बा गिरने की आवाज थी। जन्नत चीखी थी, 'मालजादी, समेट सब। जवानी चढ़ी है तुझे।'

बच्चियों में से कोई न बोली, वे कुछ न बोल सकती थी। वे वास्तविक मेहमान थी इस घर की। सबसे बड़ी हाजरा की रुखसती के बाद चार मेहमान! यह जन्नत भी जानती है। वह गुस्सा तो किसी और पर था जिस पर इख्तियार नहीं इन बच्चियों के सूने-सूने चेहरे देख कर हर बार वह दरक जाता है कि बदनसीब बाप की बदनसीब बेटियाँ—रात-दिन मखमल पर बेलबूटे काढ़ने वाली नाजुक अंगुलियों को जाने कब कोई फूल नसीब होगा। जी चाहता है, इन्हें सामने बैठा कर सिर झुका दे कि ए मेरे बाग की कलियो! मुझे मजा दो कि मैं तुम्हारे लिये कुछ न कर पाऊंगा मगर शरीफ बेटियाँ बाप के सामने उफ नहीं करती। उनकी चुप्पी चीर डालती है उसके कलेजे को।

कितने अच्छे दिन थे जब जहाज आबाद था। तब एक सच्ची खुशी नसीमा बाजी के साथ आती थी। तब जमाना और था और रिश्तों में मिठास कायम थी। वह मिठास स्वप्न की चीज लगती है।

वे जश्न के दिन होते थे जब बाजी आती थी या बहनोई साहब। बड़े पुरखुलूस और तपाक से मिलने वाले। कभी महसूस न होने दिया कि वह उनसे छोटा-बहुत छोटा है। अब उससे बात करते सहम जाता है। पता नहीं, उनकी आंखों का रंग इन बरसों में क्यों बदल गया....या नहीं बदला, उसे ही लग रहा है। बाजी की विदाई तो उसे याद भी नहीं। 47 के पहले की बात है। वह चार साल का रहा होगा। उन दिनों बाजी के ससुराल की स्थिति अच्छी नहीं थी, तभी तो यह शहर छोड़ना पड़ा। बाद में हैदराबाद ही उनकी पहचान बन गया और आबाई शहर विदेश। सुनता है। दलहन के व्यापार में उनका एकछत्र राज्य है। एक बार असेंबली के मेंबर भी रहे। अब उनकी सारी दिलचस्पियां सियासत पर केन्द्रित हो चुकी हैं और उनके बेटे... उसके भानजे-बड़े सलीके से तिजारत सम्भाल रहे हैं। सब से बड़े रहमान की याद आती है.. इसी सेहन में मरकल की तरह रेंगता था और टट्टी के गुल-बूटे बनाया करता था। वह कई बहनों के बाद था और बाजी उसे जान से प्यारा रखती थी।

वही रहमान पिछली बार आया था। भैंसे की तरह मुस्टंड-मुसंड, पठानी सूट में—बाप की दराज कद,. .बड़ी बेतकल्लुफी से कंधे पर हाथ रखते हुए कहता था, 'यार मामू! आप बड़े गावदी हो। इतनी दूर से आया हूँ और आप गुमसुम बैठे हैं। आप बोर हैं।'

[illegible] उनकी जिम्मेदार है । पर हर बार [illegible] है, नहीं, [illegible] वह प्रतिपादित नहीं कर सकता—[illegible] को सुन कर [illegible] है उस [illegible] और [illegible] आती है नाना रूपों में । हाँ, [illegible] की दुनिया में तूफान मचा देने वाली [illegible] नहीं होगी । शायद उस हवा ने [illegible] नहीं [illegible] पकड़ पायेगा और किसी दिन तुम्हारे [illegible] हम भी आग बन जायेंगी । नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए । [illegible] मासूम बच्चियों का, गरीब जन्नत का क्या होगा ? सुन रही हो नगीना बाजी [illegible] मैं आप को कभी [illegible] नहीं कह सकूँगा । सुन रही हो न ? इस बार कफ़न ला रही हो न साथ में—अपने भैया के लिए । अंग्रेजी कफ़न, [illegible] की तरह सफ़ेद कफ़न, आबे जमजम में तर किया हुआ । पर [illegible] में न लूंगा, पूरी कीमत अदा करूंगा, अदा करता आया हूँ, जानता हूँ, [illegible] है जो मौत देने के काबिल हो । मैं तो [illegible] की अपनी बाजी को नहीं दे पाता । इसलिये कफ़न भी न लूंगा सौगात में । अगली बार आयगी तो मैं उस कफ़न में लिपटा मजे से कब्र में आराम कर रहा हूँगा और आप पागल हवा की तरह बौरायी फिर रही होगी—इस मुर्दे शहर में । अगर बार-बार आना चाहती है तो मुझे मांग लेने दे । नगीना बाजी, सुन रही हो न !

'ये आप किससे बात कर रहे हैं ?' पल्लू से हाथ पोंछती हुई जन्नत दाखिल हुई ।

'किसी से नहीं ।' वह हड़बड़ा गया । कहाँ था इतनी देर ?

'साढ़े दस हो गये, चलिये खाना खा लीजिये ।'

'नहीं, अब मैं चलूंगा,' उठते हुए बोला, 'पैदल ही जाना होगा । टैक्सी करने की सकत कहाँ ? वापसी में करनी ही होगी, जाने कितने लोग होंगे । दूध-वूध है कि नहीं, आटा....चावल....सबका बंदोबस्त करना होगा ।'

'पैसे ?'

'वापसी पर—हाँ, अल्लाह मालिक है । सत्तील आए तो रोकना ।'

सीढ़ियों से उतरने लगा तो एक बार फिर कँपकँपी छूट गयी—जैसे फज्र की नमाज में। अपने आप को संभाला। न संभालता तो नाली में गिरता। गली अब भी गुलजार बनी हुई थी। जमादारिनों और लड़ाकू औरतों की वकझक और मैले के बहते हुए परनाले—*सडांध और गर्द में डूबी हुई अंधी गली।*

तीन फर्लांग का रास्ता बीस मिनट में तै हुआ। सांस धौंकनी की तरह लेकिन वह ठीक समय पर स्टेशन पहुंचा था। दिल्ली मेल आ चुका था। प्लेटफार्म की चहल-पहल उसे मच्छरों का शोर मालूम हो रही थी–भिनभिन भिन—लेकिन मच्छर उसकी आंखों में भी तैर रहे थे, नुकीले दंश के साथ। बार-बार आंख मसलता....ए दर्द जरा ठहर जा। कुछ रहम कर।

सिर झटक-झटक कर होश में आने की कोशिश करता भीड़ में टक्करें खा रहा था। एक बार टोपी गिर गयी। उठाते- उठाते कई पैरों तले रौंदी जा चुकी थी। दिल डूब रहा था और आंखों के आगे अंधेरा छाया हुआ था—एक अजीब-सी दहशत और धुकधुकी।

आखिरकार नसीमा बाजी दिखायी दीं—गुस्से में भुनभुनाती हुई, कुलियों की टोली से उलझती हुई। बाजी के बेटे, बेटियां, दामाद और बच्चे—कुल बारह सदस्य बाराती उल्लास में चहक रहे थे।

'अरे, तुम अब आये हो!' देखते ही बरस पड़ीं, 'तार मिला कि नहीं?'

उसकी जुबान गुंग थी। सिर हिला सका—बस।

कंपार्टमेंट के दरवाजे के पास रखे बीसियों नग पर दृष्टिपात कर डूबी हुई आवाज में बोला, 'सारा सामान उतर चुका?'

'कहां?' बड़े वाला ट्रंक अंदर धरा है,'बाजी ने नथुने फुला कर कहा, 'सब बच्चों ने उतारा है।'

'अच्छा, मैं देखता हूँ,' वह कंपार्टमेंट में चढ़ा।

'अम्मी! ये हमारे मामू हैं? रहमान भाई ठीक कहते थे–बिल्कुल मुर्दे जैसे है, न हँसना, न बोलना, हम क्या रोज-रोज आते हैं?'

बाजी ने आंखें तरेरी होंगी लेकिन वे शब्द उसकी पीठ में खंजर की तरह उतर गये।

ट्रंक बहुत वजनी था। उसकी शक्ति को चुनौती देता हुआ। बाहर सब खड़े थे और वह अकेला जूझ रहा था–पसीने में सराबोर। एक मुसाफिर ने मदद न की होती तो ट्रंक उतारने में वह कभी कामयाब न होता।

कुली अब भी घेरे हुए थे—एक चिकनी आस में। कुलियों पर पैसा लगाना फिजूल था। चंद सीढ़ियां चढ़कर एक पुल ही तो पार करना है—और उस तरफ मेनगेट... ख्वाम-ख्वाह बीस-तीस का चूना लग जायेगा। लेकिन वजनी ट्रंक और गठरों को देख एक कुली को मक्का करना चाहा।

'ना बाबा ना।' वजनी ट्रंक देख कर कुली घबरा गया। मजबूरन दो कुली करना पड़े। अब वे ट्रंक से, गट्ठरों से जूझ रहे थे। उसने एक संदूक सिर पर उठा लिया—कुली की तरह। एक हाथ में छोटा गट्ठर। अन्य छोटे-बड़े सामान मजबूरन बेटों और दामादों को उठाना पड़ा। वे बेरहमी से अपने मेजबान को घूर रहे थे .. ये मिस्कीन सूरत और कंजूस सीरत हमारी क्या मेजबानी करेगा? बोर हो जायेंगे हम तो।'

वह एक-एक कदम सावधानी से उठाता हुआ सीढ़ियां चढ़ने लगा। हर बार लगता—गिरा। धुकधुकी बढ़ रही थी और अंधेरा फैल रहा था, इतना कि आगे कुछ भी सुझाई न देता था। लगा, उसे यातना शिविर में झोंक दिया गया है। अब हमेशा सीढ़ियां चढ़ता-उतरता रहेगा और बोझ ढोता रहेगा—रिश्तों का बोझ।

वे लोग कुलियों के पीछे चल रहे थे. लेकिन उसके पांव सीढ़ियों के इस तरफ एक खाली गाड़ी की तरफ बढ़ रहे थे, जो चंद घंटों बाद खुलेगी।

संदूक एक खाली कंपार्टमेंट के दरवाजे में धकेल कर वह दरवाजे पर ही पसर गया। उसके पांव प्लेटफार्म पर झूल रहे थे। कुछ देर बाद जब सांसों से समझौता हुआ, उकडूं होकर बैठ गया—जैसे कोई कुली मुसाफिर का इंतजार करता है—ऐसे कुली की तरह जिसकी कोई मंजिल नहीं होती, जो हर रोज कितने अनाम मुसाफिरों को मंजिलों की तरफ बढ़ने में मदद करता है – जैसे मील का पत्थर—गाड़ियां सन्नाटे में गुजरती रहें और वह पड़ा रहे दबा-दबा। लेकिन वह बहुत हल्का महसूस कर रहा था—विदाई के समय का इत्मीनान।

'अरे तुम यहां बैठे हो?' बाजी बौखलायी हुई उसके सिर पर खड़ी थी और तमाम बच्चे भी—'सन्दूक कहां है?'

उसने अंगुली से इशारा किया और उत्साह से बोला, 'बाकी सामान भी ले आये हैं बाजी, चलो। सब नग गिन लिये हैं। अभी ठीक तरह रख देंगे।'

अकस्मात् बाजी के चेहरे का रंग बदल गया और बिल्कुल अजनबी की तरह उसकी आंखें सख्त हो उठीं। नम आंखों में तैरती हुई उसकी आकृति निरन्तर छोटी होती जा रही थी—इतनी छोटी कि 47 के पहले की तरह वह उसे गोद में उठा सकती थी।

'रमजान, चलो, घर चलें।' उसे लगा, अम्मा ने चुपके से आकर उसके कान में सरगोशी की है। बिल्कुल मद्धम आवाज अम्मा की। लेकिन वह चाची थी।

'भाईजान ! बापू पागल है क्या ?'

यह जुमला चाची के आखिरी साहबजादे का था। यों महसूस हुआ, जैसे आरा मशीन में शहतीर की जगह उसका धड़ आ गया हो–सर्र र सर्र !

उठने की कोशिश में वह चाची के हाथों में झूल गया।

धारा के विरुद्ध

प्रभा सक्सेना

झण्डेवाली जीपों को देखते ही आज फिर बाबूजी ने दरवाजा बन्द कर लिया है। कुछ लोग बाबूजी की तरह दरवाजा बन्द नहीं करते पर चुपचाप चबूतरे पर बैठे हुए बीड़ी पीते रहते हैं। झण्डेवाले जब उनसे कुछ कहते हैं तो सिर्फ इतना कह देते हैं—'हैंस वोटी'। फिर उन आवाजों के बीच ऐसे तटस्थ हो जाते हैं—जैसे वे कहीं हैं ही नहीं। ऐसे में कहीं बाहर से आवाजें आयें तो उन्हें सुना जा सकता है। सिर्फ सुना जा सकता है। उनका कुछ किया नहीं जा सकता। आवाज आती है और चली जाती है। बिना माध्यम की आवाज... किसी को अपने साथ ले तो नहीं जाती, न ले जा सकती है और जो आवाजें किसी को अपने साथ ले नहीं जा सकतीं, उनका गांव में आने से किसी का बिगड़ता भी क्या है? बस बच्चों की बन आती है। कितना ही मना कर दो, मानते नहीं। जीपों को घेर लेते हैं। बड़ी धक्का-मुक्की होती है आपस में पर्चियाँ लेने के लिए। बच्चों की इस हलचल के अलावा सभी कुछ तो ठहरा रहता है। बूढ़ी औरतें चौक में से बाहर नहीं निकलतीं। चरखे के साथ एक-रस हुई रहती हैं। इस सब के बावजूद कोई बहू घूंघट काढ़े मकान के पिछवाड़े में एक आंख से जीपों को देख लेती है। चलो कुछ तो नया दीखा। कुछ तो हलचल हुई। वरना तो गांव में सन्नाटा कैसा भांय-भांय करता रहता है। कुछ भी तो महसूस नहीं होता। रोज कुंए से पानी भरना, रोटी सेंकना, चटनी पीसना... सब कुछ हाथ ही करते रहते हैं। देखने को तो कुछ होता ही नहीं। दो चार बरस में जब झण्डेवाली जीपें आती हैं तो लगता है एक दुनिया और भी है....। मोटर की घरघराहट सन्नाटा तोड़ देती है तो बहू के दिल में होता है वो भी कभी मोटर में बैठे, शहर जाये और वहाँ के शोर में शामिल हो जाये। पर... बाबूजी? उन्होंने तय कर दिया है, कोई ठप्पा लगाने नहीं जायेगा। पता नहीं बाबूजी यह क्यों नहीं सोच पाते कब तक हम लोग ये डूंगर और आसमान देखें। यही सब सोचते सोचते बहू भीतर आ जाती है। मन में कहीं डर भी रहता है। सास जी, जेठजी कहीं देख न लें। पर बच्चे किसी की नहीं सुनते। मोटरों के जाते ही बाबूजी सब बच्चों को नीम के नीचे इकट्ठा कर

वतन तो बाबूजी का नहीं रहेगा एकदम नहीं है। उनका बस चलता तो अकेले ही सारे गांव के निर्माण के विरुद्ध खड़ा रहा जाता। तब बाबूजी की सारी तकदीर निकल जाती। उसे इतना लगाने का अधिकार मिलने में अब बहुत थोड़े दिन बाकी है। पर अभी वह पूरा नहीं कर सकता। उसे कानून की निगाह में आने वाले हाल का बहुत अफसोस होता है। उसे सबसे ज्यादा बुरा बाबूजी के चुप रहने का लगता है। आखिर बुजुर्ग आदमी हैं। कोई बात मैं आये तो उससे बात तो कर ही सकते हैं। बिना बात किये तो कुछ भी नहीं हो सकता। पहले सब तो एक दिन उसने बाबूजी से कहा था। उत्तर में शान्त पर ठहरी हुई आवाज में बाबूजी ने कहा था — 'मैं विश्वास के सिवा सब कुछ कर सकता हूँ।'

'हूँ....विश्वास के सिवा सब कुछ कर सकता हूँ' बुड्ढे का दिमाग फिर गया है। आदमी विश्वास के सिवा कर ही क्या सकता है? अविश्वास भी क्या दूसरी तरह का विश्वास नहीं है? बुड्ढा मानेगा नहीं। गांव में सड़क पर पहले इनकी अन्ध आस्था ने नहीं आने दी। अब इनका अन्धा अविश्वास आने देगा। इन दो सिरों के बीच कहीं कोई वास्तविक विश्वास भी हो सकता है, उसके लिए कुछ काम भी किया जा सकता है, बाबूजी को समझ में नहीं आयेगा।

और बाबूजी ?

बन्द अंधेरे कमरे में कितनी ही गीली तस्वीरें उनकी जालीदार आँखों में उभरने लगती हैं। ऐन आजादी मिलने वाले दिन उनके बेटा पैदा हुआ था। उन्होंने उसका नाम भी आजाद रख दिया था। कितने सपने देखे थे। आजाद जब सात-आठ साल का होगा तब तक तो गांव में सड़क आ चुकी होगी। वे अपनी कल्पना में आजाद को सड़क पर साइकिल चलाता हुआ देखने लगते हैं और इसी के साथ उन्हें अपना बचपन याद आ जाता है। कोई सौ, दो सौ घरों की बस्ती वाला छोटा-सा गांव। पिता सुबह स्कूल भेजने के लिए उठाते। दातुन करते करते उसकी आँखों में रेत का मीलों लम्बा समुद्र फैल जाता। किताब का एक अक्षर भी तो दिमाग में नहीं रहता था। स्कूल से लौटते समय जो दर्द उसके पैरों के जोड़ों में होता था, उसे याद कर के, उसे सुबह से ही थकान होने लगती। पिता चिल्लाते – 'तू सुबह सुबह ही अनमना क्यों हो जाता है ? दो मिनट बाहर निकल कर तो देख। सुबह की धूप और ठंडी हवा से मन तरो-ताजा हो जायेगा।'

पर बाबू और मनना हुआ बाहर निकलता तो उसे सिर्फ रेत ही रेत दिखाई पड़ती। धूप तो उसके तलवों से चिपकी हुई होती ही थी, जिसे वह कभी छुड़ाने की कोशिश तो करता पर सफल नहीं हो पाता। जब कभी सफलता मिल भी जाती तो उन पैरों में कीचड़ चिपक जाती थी और बाबू बरसात में पूरे मन प्राण से कीचड़ मिट्टी से जूझता हुआ घर पहुँच जाता था। मिस्सी रोटी और गुड़ खा कर सो जाता शाम को। पिता पढ़ाने बैठ जाते। कुछ देर बाद ही सारा गाँव अन्धेरे में डूब जाता। उसका मन दिनचर्या से ऊबा हुआ, अब सोने को होता पर गाँव के दूसरे बच्चे सो जाते। एक वही बिस्तर पर पड़े पड़े करवटें बदलता रहता था। काफी देर से नींद आती। पिता सुबह फिर जल्दी जगा देते और उसकी उनींदी आँखों में फिर रेत का सागर लहरा जाता।

उन दिनों गाँव में से कोई दूसरा बच्चा स्कूल नहीं जाता था। स्कूल था भी तो दूसरे गाँव में। एक पिता जी ही थे जो उससे कहते रहते थे—'गाँव के आदमी पढ़े नहीं हैं। इसी से इतनी दुर्गति है। माना स्कूल दूर है पर कुछ साल बाद तो जिन्दगी सुधर जायेगी।'

पर सच्चाई यह है, उस समय इन बातों का उस पर कोई असर नहीं था। पिता का डर ही उसे स्कूल खदेड़ता था। फिर कुछ समय बाद स्कूल में मी दिल लगने लगा था। किताबों में नहीं, गांधी में। मास्टर जी उसे कितनी सारी बातें अखबार में से पढ़कर सुनाते थे। और सुनते सुनते न जाने क्यों बाबा का मन सर्दी में धूप की तरह भरा भरा खिल पड़ता। आँखों में रेत की जगह ढेर सारे सपने आ जाते। देश आज़ाद हो गया है। गाँव में सड़क आ गई है। पक्के मकान बन रहे हैं, अब उसके बूट सड़क पर खट खट हो रहे हैं।

अब बाबू को सुबह कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ती। वह जल्दी नहा धोकर अपने स्वप्न की अँगुलियाँ पकड़ कर रेत पार कर आता है। दोस्तों के साथ कभी कभी शहर की हलचल भी देख आता है। कैसी कैसी मिलें, कारखाने, जोर शोर, रोशनी और आवाजें। चेहरों पर किस्मत को अपनी मुट्ठियों में कैद कर लेने का भाव....बाबू पहले सब विस्मय से देखता। फिर धीरे धीरे ...की जगह समझ और विश्वास पनपा। फिर यह विश्वास अलग से ... उसका अपना सपना बन गया। फिर क्या था। बाबू गाँव में ... —'देश आज़ाद होगा। हमारी अपनी सरकार होगी। ...होगी। सड़क और बिजली के आते ही गाँव बदल जायेगा।' ...की आँखों में कितनी रोशनी होती थी उस अन्धेरे

[illegible] के [illegible]। [illegible] मुस्करा दिया। [illegible]
[illegible]।

जिन्दगी [illegible] बढ़ते हैं। कभी कभी उसे हाथ बैठाना पड़ता था। [illegible] देखता, [illegible] लिया है। जिन्दगी ने [illegible]। अब पेड़ को ये उधार नहीं करना पड़ता है। [illegible] कुछ [illegible] गई तो [illegible] जाता है। कभी कोई बीमार पड़ जाये तो जिन्दगी मुश्किल हो जाती है। और [illegible] हो जाते हैं। उधार करना पड़ता है तो [illegible] जिन्दगी की जिन्दगी मुश्किल [illegible] आता है।

उस समय बात उसकी शादी कर दी गई थी। वह नहीं भूलता वह दिन जब [illegible] ने एक [illegible] दूसरी [illegible] बैठी थी। आसमान बादलों से भरा पड़ा था। कुछ देर बाद तेज वर्षा होने लगी थी। पानी का दबाव एका-एक तेज हो गया था। पास के ही ताल की एक पुलिया टूट गई थी। गाड़ीवान ने बैल खोलकर पीपल से बांध दिये थे। राधा को बापू और गाड़ीवान ने ऊँचे-ऊँचे पेड़ पर चढ़ा दिया था। फिर खुद भी चढ़ गये थे। रात जैसे-जैसे गहराती जाती थी, राधा डर से भयभीत हुई जाती थी। दादी कहा करती थी—रात में पीपल के पास मत जाना, भूत लग जायेगा। आज रात पेड़ की हर शाखा में उसे भूत निकलता प्रतीत हो रहा था। उसे लग रहा था उसके हाथ छूट जायेंगे और वह एकदम नीचे गिर पड़ेगी।

और गाड़ीवान ? उस गहरे अंधेरे में भी धोंकनी की तरह चलती हुई उसकी सांसों की धड़कन न सिर्फ सुनी जा सकती थी वरन् देखी भी जा सकती थी। इस पानी और अंधेरे में बैलों के लिए कुछ न कर सकने की अपनी असमर्थता और उतनी ही प्रगाढ़ कुछ कर पाने की लालसा . . । लगता था बैल गाड़ीवान का पूरा का पूरा भविष्य बन कर उन आँखों में समा गये हैं। चिन्ता की ऐसी छाया, इतनी घनी मात्रा में बापू ने पहले कभी नहीं देखी थी। अपनी ओर से निश्चिन्त पर बैलों के साथ तादात्म्य प्राप्त दृष्टि ने उस सूने में भी बापू को भीतर तक हिला दिया। धीरे-धीरे उसकी चिन्तन-शक्ति शिथिल पड़ने लगी। लगने लगा ये सारा खुलापन उसे निगल जायेगा। और इन्हीं क्षणों में एकदम उसके दिमाग में आया यहाँ सड़क होती तो ?

सुबह झुटपुटे में गाड़ीवान बैलों की पीठ थपथपा रहा था। ऐसे जैसे उन्हें अपने ऊष्णस्पर्श की भाषा में समझा रहा हो मेरी चिन्ता तुम्हारी [illegible]

नहीं है। तुम सिर्फ चार पैरवाले जानवर नहीं हो, मनुष्य की किस्मत तुम्हारे हाथ बंधी है।

बाबू ने राधा को गाड़ी पर चढ़ाया और वे चल दिये। मायके से दूसरी बार ससुराल आती हुई राधा। धूप को उसने रजाई की तरह ओढ़ लिया। तपती देह। वह नहीं समझ पा रही थी कैसे अपने आंसू रोके। बाबू ने हाथ से छूकर देखा तो बुखार था वह फफक ही पड़ी।

'अभी पहुँचे जाते है'—बाबू ने कहा।

'मुझे डर लगता है'

'किससे?'

'इस खुले आसमान से, मैदान से, पहाड़ से, सन्नाटे से बाबू को लगा कह दे—मुझे भी लगता है। और यह भी कि यही सब है, हम कुछ नहीं पर वह कुछ नहीं कह पाया। दो क्षण बाद में बोला—'बेकार डरती हो अभी पहुँचे जाते है।'

गाड़ीवान ने गाड़ी तेज कर दी। घटा भर मे ही पहुँच गये। बाबू गाड़ीवान को ठहरने को कहकर भीतर चला गया। दस मिनट बाद लौटा तो हाथ मे गरम दूध का भरा हुआ गिलास था। गाड़ीवान ने मना किया। फिर बैलों की ओर देखा।

बाबू को कुछ समझ मे आया— 'काका बैलों को भी चारा डाल दूंगा। तुम दूध तो लो।'

गाड़ीवान ने गिलास लिया। फिर वाणी से अधिक आंखों से आशीर्वाद देता हुआ बोला— 'भगवान तुम्हारा भला करे।'

रात में भी राधा बुखार में तप रही थी। चिमनी के मद्धिम प्रकाश मे राधा का गोरा निस्तेज पीला मुह जैसे-जैसे वह उस चेहरे को देखता जाता था उसकी हथेलियाँ सर्द होती जाती थी। उसे यह भी लग रहा था कि उसके घुटने दुख रहे है। इस अहसास के साथ ही उसे लगा राधा सो रही है, अच्छा हुआ अन्यथा . पर प्रतीक्षित क्षणों को अंधेरे मे या धुंधलका देखता कहीं उन गहरे मे साल भी गया। घूम फिर कर एक ही बात उसके मस्तिष्क को कुरेदती रही थी—अगर सड़क होती तो बहुत कुछ अवांछित होने से बच सकता था। पर सड़क तो अपनी सरकार लायेगी। जब देश आजाद होगा। तब सड़क और बिजली के आते ही सब कुछ बदल जायेगा।

उस दिन आजादी मिली थी और यह संयोग ही है कि उसी दिन बाबू के बेटा हुआ था। जीवन में खुशी हरी दूब पर खिली हुई धूप की तरह फैल गई थी।

अपनी सरकार, अपना राज! कैसी थी वह अनुभूति! कैसा था भविष्य के प्रति विश्वास? लगता था तकदीर अब अपनी मुट्ठियों में कैद है। अपनी धरती, अपना देश। पहले तो कुछ भी अपना नहीं था। अब सब कुछ अपना है। और इसी एहसास के साथ वह रोशनी में दमकते खूबसूरत गांव के सपने में डूब जाता है। उसके सारे जीवन की कमाई थी मनुष्य की क्षमता पर विश्वास करना आना। फिर छः साल साल सड़क नहीं आई तो भी वह अविश्वास नहीं कर पाया। गांव वालों से उसने इतना ही कहा—'बरसों की समस्यायें कोई मिनटों में दूर नहीं हो जायेंगी।' पर मन में दुःख भी था। आजाद को स्कूल भेजने मात्र के ख्याल से उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। तो वह भी अब हर रोज रेत ढोयेगा। उसकी आंखों में भी रेत का सागर लहरायेगा। फिर सोचा साल दो साल वह स्वयं ही क्यों नहीं पढ़ा देता। फिर तो सड़क आ ही जायेगी। और वह आजाद को घर में पढ़ाने लगा। लेकिन फिर पांच साल और बीत गये। राधा बोली—'छोरा बड़ हुआ जा रहा है। तुम भी दूसरे गांव में पढ़ने जाते थे कि नहीं।'

बाबू सचमुच निरुत्तर हो जाता है। पर उसे समझ नहीं पाता कि कैसे वह रात में अंधेरे में तैरते अपने बचपन को भूलने के लिए आंख खोल लेता है। कभी चिमनी जला लेता है। कभी बाहर टहलने लगता है। फिर महसूस होने लगता है उन्होंने तो स्वयं उस रेतीले सागर को महात्मा जी के शब्दों को पुल बनाकर पार कर लिया था। आजाद के पास क्या है? इतने वर्षों में कोई जन-प्रतिनिधि यहाँ आकर झांका तक नहीं है। जहाँ पूरी मनुष्य जाति के भविष्य का प्रश्न हो वहाँ यह बात कैसी पीडा देने वाली है, बाबू किससे कहे? मुश्किल यह भी है कि अब वह सिर्फ बाबू नहीं रहा। बाबू जी हो गया है। वह सोचने लगता है क्या आजाद की तरह ही गाव में दूसरे बच्चे नहीं हैं? क्या उनके मा-बाप के स्वप्न नहीं हैं। बिना किसी आधार के अपने विश्वास की दम-तोडती शक्ति को वह कैसे और कब तक जीवित रख सकता है? पर कुछ तो करना ही होगा। उसने सोचा अब वह अपनी अकड़ छोड देगा। वह नहीं सोचेगा स्वयं क्षेत्र-प्रतिनिधि को आना चाहिए। वह स्वयं जाकर बात करेगा। लोगों को भी ले जायेगा। पर पहले अकेला ही जायेगा।

दूसरे दिन सचमुच ही बाबू जी जन-प्रतिनिधि के घर पहुँच गये। नौकर ने इंतजार करने को कहा। बाबू जी थके हुए तो थे ही। भीत का सहारा लेकर

आराम से बैठ गये। आँखे झपकने लगीं। इस स्थिति से बचने के लिए उन्होंने सामने टेबिल पर से अखबार उठा लिया। कोई आधा घंटा और बीत गया। अब बाबू जी अखबार भी पढ़ चुके थे। उन्होंने चारों ओर दीवार पर निगाह डाली और नौकर से कहा—'साहब कब तक आयेंगे?'

'बस अभी आने वाले हैं।'—नौकर ने बड़े इतमिनान से कहा।

फिर कोई आधा घंटा बीत गया। तभी साहब सिल्क का धोती-कुर्ता पहने बाहर निकले। कलाई पर घड़ी बाँधते हुए उन्होंने कहा— आई एम सॉरी। मिनिस्टर साहब का फोन आया है। अभी जाना है। तुम फिर आना। तुम्हारा काम जरूर हो जायेगा। न भी आ पाओ तो काम डाक से लिख भेजना। हम जरूर देखेंगे। आप विश्वास रखिये।'

बाबू जी उनकी शक्ल देखते रह गये। शब्द तो आश्वासन के कह गये थे। मगर वे आश्वस्त नहीं कर पा रहे थे। बाहर गाड़ी स्टार्ट होने की आवाज आई तो उस घर्र घर्र में उनका दिमाग भी घर्राने लगा। अच्छा हुआ गाँव के किसी आदमी को साथ नहीं लाये वरना

रास्ते में फिर वही मिट्टी... बाबू जी को लग रहा था—गुलाम देश में शब्दों का अपना एक अर्थ था। वे भविष्य की कल्पना थे। पर आज शब्द का अर्थ खोया है। वे कहे जाते हैं पर जीवन और काल को कुछ दे नहीं पाते। इससे आगे क्षण भर बाबू जी कुछ सोच नहीं पाये। वहीं रास्ते में मिट्टी में बैठ गये। एकाएक ख्याल आया—पिता कहते थे, 'तू पढ़ लिख। कुछ बन जायगा। गाँव की भी दशा बदल जायेगी।' मैं पढ़ लिखकर क्या बना हूँ? क्या मैं आजाद को स्कूल भेजूँ तो वह क्या बन जायेगा?'

पिता मेरा भविष्य देखते रहे। उन्होंने मेरे चेहरे पर कभी मुस्कुराता बचपन नहीं देखा। उन्हें शायद इस बात का ख्याल भी नहीं आया। मुझे आता है। मैंने आजाद के चेहरे पर मुस्कान देखी है पर मुझे उसका कोई भविष्य नहीं दिखाई देता। मैं उसे मुस्कुराता और अंधेरे में डूबता नहीं देखता रह सकता। तो क्या उसके भविष्य को देखने के लिए मुझे उसके रोम-रोम में लहराता रेत का सागर देखना होगा? रेत ढोते ढोते सीधे जवानी को नहीं, बुढ़ापे को आमन्त्रित करना होगा? अच्छा हुआ पिता स्वप्न देखते-देखते मर गये। मैं अब स्वप्न भी नहीं देख सकता।

आजाद अब स्कूल जाने लगा था। बाबूजी पूछते—'क्यों आज स्कूल में काम नहीं दिया?'

पड़ोस में रामलाल की माँ बहुत बीमार है। सुबह तक शायद बचती नहीं। अस्पताल तो शहर में ही है। अब इस हालत में ले जाया भी नहीं जा सकता। बाबू जी यह सोच ही रहे थे कि बाहर चबूतरे पर रामलाल के घर वालों की रोने की आवाज सुनाई दी। तो क्या बुढ़िया मर गई? अभी तो शाम ही है। सारी रात मर्दों में बैठना होगा। सड़क होती तो.... उन्हें याद आया एक बार दादी बहुत बीमार पड़ गई थीं तो गाय-भाव करके रात में अकेला ही घोड़े पर डाल कर ले जाने की हिम्मत कर बैठा था। फिर गांव के दो तीन लोग भी साथ हो लिये थे। फिर भी बार-बार दादी को मिट्टी में लिटाना पड़ता था और बाबू को हर बार बैठते समय लगता था सड़क सिर्फ सड़क नहीं, पैर भी होती है।

आज रामलाल के घर वालों की रोने-धोने की इन आवाजों ने फिर उसके जख्मों को हरा कर दिया है। बाबू जी सोच रहे है अगर फिर कभी विधायक के जाता तो हो सकता था कुछ बात बन जाती। अब उस घटना को भी तो कई बरस बीत गये। पर कितनी ही बार चिट्ठी पत्री तो की थी। जुलूस, नारे, प्रदर्शन क्या-क्या नहीं किया? पर कुछ नतीजा हाथ नही आया। फिर जाये बिना पार पड़ने वाली नही है। और सचमुच ही बाबू जी तीन दिन बाद क्षेत्रीय प्रतिनिधि के यहाँ पहुँच गये। शाम सात का समय था। साहब दग-

हमारे बदले में जिनसे इन की गमक भी आ रही थी, गाड़ी की तरफ बढ़ र
थे। चेहरे पर कैसी चमक और निश्चिन्तता थी? जीवन ऐसा आह्लादकारी
भी होता है, बाबू जी शायद यह भूल ही गये थे। अगर आज उन्होंने साहब
को ऐसे ठाट-बाट में नहीं देखा होता तो शायद उन्हें यह याद भी नहीं आता

साहब ने बड़ी विनम्रता से नमस्कार किया और बोले— 'आप सुबह आइये।
फिर नौकर की ओर मुड़ कर कहा— 'इनसे पर्ची लिखवा लो। मुझे सुबह
देना।' फिर बाबूजी की ओर मुड़ कर कहा — आप लिख कर दे दीजिए
गाँव से शायद सुबह आना मुश्किल हो। काम तो ऐसे भी हो ही जायेगा
आप बेकार तकलीफ क्यों करते हैं?

लौटते समय बाबू जी फिर उस रथ में बैठ गये। अपना और रथ....।
सोचने लगे अब बार बार शहर आना भी तो सम्भव नहीं होगा। घुटनों
इतना दम भी तो नहीं रहा। पर हर बार होता यह है कि शहर से गा
लौटते समय शहर तो छूट छूट जाता है पर शहर का शोर और गति उनके
रोम-रोम में लिपट कर आ जाती है। और आँखों में बिजली के दमदमा
शहर के सिवा कुछ भी तो नहीं होता। एक बार दिवाली पर शहर देखा थ
तो उसकी सजावट देख कर लगा था—स्वर्ग बिल्कुल स्वर्ग....स्वर्ग क्य
इससे अलग हो सकता है? पर आज? शहर अधर में रेत में बैठे हुए वे सोच र
थे—शब्द सिर्फ शब्द नहीं गति भी है। उसके अभाव में हम द्वीप बनते ज
रहे हैं। धारा से अलग जड़ और निस्पन्द। क्या गाँव का हर चेहरा एक द्वी
की मुद्रा में नहीं बदलता जा रहा?

आजाद ने स्कूल जाना तो बंद कर ही दिया था। अब बाबू जी ने खेत भी बे
दिये हैं। एक परचूनी की दुकान खोल ली है। आजाद को अपने साथ उस
पर बैठाते हैं। खेत होने से सौ झंझट। कभी सूखा पड़ जाता है, कभी मेह कह
ढा देता है। फसल अच्छी हो तो शहर तक लाने में लड्ढे का भाड़ा ही कम
तोड़ देता है। एक बार हिम्मत भी की थी। ऊँट खरीद लिया था। पर सा
भर बाद ही बीमार पड़ गया। अचानक जाने क्या हुआ था? कैसी कटी थ
वह रात? मनुष्य जब मरता है तब कुछ भी तो नहीं ले डूबता। पर ज
जानवर मरता है तो बहुत कुछ ले डूबता है। पूरा का पूरा भविष्य। बस, उ
दिन ऐसा ही लगा था। फिर हिम्मत टूट गई। खेत बेच दिये। पर रह-र
कर ख्याल उठता था सड़क होती तो ऊँट जानवरों के डॉक्टर तक पहुँच सकत
था।

कभी लगता है—आजाद से बातें करूँ। अपने बीते दिनों की, आजादी की। कैसा जोश था, कैसी उमंग थी। पर आजाद की इतिहास में कोई रुचि नहीं है। सड़क होती तो इतिहास रक्त में बहने लगता।

आजाद अब परचूनी का सामान साइकिल पर रख कर भूड़े में पैदल चलता हुआ साइकिल घसीटता है और मैं आजाद के चेहरे पर असमय झलकते हुए बुढ़ापे को देखता रहता हूँ।

बाद में आजाद का ब्याह हो गया था। तब बाबू जी की स्मृति में एक बार फिर सड़क कौंधी थी। फिर उन्होंने उसे झटक दिया था।

पिछली बार से पिछली बार, पहली बार जब झण्डे वाली जीपें गाँव में आई थी और विधायक बनने का सपना लेकर आने वाले आदमी ने पहली बार बाबू जी का दरवाजा खटखटाया था तो मन में कुछ आशा और विश्वास जगा था। नीम के नीचे गाँव वालों की बैठक हुई थी। कसमा धर्मी के बाद तय हुआ था सारा गाँव इस नई पार्टी को मत देगा और नई पार्टी गाँव में सड़क लायेगी। बाबू जी एक बार फिर आशा और विश्वास से ऐसे जीवित हो उठे थे जैसे फिनिक्स अपने राख से जी उठता है।

पर.... ..

वर्षों निकल गये। सब कुछ वही का वही ठहरा है। रेत को देखते और जीते हुए बाबूजी को स्वयं अपने रेत होने का अहसास होने लगा है।

अब फिर गाँव में झण्डे वाली जीपें आई है। पर बाबू जी ने निर्णय कर दिया है कोई ठप्पा लगाने नही जायेगा। रमन का खून खौल उठता है। साले बुड्ढे का दिमाग फिर गया है। ढीप की तरह जीने से भी क्या होगा। बुड्ढा सोचता है कभी कुछ नही होगा। कोई नही सुनता न सुनेगा। पर यह नही समझता लोगों को सुनने भी नहीं दिया जाता। ऐसे टीबों, माटी वाले गाँवों मे सड़क आ गई तो शराब का अवैध धन्धा किस जगह से जारी रहेगा?

मैं सब जानता हूँ। वो झोपडे मे रहने वाले मुलिया-तिलिया खूब पैसे वाले हैं। शहर में मिनिस्टर से लेकर विधायक तक उसे जानते है। पर कैसा गऊ बन कर रहता है। लड्डा रखना कोई मजाक तो नहीं है। कैसे रख पाता है? पर बुड्ढा कभी ऐसे नही सोचेगा कि सडक लाने वाले नहीं लाते पर आज अपने स्वार्थ के लिए सड़क को रोकने वाले भी पैदा हो गये है।

वो सड़क ना बनाए तो मंदिर सीधा रह जाता। वरना उसे भी ठप्पा लगाने का अधिकार मिल जाता और वह भी सारे गाँव की राय के खिलाफ जाकर ठप्पा लगा आता। सारी हैकड़ी निकल जाती बुड्ढे की। गाना लोगों की मिली-भगत पर विश्वास भी तो नहीं करता। अपनी धुन में रहता है।

बाबू जी रमन को देखते हैं तो खुश होते हैं कि चलो कोई तो जिन्दा है। पर इस जीवन की अवधि कितनी छोटी है, रमन नहीं बाबूजी जानते हैं। वे नहीं चाहते उनकी तरह कोई लम्बा जी कर मरता रहे। इससे तो अच्छा है आवाजें बन्द दरवाजों में लौट जायें। ये आवाजें वे शब्द जो अब अपना अर्थ भी नहीं देते।

रमन यह सब नहीं जानता। बस जानता है बाबूजी का दिमाग खराब है। और बाबूजी ? बन्द दरवाजों के भीतर उनका दिन जाग में चीखने को होता है – रमन बन्द जिन्दगी नहीं बदलते। सड़क बदलती है। और यह भी कि एक सड़क के बिना गाँव ठहरा है। सड़क हाती का इतिहास रक्त में बहने लगता।

घर घुसेरू

शीतांशु भारद्वाज

रामनगर, मोहान, मतरौंजगाल—सभी तो पीछे छूटने लगे। धूल के गुब्बारे उड़ाती हुई उसकी जीप मिकियासैंण की दिशा मे दौड़ने लगी। मध्या समय वह जीप रामगंगा और गगास नदी की घाटी जा रुकी। इस ओर के बाजार मे उनके समर्थकों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। पंद्रह-बीस मिनट तक वे वही खड़े अपने संगी-साथियो की आसल-कुसल पूछते रहे। उसके बाद उनकी जीप जिला परिषद् के डाक-बंगले के अहाते मे आ रुकी।

दौरे का उनका यह कार्यक्रम अचानक ही बन पड़ा। गुसाईंदा की दुकान के आगे बेंचों पर राजनैतिक जुगालियाँ करते हुए साथी लोग उन्हे देख कर औचक रह गये। चट मगनी, पट ब्याह के अनुसार यार लोग व्यवस्था मे जुट गये। सदानद ने उनके ठहरने का प्रबंध डाक-बंगले मे कर दिया। स्थानीय ब्लॉक प्रमुख गोपालसिंह ने अपनी ओर से वहाँ जलपान की व्यवस्था कर दी।

—भई वाह! पहाड़ी ककड़ी के उस जायेकदार रायते और कुरकुरी पकौड़ियो को देखकर उनका दिल बाग-बाग हो आया, मजा आ गया। ऐसा जायेकदार जलपान तो दिल्ली-लखनऊ मे भी नसीब होने वाला नही ठहरा!

—तभी तो! गोपालसिंह ने उनके आगे पकौड़ियो और रायते की प्लेटें सरका दी, पहाड़ छोड़ कर हम लोग विलायत भी क्यों न चले जायें पर सस्कार तो हमारे अपने साथ ही रहते हैं न।

—क्यों हो देवदा! सदानद ने उनको देखकर आँख दबा दी, लगता है, 'टर्राने' का मौसम फिर से आ गया है।

देवदा पकौड़ी कुतरते-कुतरते रह गये। साथी की उस व्यंग्योक्ति को वे चुपचाप पी गये। जब साथी-सगी ही इस प्रकार के फिकरे कसने लगे तो मतदाताओ को तो और भी खुली छूट हुआ करती है। फिर भी, साथी का मन

रखने के लिये उन्होंने बाहरी मन से हँसी का जोरदार ठहाका लगा दिया, हां हो ! ऐसी ही हवा चल पड़ी है।

—यार देवदा ! गोपालसिंह उन्हें दिन-दोपहरी के सपने दिखलाने लगे, अब की सीधे ही मुख्यमंत्री बन जाते तो

—तो अपने इलाके की पौ-बारह ही हो जाती। मातवरसिंह ने बात पूरी की।

इस पर वहाँ हँसी के कई सम्मिलित ठहाके लग उठे।

देवदा ने चाय की घूँट भर कर अपने समर्थकों को देखा, इधर की हवा का क्या रुख है ?

सदानंद तो जैसे मतदाताओं का प्रतिनिधित्व ही करने लगे, जनता की भली चलाई ! जिसकी ओर से भी टुकड़ा मिल गया, उसी की गोद में जा दुबकी।

—अरे हाँ ! गोपालसिंह को फाइलों में दबी पड़ी एक योजना की याद हो आई, क्यों हो, आप मानिला मोटर-मार्ग का निर्माण क्यों नहीं करवा देते !

—हाँ। मातवर ने भी उन्हीं का समर्थन कर दिया, इससे दोहरा लाभ होगा। आम के आम और गुठलियों के दाम ! जन-कल्याण के साथ-साथ लोगों को काम भी मिलने लगेगा।

—राजधानी पहुँच कर देखूँगा। देवदा जमुहाई लेने लगे।

जलपान के बाद सभी साथी लोग अपने घरों को जाने लगे। गोपालसिंह वहीं रुक गये। उन्होंने पूछा, देवदा, कितने दिन रुकने का कार्यक्रम है ?

—दो-चार दिन तो रुकूँगा ही। देवदा बोले।

—अब आप बंगले पर जाकर आराम कीजिये। गोपालसिंह भी घर जाने के लिये उठ खड़े हुए, मैं कल सुबह आऊँगा।

—ठीक है। देवदा मुस्कुरा दिये, कल दोपहर बाद चौकुड़िया में एक जन-सभा का आयोजन करवा देना।

—मैं रात की गाड़ी से ही मनराखजी को खबर भिजवा देता हूँ। कह कर गोपालसिंह वहाँ से चल दिये।

वे डाक-बंगले में आ गये। बाहर दो चौकीदार के साथ उनका ड्राइवर बीड़ी फूँक रहा था। उन्होंने आवाज दी, दीवान !

—जी साब ! ड्राइवर अंदर आ गया।

—खाने-पीने की क्या व्यवस्था है ? उन्होंने जानना चाहा।

—ब्लॉक प्रमुख अपने घर से भिजवाने का कह गये है।

—फिर ठीक है। देवदा गुदगुदे बिस्तर पर पसर गये।

दूसरे दिन देवदा दोपहर बाद चौकुटिया की जन-सभा को संबोधित करने लगे, सज्जनो और देवियो ! बदलते समय के साथ-साथ हमारे पहाड भी करवट बदलने लगे है। फिर भी, यहाँ जो कुछ हो रहा है उससे हमारी नाक कट रही है। पेडो की अधाधुध कटाई, पानी की किल्लत, जातिवाद का जहर—कुछ ऐसी ही समस्यायें है जो पहाडो को पनपने मे बाधक बनी हुई है।

तभी कही समीप से ही नारेबाजी होने लगी :

—सुरा के ठेकेदार—हाइ ! हाइ !

—शराब हटाओ—पहाड बचाओ !

—हमारी एकता—जिंदाबाद !

देवदा का माथा ठनका। ऐसे में भी उन्होने हिम्मत नही हारी। वे अपना भाषण जारी रखे रहे, हमारे इन युवा साथियो के नारे उचित ही है। हमे पहाड़ो से शराब का नामोनिशा मिटाना होगा। यहाँ तक कि नशीली दवाइयो को भी यहाँ से समूल नष्ट करना होगा। लिक्विड और टिंचरी हमारे युवको को दोहरा नुकसान पहुँचा रही हैं। इसके लिये हमे घर-घर जाकर जनता मे जाग्रति लानी होगी।

देवदा को उस भाषणबाजी मे फिर से कोई व्यवधान उपस्थित नही हुआ। पहाडो के लिये उसी प्रकार धुंआधार भाषण देते रहे।

चौकुटिया के रेस्ट हाउस मे देवदा स्थानीय संवाददाताओ के साथ जलपान करने लगे।

—पहाड़ों मे आज भी नारी का शोषण हो रहा है। एक पत्रकार ने देवदा की ओर देखा, इस पर आप क्या कहते है ?

—जी हाँ। सामंती संस्कार आज भी नारी को खरीद-फरोख्त की वस्तु समझे हुए है। देवदा ने टिप्पणी की, आज भी यहाँ के दाने-सयाने ठाकुर उन्हे महफिल मे नचवाते है।

—नचवाते हैं या कि नाचने पर विवश करते हैं? किसी दूसरे पत्रकार ने पूछा।

—दोनों ही बातें हैं। देवदा बोले, निर्धनता के कारण ही नारी को नाच-मुजरों के लिये विवश होना पड़ता है।

—उनके लिये आपके पास कोई योजना?

—जी हाँ। देवदा ने बताया, इस वर्ष के अन्त तक पर्वत-प्रदेश के ऐसे भूमिहीन शिल्पकारों को तराई भाबर की ओर बसाया जा रहा है। वे चाहें तो अपना कोई छोटा-मोटा व्यवसाय भी कर सकते हैं। चाहें तो खेती बाड़ी भी कर सकते हैं। सरकार उन्हें जमीन ही नहीं, आर्थिक सहायता देने पर भी विचार कर रही है।

संवाददाता सम्मेलन के बाद देवदा रेस्ट हाउस में अकेले ही रह गये। उसी समय वहाँ मनरालजी आ गये।

—आइये मनरालजी! देवदा मुस्कुरा दिये।

—देवदा, आज तो मेरे साले का विवाह है। उसमें आपको भी शामिल होना है। मनरालजी उन्हीं की बगल में बैठ गये।

—अरे भई, उसमें मुझे क्यों घसीट रहे हो? उनके माथे पर सलवटें उभर आईं।

मनरालजी हँस दिये। उन्होंने कंधे उचकाये, आज पहाड़ी बारात के भी मजे ले लो। ऐसे मौके बार-बार तो नहीं आते न!

—चलो भई! देवदा बारात में जाने के लिये सहमत हो गये, आपका अनुरोध कौन ठुकरा सकता है?

बारात चौकुटिया में ही थी। देवदा के सम्मिलित होने से उसमें चार चाँद ही लग गये। आतिशबाजी होने लगी। धूम-धड़ाके के साथ वह बारात चल पड़ी। वधू पक्ष के घर पहुँच कर वहाँ सभी रात्रि-भोज करने लगे। उसके बाद सामने के एक खाली खेत में बारातियों के मनोरंजन के लिए नाच-मुजरों का आयोजन किया हुआ था। वे वहीं टके शामियाने की ओर जाने लगे। आगे की पंक्ति में गाव-तकिये लगे हुए थे। देवदा वहीं एक ओर बैठ गये।

बारातियों की उस महफिल में हँसा हुड़कयाण/नर्तकी/ऐसी प्रकट हुई जैसे कि बहुत-सी बदलियों के बीच में चाँद उग आया हो। देवता ठगे-से रह गये।

उनके अंदर कहीं हूक-सी उठी। ऐसे में वे अपना मानसिक संतुलन खोने लगे। हँसा को वे बचपन से ही चाहते रहे हैं। तब वे इंटर में पढ़ा करते थे। कुणखेत गांव के हरिजन टीले की वह किशोरी कितनी शोख और सुन्दर थी। वह जिसे भी देखती उसका दिल ही चीर कर ले जाती।

—बाबू साहब, नमस्ते! हँसा ने देवदा के पास आकर उनकी आसल-कुशल पूछी, कैसे हैं?

—न म स्ते। देवदा का गला खुश्क हो आया। हँसा की वह पहचान देवदा की प्रतिष्ठा में बट्टा लगा सकती थी। यह भी बात क्या बात हुई कि राज्य स्तर के नेता एक मामूली-सी नाचने वाली को मुँह लगायें!

हँसा ने दूल्हे राजा के आगे तीन बार सिर झुका कर उन्हें अभिवादन किया। उसका पति भौनराम वहीं एक ओर बाजा लिये हुए बैठा हुआ था। वह बाजा बजाने लगा। हँसा एक लोकगीत गाती हुई मुजरा करने लगी।

देवदा के अंदर उथल-पुथल मचने लगी। अभी-अभी चौकुटिया की जन-सभा में उन्होंने नारी मुक्ति की डींगे हाँकी थीं। संवाददाता सम्मेलन में भी तो उन्होंने वही बात दोहराई थी। नहीं, यहाँ रहना ठीक न होगा। अगले ही क्षण वे उस महफिल से उठ कर चल दिये।

—कहाँ चले? गोपालसिंह ने उनके पास आकर पूछा।

—मैं ऐसी महफिलों का बहिष्कार करता हूँ। देवदा उस महफिल से वॉक-आउट करने लगे, यही परंपरायें तो हमारे पहाड़ों को रसातल की ओर ले जा रही हैं।

देवदा को कोई भी तो नहीं रोक पाया। गोपालसिंह उनके साथ हो लिए। उनके रहने की व्यवस्था एक अलग कमरे में की गई थी। सोने के लिए वे उस गुदगुदे बिस्तर पर लेट तो गए किन्तु नींद नहीं आ पा रही थी। उनकी नींद तो हँसा चुरा चुकी थी। उन्हें नींद आई भी तो उसी के सपने लेकर।

अगले दिन भी देवदा आसपास के गांवों में भाषण झाड़ते रहे। शाम को वे फिर से भिकियासैंण के डाक बंगले में लौट आये।

बंगले में देवदा अकेले ही थे। हँसा की यादें उनके अंदर में तूफान मचा रही थीं। मोड़ पर टहलते हुए वे बार-बार नदी पार की पहाड़ी ढलान को ही देखते जा रहे थे। चोटी की ढलान पर हँसा का घर साफ दीख रहा था। सड़ियागी पूरा जैसे गांव के माथे पर लिख कर रख गई थी। वे और

भी बेचैन हो आये। हुमा को पाने की उनकी इच्छा और भी बलवती होने लगी। जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी निकल ही आती है। यही कुछ सोच कर वे मुस्कुरा दिये।

—साब ! ड्राइवर ने उनके पास आकर उनकी तंद्रा भग की।

वे ड्राइवर को देखने लगे।

—जसोदसिंह जी रात का भोजन भिजवाने का बोल गये हैं। ड्राइवर ने उन्हें सूचित किया।

—ठीक है। कह कर वे अंदर चल दिए।

समीप के गाव-प्रधान जसोदसिंह ने डाक बगले में रात का भोजन भिजवा दिया। खाना खाने के बाद देवदा फिर से लॉन पर टहलने लगे। नीचे खीऽ-खीऽ करती हुई नदी बह रही थी। अंदर आकर उन्होंने टॉर्च उठा ली। ड्राइवर उन्हीं के पास चला आया।

—मैं जरा नदी पार किसी मित्र के पास जा रहा हूँ। वे ड्राइवर से बोले, हो सकता है, रात को वहीं रह जाऊँ।

—लेकिन रात के बखत । ड्राइवर ने चिन्ता व्यक्त की।

—अरे मर्द, यहाँ के सारे राह-गुजेरे मेरे कुचले हुए हैं। मुस्कुरा कर वे नीचे की पगडंडी पर हो लिये।

चारेक फर्लांग की सीधी चढ़ाई चढ़ने के बाद देवदा हुमा के गाव में जा पहुँचे। हरिजन टोले के समीप पहुँच कर वे हांफने लगे। जब साँस सम पर आई तो वे हुमा के घर की दिशा में हो लिये। वहाँ पहुँच कर वे अंदर की टोह लेने लगे। नीचे गोठ (निचली मंजिल) से रोशनी की पतली लकीर फूट रही थी। वहाँ हुमा चारपाई पर अकेली ही पसरी हुई थी। धीरे-से द्वार ठेल कर वे अंदर चल दिये। दीये की उस पीली रोशनी में हुमा एकदम चाँद-सी लग रही थी। उस समय वह नींद की आरंभिक अवस्था में थी। देख कर उनके मुँह में पानी भर आया।

उन्होंने उघड़े हुए द्वार को अंदर से बंद कर लिया।

दरवाजे की चीं-चुर्र से हुमा की नींद उचट गई। उन पर दृष्टि पड़ते ही वह बिस्तर से उछल कर उठ खड़ी हुई। वह कोने में खड़ी हो गई। जो कुछ वह देख रही थी उस पर उसे विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। वह दोनों हथेलियों से आँखें मलने लगी।

—विश्वास ही नहीं होता है न ! देवदा के मुंह से लार टपकने लगी।

—अब होने लगा है। हंसा वहीं एक ओर पड़ी धोती पहनने लगी, इस अधरात में..।

—तेरे दर्शनों को चला आया। देवदा मुस्कुरा दिये, बैठने को भी नहीं कहेगी ?

हंसा ने उनके लिये मूढा सरका दिया, लेकिन इस तरह से....।

—पगली ! देवदा के हाथ उसके कधो पर जा लगे, प्यासा कुएं के पास ही तो आयेगा न !

—लेकिन अब तो कुएँ का पानी जहरीला हो आया है। हंसा ने उनके हाथ एक ओर झटक दिये। वह अपना निचला ओठ चबाने लगी, आप तो इतने बड़े....।

—आदमी-औरत छोटे-बड़े नहीं हुआ करते। देवदा मूढ़े पर बैठ गये, मन लगने की बात कुछ और ही हुआ करती है।

हंसा को देवदा की मंशा समझते देर नहीं लगी। यह ठीक है कि कभी उन दोनों ने एक-दूसरे को मन-प्राण से चाहा था। किंतु....। किंतु इस प्रकार चोर-जारों की तरह से उनका आना उसे अच्छा नहीं लगा। उन्हें ऐसी घुस-पैठ नहीं करनी चाहिये थी। उसने पूछ ही तो लिया, क्यों हो, हाथी दांत वाला किस्सा कैसे करने लगे ?

—मत पूछ हंसा ! देवदा तो हंसा को पाने के लिये व्यग्र थे।

उन्होंने गहरी सांस खींची — हम लोग तो गरजने वाले बादल हैं।

हंसा के मन में कहीं कसक-सी उठी। एक बार देवदा ने उससे कहा था, अरी हंसा, जी करता है कि तुझे जेब में रख लूँ।

—तो रख लो न ! हंसा खिलखिला कर हँस पड़ी थी।

—हाइ ! हंसा उदास हो आई, अपने भाग में कहाँ ? मैं तो निपूती हूँ।

कुछ क्षणों तक उन दोनों के बीच चुप्पी छाई रही।

—क्यों हो ! वह चुप्पी हंसा ने ही तोड़ी। वह उन्हें जग हँसाई का अहसास कराने लगी—कहीं आपकी जमी-जमाई हुई साख पर कलंक न लग जाये !

—कोई कुछ भी कहे हंसा ! देवदा मूढ़े से उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने हाथ उसके कंधों पर रख दिये, मैं तेरे बिना नहीं रह सकता।

हंसा ने उनके हाथ एक ओर हटा दिये। वह अपना निचला ओंठ चबाने लगी, अगर कोई ऐसे ही चोर-जारों की तरह से आपकी पत्नी के पास...

हंसा ने जैसे देवदा की रग की काट दी। उस मर्माहत पीड़ा से वे तड़प उठे। हंसा उतनी सस्ती नहीं थी जितना कि वे समझे हुए थे। उन्हें लगने लगा कि उसके आगे उनकी दाल नहीं गल पायेगी।

—अच्छा हंसा ! देवदा ने गहरा उच्छ्वास भरा–प्यासा ही लौट चलता हूँ।

—जहरीला पानी पीने से तो प्यासा ही तड़पना ठीक है। हंसा मुस्कुरा दी। वह सदय हो आई–और फिर इन दिनों तो मुझे....। लाज से उसका चेहरा आरक्त हो आया।

देवदा के शरीर में झुरझुरी-सी उठने लगी। उन्हें लगा। तभी तो वह सबसे अलग-थलग निचली मंजिल में पड़ी हुई थी।

—अच्छा हंसा, मुझे माफ कर देना। देवदा बाहर जाने को हुए।

—नहीं तो, ऐसी कोई बात नहीं है। हंसा मुस्कुरा दी।

देवदा नीचे के खेतों की ओर चल दिये। चौक पर खड़ी हंसा उन्हें देखती ही रह गई। तभी दरवाजे की चीं-चुर्र से मौनराम की नींद खुल गई। आँखें मल कर वह बाहर छज्जे पर आ गया। उसने पूछा–कौन ?

देवदा की तो घिग्घी ही बंध गई। उतराई वाली डगर पर वे और भी तेजी से चलने लगे। मौनराम ने फिर से पूछा–कौन है ?

—बाघ ! हंसा बोली।

मौनराम जोर-जोर से चीखने लगा-बाघ ! बाघ !

उस शोर-गुल को सुन कर गांव वालों की नींद उचट गई। वहां लोग जमा होने लगे। उन पर प्रश्नों की बौछार होने लगी, कहाँ है बाघ ? क्या तुमने

उसे अपनी आंखों से देखा है ?

चौक पर खड़ी हंसा किंकर्तव्यविमूढ की स्थिति में खड़ी-की-खड़ी ही रह गई। उसके लिये इधर कुआं था तो उधर खाई। कहीं लोग ऊपर से पत्थर-बाजी न करने लगें ! वह गांव वालों की आंखों में धूल झोंकने लगी—नहीं तो। वह बाघ नहीं था। शायद उन्हें कोई सपना आया था।

—अरे ! हर कोई भौनराम पर बरसने लगा, इसने तो हमारी नींद खराब कर दी।

सबसे अधिक नींद हराम हंसा की हुई थी। अभी-अभी एक बड़ी दुर्घटना घट जाती। फिर भी, उसे इस बात पर संतोष था कि देवदा अखबारों की सुर्खी बनते-बनते रह गये। वे बाल-बाल बच गये।

सभी लोग अपने-अपने घरों को चल दिये।

—क्यों हंसा ! भौनराम सिर खुजलाने लगा—फिर वह कौन था ?

—घर घुसेरू ! हंसा ने ठंडी सांस ली।

—क्या मतलब ?

—घर घुसेरू माने बाघ !

—अरे बाप रे ! भौनराम दुम दबा कर अंदर कमरे में चल दिया।

पति की उस कायरता पर हंसा और भी उदास हो आई।

उधर, नीचे जा रहे देवदा बेहाल हुए जा रहे थे। एक ओर झाड़ियों में दुबके हुए वे बुरी तरह से घबड़ा रहे थे। उनकी टोपी सरेआम उछलती-उछलती रह गई। तभी उन्हें ऊपर से सुनाई दिया—नहीं तो, बाघ नहीं था। बाघ का आबादी में क्या काम ?

देवदा की तो जैसे जान-मे-जान लौट आई। गांव का कोलाहल कभी का शांत हो चला था। वे टॉर्च भी तो नहीं जला सकते थे। अंधेरे में ही राह टटोलते हुए वे डाक बंगले की दिशा में चलने लगे।

एक और द्रोपदी

मोहरसिंह यादव

ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में वह अनाथ हो गई थी।

मोहल्ले में कई दिनों तक चर्चा रही, 'निर्लज्ज भगोड़ी से मुक्ति मिली।'

चौदह साल की होते ही वह बंशी की हवस का शिकार हुई।

बंशी बोला, 'एक टके की छोकरी ऊपर को मुंह करने लगी थी।

सोलह साल की किशोर आयु में उसके गर्भपात हुआ।

तीन महीने वह हजारी सेठ के तहखाने में सड़ती रही।

सेठ ने दिल ही दिल सोचा, अच्छी, ठंडी और बेजान दुनिया से वास्ता पड़ा।'

फिर उसे भोलू की पीठ पर मालिश करते हुए देखा गया।

भोलू की दृष्टि में वह 'चंचल-मनमोहनी गुड़िया थी।

एक वर्ष बाद वह प्रकाश के मन की रोशनाई बनी।

प्रकाश ने उसे 'मीठा-रसीला आम समझा।'

अठारह साल के उन्मत्त यौवन में वह पुलिस हाउस के बाहर एक सेवक रूप में लालसिंह के पास दिखाई दी।

लालसिंह ने निराशाग्नि में जलते हुए झुंझलाकर कह दिया 'वह तो बांझ मौड़िया थी।

बाप की मौत हुई तब वह काली मोरी के प्राइमरी स्कूल में पढ़ती थी। कि
के पीछे गंदे नाले के पास थी—काली मोरी प्राथमिक पाठशाला। ब
कक्षा के रजिस्टर में उसका नाम दर्ज था—कुसुम कुमारी। बरसात के दि
पाठशाला की छुट्टी जल्दी हो गई। मेह में भीगती-भीगती थैला कांख में
वह घर पहुँची। देखा, चार-पांच औरतों के बीच घिरी मां रो-वि
रही है—डकरा-डकरा कर। वह भी रोने-रेंकने लगी—पहले धीरे
फिर जोर-जोर से।

चिमनिया की मां उसे थामने-पुचकारने लगी—मत रो बिटिया, राम की
है....अब रोबा सूं के होवै।

वह शांत नहीं हुई। अपनी बेहाल बिलखती मां को अनवरत देखती र
टुकुर-टुकुर, रोती, आंसुओं में लथपथ सजल आंखों से। रामप्यारी, सा
और कलावती, मा को समझा-बुझाने लगी—देख री चम्पा! बावली
बन! भगवान् के सामने कांई पेस चालै है। तू अपणो और अपणी टाबर
ख्याल कर। निगोड़ी देख! कहीं बीमार पड़ गयी तो........!

मा ने बात को सोच-समझकर बेटी की ओर देखा, फूल-सी खिलती-हँस
लाड़ली का चेहरा बुझा हुआ था, राख-सा। मा की आंखों में जुगनू से
गये। बेटी को छाती से चिपकाकर सुबकियां भरने लगी—लम्बी-लम्
फफक-फफक कर।

चार-पांच दिन घर का चूल्हा ठंडा पड़ा रहा। खाना पड़ोस से आया। पी
को आंसू बहुत थे। रातें आंखों की पलकों पर झूमती रहीं। एक अजीब-स
मातम चिपका रहा घर की दीवारों पर, मकड़-जाल की तरह। फूल-स
गुड़िया को औरतों की बातचीत से पता लगा कि पापा मर गये हैं। वह म
के मैले-मुरझाये गाल पर उंगली लगाकर बोली :

—मा ?

—हाँ।

—पापा मर गये ?

—हाँ।

—कहाँ गये, मरकर ?

—भगवान् के घर।

—कहाँ है भगवान् का घर ?

—दूर...बहोत दूर।

—कित्ती दूर?

—बहोत-बहोत दूर।

—चंदा मामा के पास?

—हाँ।

मा की आँखें डबडबा आयीं। बेटी को गले से लगाकर वह सिसकियाँ भरने लगी— थरथराती हुई। कुछ पल चुप्पी भर-भिर गयी घर-आँगन में। थोड़ी देर बाद मा के कमजोर हाथ ढीले पड़ गये। बेटी मा के हाथ पर बने चूड़ियों के निशान देखकर पुनः बतियाने लगी

—मा?

—हाँ।

—चूड़ियाँ टूट गयीं?

—हाँ, टूट गयीं।

—पापा ला देंगे भगवान के घर से?

—नहीं, अब नहीं लायेंगे।

—कभी भी?

—हाँ, कभी भी।

—सोयेंगे कहाँ?

—वहीं।

—उनके बिस्तर तो यहाँ हैं?

—हाँ।

—उनके कपड़े भी यहाँ हैं?

—हाँ।

—फिर?

—भगवान के घर और हैं।

—खूब?

—हाँ खूब।

बेटी हर वक्त ऐसे ही ढेर सारे सवाल पूछती। मां, हां अथवा ना में जवाब देती हुई थक जाती। लेकिन उसके सवालों का खजाना खाली नहीं होता था। सवालों के दर्पण में वह अपने पापा की तस्वीर देखती रहती—हँसते, उठते, बैठते, सोते, चलते और बतियाते हुए पापा!

कुछ दिन बाद मां को काम पर जाना पड़ा। माथुर और शर्मा के घर चौका-बरतन का काम मिल गया था। दस दिन बाद एस. बी. सिंह का घर और मिल गया। तीन घरों से मजूरी के रोजाना छ: रुपये मिलने लगे। मा का शोक-संताप तनिक-सा कम तो हुआ, पर सामान्य नहीं हो पायी थी वह। कुसुम गुड़िया पूर्ववत् स्कूल जाती रही। मां का सपना जो था—पढ़-लिख कर कहीं नरस-परस या मास्टरनी लग जाएगी तो कोई भला-सा छोरा ब्याह लेगा, वरना दर-दर की ठोकरें खाती भटकती रहेगी।

वैसे पढाई में वह काफी तेज थी। अपनी क्लास में सबसे अधिक चतुर-बुद्धिमान। बहिन जी उसे चाहती, प्रेम करती। मेहनत करके खूब पढाती। वह सुन्दर भी बहुत थी—चुलबुली चटक-चांदनी-सी तीखी-खड़ी नाक, घने काले घुँघराले केश, किसलय-सी सुकोमल आभायुक्त उजली मोर-सी आँखें, श्वेत संगमरमर-सा वर्ण, पतले पखुडी-से ओठ और काँसी की तरह टनटनाता हुआ ठुमकता बदन—वह परी-सी लगती थी, साक्षात्।

समय का रथ चलता रहा—निरन्तर, अविराम। एक वर्ष पथरीले रास्ते से गुजर गया। बरसाती बादल पूरे जोर से पुन: लौट आये, आसमान की छतरी पर। गुड़िया का नाम चौथे दर्जे के रजिस्टर में छलांग मार आया—कुसुम कुमारी। मच्छरों की भरमार बेशुमार बाढ़ आयी। मां मलेरिया की लपेट-चपेट में आ गयी। चार दिन बाद उसका जलता-तपता शरीर ठंडा पड़ गया—बर्फ की सिल की तरह, निस्तेज—निष्प्राण।

मोहल्ले के कुछ लोग-बाग इकट्ठे हुए। उसकी मा के शरीर को टाटी पर लिटाकर काँधिया ले गये। रानी बाजार के पीछे भूत टीले के उस पार। दिन ढले बाद लोग लौट आये खाली हाथ। वह मा के वियोग में बिलखती—रोती रही। आंखें सूज गयी। गला बैठ गया। सिर दर्द के बोझ से फटने लगा। और ओठ-मुंह सूख गये।

मां के जाने के बाद वह अकेली रह गयी—लावारिस, अनाथ और यतीम।

मा के बारहवे के बाद मोहल्ले के दस-पाँच लोग शाम को दो बार इकट्ठे हुए। कुछ दानी और कुछ मानी। अन्तिम संस्कार में हुए खर्च के लिए चन्दा किया

गया। रमेश को अपने निजी काम से देहरादून जाना था इसलिए चम्पा के फूलों को गंगा में विसर्जित करने का काम उसे सौंपा गया। 'गढ़मुक्तेश्वर के पुल पर गाड़ी से फेंक देना इन्हें गंगा मैया में' बाई पंच ने कहा था। रमेश ने सहर्ष स्वीकार कर लिया था यह प्रस्ताव।

दानियों-मानियों के मस्तिष्क में कुसुम भी गड़ी थी। प्रश्न चिह्न-सी जीवंत समस्या। चर्चा शुरू हुई। एक मुंह, अनेक बातें। एक सवाल और सैकड़ों समाधान। बूढ़े-जवान, गरीब-अमीर, द्विज-द्रविड सब की अलग-अलग खिचड़ी सलाह।

—इसे किसी अनाथालय में भेज दी जाए।

—इसे किसी निरवंसिया को गोद दे दी जाए।

—इसे किसी दया-धर्मी सेठ के घर डाल दी जाए।

—इसे किसी बड़े अफसर के बंगले पहुँचा दी जाए।

—इसे पड़ोस में हरजी के पास रख दी जाए।

आखिर फैसला हुआ। उसे हरजी के घर में धकेल दिया गया। थोड़ा-सा चंदा प्रलोभन के लिए हरजी के हाथ पर भी पंचों ने रख दिया। चालीस कदम दूर वह अपना पुश्तैनी घरौन्दा छोड़कर हरजी के घर चली गयी—किस्मत के इंतजाम पर। अकेली परी-सी गुड़िया पंचायती शब्दों की नींव पर भीड़ में पहुँच गयी। पहले अनाथ थी, अब सनाथ हो गयी। नाथ डाल दी गयी थी उसकी नाक में।

हरजी गरीब आदमी था। छोटी-सी काम चलाऊ नौकरी और सात बच्चों का बोझ। फूल-सी सुन्दर गुड़िया हरजी के बाड़े में बकरी की तरह पलती-बढ़ती रही। स्कूल छूट गया। बस्ता खो गया। जूते-मोजे टूट-फट गये। फिराक-चुन्नी चीर-चीर हो गयी। सविता बहिन जी का प्यार उसके मस्तिष्क के फ्रेम में स्थायी जड़-मढ़ गया। चौथी कक्षा के रजिस्टर में उसके नाम पर लाल स्याही की एक गहरी रेखा खींच दी गयी—मुरेखा नहीं, लहरदार-नामिट रेखा।

एक वर्ष से ज्यादा समय गुजर गया। दुःख-तकलीफ उसकी मानसिकता में समा गये—दूध में पानी की तरह। वह समय के रडार पर घूमती-डोलती रही। लेकिन हरजी की पत्नी का स्वर तीखा-कर्कश होने लगा था। मोहल्ले वालों ने बाद में कोई चन्दा नहीं दिया। किसी सेठ-साहूकार का भी दिल न

पसीजा। हरजी के घर मे दो प्याले आटे मे पहले नौ हिस्से होते थे। उसके आने के बाद दस हिस्से होने लगे। भाईचारे का गोंद अर्थशास्त्र के पानी मे घुल गया। पचों का फैसला पेट के भूखे गड्ढे मे दब गया। मानवीय दया-धर्म का हृदय फरेबी जिन्दगी के यथार्थ-बाजार मे नीलाम हो गया।

हरजी को घर मे रोजाना सुनने को मिलने लगा :

—मेरी छाती पर बेगार पटक दी।

—मोहल्ले का कूड़ा घर मे ठूस दिया।

—गंगू तेली राजा भोज की होड़ करने लगा।

—पापा, यह चुड़ैल मेरी रोटी खा गयी।

—पापा, इस कुत्ती ने मेरी कच्छी पहन ली।

—पापा, इस सूअरी की आज मैंने पिटाई की।

—देखो, सुन लो कान खोलकर, इसे किसी कुएँ-जोहड में डाल आओ। अब नही रहेगी यह इस घर मे।

हरजी तंग आ गया। पत्नी और बच्चो के बाणो से उसका शरीर छलनी बन गया। एक दिन उसके घर बंशी आ गया—दूर के रिश्ते मे पुराना एक जानकार। शाम को अन्धेरा गहराते ही दोनो बैठ गये, आमने-सामने। आपस मे सब समाचार पूछे। बीते दिनो की याद ताजा की। बातचीत के सफे पर एक कॉलम महगाई का जुडा। बढते अपराधो पर भी चर्चा हुई। एक स्थानीय नेता के भ्रष्ट होने का जिक्र भी हरजी ने किया। बीच मे रेल दुर्घटना और तूफान की बरबादी का भी प्रसग आया। बाल-बच्चो पर बात आते ही हरजी की अंगुली खाज पर पहुँच गयी।

—मेरे गले मे आजकल एक घटी पड़ी हुई है :

—कैसी घंटी ?

—है एक आफत।

—कैसी आफत ?

—एक छोकरी है।

—किसकी ?

—अनाथ।

—कहाँ की ?

—यहीं की।

—फिर....?

—मैं गरीब वेतन भोगी और ऊपर से....

—मेरे साथ भेज दो ?

—कोई दिक्कत तो....?

—नहीं, कतई नहीं।

—तो ले जाओ।

हरजी को जैसे दर्द की मरहम मिल गयी हो। उसकी पत्नी ने जब यह खबर सुनी तो उसकी भी बाँछे खिल गयी। काफी सोच-समझ और विचार-विमर्श के बाद उसे रात वाली गाडी से भेजना तय हुआ। खाना खाकर सारा मोहल्ला सो गया। हरजी और वशी रात के मेल की प्रतीक्षा मे बीडियाँ, फूकते रहे।

आखिर इन्तजार की घडियाँ समाप्त हुई। गाडी आने का समय करीब आ गया। हरजी ने सोई हुई कुसुम को फटी-सी चादर में लपेटकर वशी को सौप दिया। वशी दबे पाव स्टेशन की ओर चल पडा—अपार खुशी के साथ। जैसे उजाड बियावान के किसी खडित मदिर से उसके हाथ बहुमूल्य मूर्ति लग गयी हो—वडकी मरे दिनो मे।

सुबह होते ही हरजी की बीबी ने नियोजित तरीके से सारे मोहल्ले मे ढिंढोरा पिटवा दिया—रात को कुसुम कहीं भाग गयी। चुपचाप।

मोहल्ले के कुछ लोग भेले हुए। इधर-उधर गली-कूचो मे ढूढ-भाल की। दो-चार लडको को बाजार-होटलों की तरफ भी भेजा गया। एक व्यक्ति पब्लिक पार्क मे गया। हरजी गगा टाकीज के आस-पास घूमकर वापस लौट गया। आखिर मे वार्ड-पच ने शहर कोतवाली की जिल्द मे रिपोर्ट दर्ज करा दी—रात को कुसुम नाम की एक लावारिस लड़की भाग गयी। वह सुन्दर थी। साफ हिन्दी बोलती थी। उसकी उम्र लगभग चौदह वर्ष थी।

मोहल्ले मे लम्बे समय तक लोगो की जुबान पर उसका नाम रहा।

—वह बेचारी अनाथ थी।

—वह सुंदर-सलोनी कन्या थी।

—वह हरजी पर बोझ थी।

—वह सारे मोहल्ले के लिए आफत थी।

—वह निर्लज्ज भगोड़ी थी। अच्छा हुआ, मुक्ति मिली।

बंशी उसे अपने कमरे पर ले गया। वह डरी-दबी रही। कई तरह के सवाल उसके मस्तिष्क में आने लगे। पापा-मम्मी की कमी उसे कचोटने लगी। अपने मोहल्ले के मकान और गलियों की यादें सताने लगी। हरजी चाचा की याद भी आयी। पर चाची के स्मरण से उसकी याद को साँप सूंघ जाता। वह गुपचुप बैठी रहती–उदास, बुझी-बुझी-सी। दिल्ली के पहाड़गंज में एक तंग गली के भीतर गंदे मकान में वह कैद हो गयी।

बंशी चौबीसों घंटे उसके पास रहता। अपनी बहादुरी और शौहरत की शेखी बघारता। हास-परिहासपूर्ण चुटकले सुनाता। खाने के लिए गली के हलवाई से मिठाइयाँ लाता। हरदम उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करता रहता वह।

तीन-चार दिन बाद उसकी उदासी थोड़ी कम हुई। वह बंशी को 'अच्छा आदमी' महसूस करने लगी। बंशी उसे रिझाने-मनाने में लगा रहा, पूरी कोशिश के साथ।

एक दिन वह उसके बालों में हाथ फेरता हुआ पूछने लगा।

—तेरा नाम कुसुम है न ?

—हाँ........।

—ऊँ. हु.. मैं तुझे कुमुद कहूँगा।

—क्यों ?

—कुमुद प्यारा लगता है।

—अच्छा . ..

—एक बात और .....

—क्या ?

—तेरा मन लग गया न ?

—हाँ।

—मैं तुझे अच्छा लगता हूँ ?

—हाँ।

—तू मेरी बहू बन जा।

—पर मैं तो लडकी हूँ।

—तो क्या, लडकी ही बहू बनती है।

—कैसे ?

—मैं तुझे नयी-नयी साडियाँ ला दूँगा।

—फिर . ...?

—फिर तू बहू बन जाएगी।

—सच्च ?

—सच्च !

वशी के कपट-जाल मे वह फँस गयी। साडी के प्रलोभन में वह डसी गयी। उसे कई दिनो तक खाना अच्छा नही लगा। कली-सी काया मुरझा गयी। चेहरे की काति उड गयी। आँखो की चमक फीकी पड गयी। उसका मन मर-सा गया। दिन का चैन और रात की नीद नदारद हो गयी। एक अजीब-सी खामोशी फैल गयी थी उसके मुख-मण्डल पर। वशी की अगुलियों के निशान काली मोहर से अकित हो गये थे उसके जिस्म पर। पुरुष का वहशी रूप उसने पहली बार देखा–भोगा था।

वशी उसे खुश करने मे लगा रहा। रोजाना नयी-नयी चीजें लाता–अगूठी साडी, चूड़ियाँ, लिपिस्टिक, क्रीम और पाउडर।

कुछ दिन बाद वह पूरी औरत बन गयी। वशी को चाहने लगी। तन-मन की पीडा-टीस भी कम हो गयी। वह रोजाना सुबह नहा-धोकर पूजा करती, वशी के माथे पर रोली का तिलक लगाती। चरण स्पर्श करती। सोते समय उसके पाव दबाती और सप्तमी तथा पूर्णमासी को व्रत रखती—सुहागिनों की तरह।

उसके गर्भवती होने के बाद वशी के व्यवहार मे परिवर्तन आने लगा। वह सुबह जल्दी घर से बाहर निकल जाता और आधी रात ढले बाद लौटता। कभी-कभी रात्रि को भी वह नही लौटता।

एक दिन उसने वशी की अनुपस्थिति मे सदूक खोलकर देखा तो साडियाँ, अगूठी और चैन गायब। उसने बहुत सोचा, पर कुछ भी समझ मे नही आ रहा था। रात देर से जब वशी लौटा तो वह पूछने लगी .

—कहाँ रहते हो आजकल दिन-रात ?

—कहीं भी नहीं।

—फिर भी ?

—जहन्नुम में

—मेरी साड़ियाँ, पैन और अंगूठी कहाँ हैं ?

—जहन्नुम में।

—जहन्नुम कहाँ है ?

—तेरी......

—कहा मत जाना तुम।

—तू कौन है रोकने वाली ?

—तुम्हारी पत्नी.. बहू।

—सैंकड़ों हैं तुम्हारी जैसी।

—बेगैरत !

—एक टके की छोकरी।

वंशी का वहशी हाथ उठ गया। चार-पांच लातें, घूंसे और बेहिसाब गालियाँ। बंशी बरस पड़ा। वह चीखने-चिल्लाने लगी तो उसने मुँह में तौलिया ठूंस दिया। वह फर्श पर पड़ी मिट्टी की तरह पिटती रही—ददड़ ददड़। पेट पर पड़ी दो लातों से वह बेहोश हो गयी। बंशी ने उसकी एक नयी साड़ी उठायी और कमरे से बाहर निकल गया। भोर के समय जब वह होश में आयी तो चार माह का गर्भ गिर चुका था। वह फर्श पर पड़ी-पड़ी कराहती रही—बुरी तरह बेतहाशा गर्भ-पीड़ा में।

दोपहर बाद वह जैसे-तैसे उठी और पड़ोसिन के पास चली गयी।

—बहिन जी ?

—हां।

—एक बात सही-सही बताना।

—क्या ?

—बंशी कहाँ जाता है ?

—अड्डों पर।

—किसलिए ?

—जुआरी है।

उसका टूटा दिल और टूट गया—बेजान.. जर्जर....बेतरह। वह दिन छिपे से पहले ही बशी के घर से निकल गयी।

पड़ोसिन मन-ही-मन दुआ करने लगी —गाय दलदल से निकल गयी।

बशी उसे न पाकर बुदबुदाया। टुकड़खोर. कमीनी हरामजादी! ऊपर को मुँह करने लगी थी।

गली में हलवाई की दूकान पर लोग चटखारे लेने लगे—कोई दुर्योधन उसे जुए में जीतकर ले गया।

रात का भूतहा सन्नाटा। सोयी हुई गलियाँ और सड़कें। वह थोड़ी आगे बढ़ी तो जगमगाती रोशनी की कतार आ गयी। इक्का-दुक्का रिक्शे, आॅटोरिक्शे और कारें भी पास से गुजरने लगीं। वह चलती रही और परावठों की गली में पहुँच गयी। एक हवेली के खुले दरवाजे पर उसने दस्तक दी।

—साब . ....साब!

—कौन?

—एक दुखयारी।

—कहाँ से आयी है?

—नरक से।

—कहाँ जायेगी?

—जहाँ भाग्य ले जाए।

—क्या चाहती है?

—सिर छुपाने को शरण।

सेठ तो नहीं चाहता था पर सेठानी के नारी-हृदय में दया उमड़ आयी। उसने सेठ से कहकर उस गरीब को तहखाने में जगह दिला दी। सेठ ने तहखाने के फाटक पर छ लीवर का ताला जड़ दिया था। वह बोरियों की ओट में पड़ी रही।

सुबह सेठानी ने जब उसकी दु खद कहानी सुनी तो उसे उसने अपने घर रख ली—सेवा के लिए। वह सेठानी के घर सेवा करने लगी। बर्तन-भाँडे माँजती। चौका-बुहारी करती। कपड़े साफ करती। चावल-दाल की सफाई करती। खाना बनाने वाली नौकरानी की मदद करती। सेठानी की लड़की को

—कहीं भी नहीं।

—फिर भी?

—जहन्नुम में

—मेरी साड़ियाँ, चैन और अंगूठी कहाँ हैं?

—जहन्नुम में।

—जहन्नुम कहाँ है?

—तेरी......

—कल मत जाना तुम।

—तू कौन है रोकने वाली?

—तुम्हारी पत्नी. .बहू।

—सैंकड़ों हैं तुम्हारी जैसी।

—बेगैरत!

—एक टके की छोकरी।

वंशी का वहशी हाथ उठ गया। चार-पांच लातें, घूंसे और बेहिसाब गालियाँ। बंशी बरस पडा। वह चीखने-चिल्लाने लगी तो उसने मुँह में तौलिया ठूंस दिया। वह फर्श पर पड़ी मिट्टी की तरह पिटती रही—ददड़ ददड़। पेट पर पड़ी दो लातों से वह बेहोश हो गयी। वंशी ने उसकी एक नयी साड़ी उठायी और कमरे से बाहर निकल गया। भोर के समय जब वह होश में आयी तो चार माह का गर्भ गिर चुका था। वह फर्श पर पड़ी-पड़ी कराहती रही—बुरी तरह बेतहाशा गर्भ-पीड़ा में।

दोपहर बाद वह जैसे-तैसे उठी और पड़ोसिन के पास चली गयी।

—बहिन जी?

—हाँ।

—एक बात सही-सही बताना।

—क्या?

—वंशी कहाँ जाता है?

—अड्डों पर।

—किसलिए?

—जुआरी है।

उसका टूटा दिल और टूट गया—बेजान.. जर्जर....बेतरह। वह दिन छिपे से पहले ही बसी के घर से निकल गयी।

पड़ोसिन मन-ही-मन दुआ करने लगी —*गाय दलदल से निकल गयी।*

बसी उसे न पाकर बुदबुदाया।. टुक्कड़खोर ...कमीनी हरामजादी! ऊपर को मुंह करने लगी थी।

गली में हलवाई की दूकान पर लोग चटखारे लेने लगे—कोई दुर्योधन उसे जुए में जीतकर ले गया।

रात का भूतहा सन्नाटा। सोयी हुई गलियाँ और सड़कें। वह थोड़ी आगे बढ़ी तो जगमगाती रोशनी की कतार आ गयी। इक्का-दुक्का रिक्शे, ऑटोरिक्शे और कारें भी पास से गुजरने लगी। वह चलती रही और परावठो की गली में पहुँच गयी। एक हवेली के खुले दरवाजे पर उसने दस्तक दी।

—माव. ....माव!

—कौन?

—एक दुखयारी।

—कहाँ से आयी है?

—नरक से।

—कहाँ जायेगी?

—जहाँ भाग्य ले जाए।

—क्या चाहती है?

—सिर छुपाने को शरण।

सेठ तो नहीं चाहता था पर सेठानी के नारी-हृदय में दया उमड़ आयी। उसने सेठ से कहकर उस गरीब को तहखाने में जगह दिला दी। सेठ ने तहखाने के फाटक पर छः लीवर का ताला जड़ दिया था। वह बोरियों की ओट में पड़ी रही।

सुबह सेठानी ने जब उसकी दुःखद कहानी सुनी तो उसे उसने अपने पर रख ली—सेवा के लिए। वह सेठानी के घर सेवा करने लगी। बर्तन-भांडे माँजती। चौका-बुहारी करती। कपड़े साफ करती। चावल-दाल की सफाई करती। खाना बनाने वाली नौकरानी की मदद करती। सेठानी की लड़की को

गिराती । उस समय उसे अपने गर्भ की याद आती, वह तिलमिला उठती—झुण्ड से बिछुड़ी हिरनी की तरह ।

एक दिन खम्भे की ओट से सीढ़ियों के पास उससे सेठ धीरे से बोला :

—सुन....?

—हाँ ।

—तुझे पैसे चाहिए ?

—नहीं ।

—साड़ी चाहिए ?

—नहीं ।

—सैण्डिल ?

—नहीं ।

—और कुछ ?

—नहीं ।

उसी समय स्टोर से सेठानी निकली । सेठ कान दबाकर बैठक मे चला गया । सेठानी भी पीछे-पीछे बैठक मे प्रविष्ट हो गयी । वह आते से झाड़ू उतारकर सीढ़िया झाड़ने मे मशगूल हो गयी । सेठ की प्यासी आँखें उसके मन में उथल-पुथल मचा रही थी ।

सेठानी को सेठ की बदनीयत का एहसास हो गया । उसे निकालने पर सेठानी तुल गयीं । सेठ साँझ होते ही एक पहलवान किस्म के व्यक्ति को बुलाकर लाया और उसे बिठा दिया उसके साथ ताँगे मे ।

नौकरानी को दया आयी—अभागिन थी दुखिया बेचारी ।

सेठ कान खुजाता रह गया—इस उम्र मे भी साली इतनी ठडी निकली ।

वह भोलू की चाल मे पहुँच गयी । डील-डौल में मोटा तगड़ा भोलू ऐसा लगता था जैसे गुरु हनुमान के अखाड़े से आया हो । गटरू-मटरू के कुँए के पास उसका निवास था, एक चालनुमा हवेली के कमरे मे ।

भोलू ने उसे अपने घर की मालकिन बना दी । वह खाना पकाती । कपड़े साफ करती । नुक्कड़ वाली बुढ़िया की दुकान से सब्जी-भाजी लाती । भोलू की

—[illegible]

—कौन थी वह?

—मिस [illegible] दास।

—अच्छा क्या कहा था तुमने उससे?

—[illegible]

—पहचाना था उसे नहीं?

—ना।

—क्यों?

—[illegible]

—क्या करोगे?

—[illegible]

—रम...धम्म... धम्म।

वह बिना हल्दी लिये लौट आयी—थकित और विचारमग्न। मोनू का असली रूप उसे दिख गया था। वह अपने भाग्य को कोसती रही बहुत देर। एक गोली-सी टीस घुस रही थी उसके कलेजे में, कील की तरह घुनघुनाती हुई।

रात दस बजे बाद लड़खड़ाता हुआ मोनू आया। वह रोजाना की तरह बुरी तरह महक रहा था। मोनू को नशे में चूर देखकर वह डरी-डरी सी बोली.

—सुनो?

—हां।

—तुम जाग रहे हो?

—नहीं।

—तीखी बदबू आ रही है न?

—खुशबू है।

—किसकी?

—सोमरस की।

—यह क्या होता है?

—देवताओं की चाय।

—ऐसी होती है?

....

—तो फिर घबराकर भाग रही हो ?

- ऐसे ससुर से भी अपने घर [illegible] हूँ।

—सब छोड़, [illegible] पार [illegible] ही है ?

—भागकर जा रही हूँ।

सवाल पूछने वाला प्रकाश था। नाटकों में वह स्त्री पात्र की भूमिका करता था। प्रकाश ने उसे अपना परिचय दिया। उसने भी प्रकाश को अपनी करुण-कथा सुना दी। प्रकाश ने अवसर का फायदा उठाया। मंच का नाटक उसने जिन्दगी के मंच पर खेलना चाहा। वह आग्रह करने लगा—तुम मेरे साथ चलो ....तुम्हें अब कोई तकलीफ नहीं होगी....तुम देवी हो....

वह प्रकाश के संग चल पड़ी। दस मिनट के बाद पंजाब होटल के कमरा नम्बर तीन में पहुँच गया, जहाँ प्रकाश किराये पर रहता था। उसे शंका हुई। होटल का कमरा पाकर वह प्रकाश से पूछने लगी—तुम होटल में क्यों रहते हो ?

प्रकाश ने चतुराई दिखाई। वह सवाल को टाल गया। नाटक में अपनी भूमिका की प्रशंसा करने लगा—मेरी एक्टिंग पर लोग मरते है।' प्रकाश के

पास जब कोई व्यक्ति मिलने आता तो वह उसको चारपाई के नीचे छुपा देता और चादर को नीचे कर देता। आने वाला जब चला जाता तो वह छुपाने का कारण पूछती। प्रकाश मुस्कराकर कहता—तू बहुत सुन्दर है न इसलिए....किसी की नजर वह शरमाने लगती। पलके स्वत नीचे झुक जाती।

प्रकाश उसका शृंगार करता। बिंदिया लगाता। सुरमा-स्याही लगाता। लेक्टोकेलिमन का लेप करता। हाथ-पावों मे मेहदी लगाता। कभी-कभी कर्णफूल और नथनिया भी पहनाता। कई तरह से साडी बांधना सिखाता। स्लीवलैस ब्लाउज पहनाता। लिपिस्टिक और नेल-पालिस भी लगाता। तलवार की धार-सी तीखी भौहे बनाता, रँजीना फार्म पहनाता और सप्ताह मे तीन बार स्किन केयर लोशन लगाता।

प्रकाश से वह बहुत खुश थी। होटल के कमरे मे सिमटा-सिकुड़ा ससार उसे अच्छा लगने लगा। प्रकाश का व्यवहार उसे घनिष्ठ मित्र जैसा लगने लगा था।

लगभग छ माह आनन्द से गुजर गये। प्रकाश की नाटक पार्टी आप अप हो गयी। उसे अपने बच्चो को भी समझाना था, इसलिए एक दलाल से सौदा करके बलिया का टिकिट लेकर काशी विश्वनाथ एक्सप्रेस मे बैठ गया।

प्रकाश बोला—मजबूरी मे मीठा रसीला आम हाथ से निकल गया। दलाल ने गर्दन हिलायी—नही गुरु, तुमने आम चूस लिया और गुठली के दाम कर लिये। होटल का मालिक बुजुर्ग आदमी था। वह कुछ भी नही समझ पाया।

दलाल के पास लालसिंह की फरमाइश थी इसलिए वह लालसिंह के पास पहुँच गयी। उन्मत्त यौवन मे महकती युवती को पाकर लालसिंह की आँखो से लार टपकने लगी। एक दिन पहाड़-सा गुजर गया। रात खाना खाने बाद लालसिंह उसे अपनी गोद मे बिठाकर पूछने लगा

—थारो नाव काँई है ?

—बे-नाम की हूँ मैं।

—थे म्हासूं मजाक क्यूं करो हो ?

—ना।

—तो बताओ काँई है ?

—बेनाग ।

—गुकनाओ हो ?

—हाँ ।

—तो म्हैं थारो गयो गाव रगलू, गुथरो चटक-मटक सो ?

—हाँ ।

—म्हारी सुगन चाँदणी, छमकछल्लो !

लालसिंह पूगल हाउस के ठाकुर का सेवक था । उसके जिम्मे हाथी और घोड़ों की देखरेख करना था । उसकी मजदूरी दो सौ रुपये प्रतिमाह थी और एक छोटा-सा आउट हाउस भी उसे ठाकुर की तरफ से मिला हुआ था । वह इसी काम पर बीस वर्ष से जमा हुआ था— वफादारी के साथ ।

वह विधुर था । ठाकुर ने अपनी एक बाँदी से उसका विवाह तो करा दिया पर शादी के एक वर्ष बाद वह भगवान को प्यारी हो गयी थी । कई साल लालसिंह खामोश रहा किन्तु जब उम्र ढलने लगी तो उसे संतान की कमी अखरने लगी । उसने शहर के सभी परिचितों से अपने मन की बात कह दी थी । उसे प्राप्त करके लालसिंह पुत्र प्राप्त करने की जल्दी करने लगा ।

वह घोड़ों को दाल-चारा खिलाकर तथा हाथी के सामने घास डालकर जल्दी लौट आता और उसके साथ कमरे में बंद हो जाता । उम्र का तकाजा था, इसलिए थोड़ी देर बाद वह थककर चूर हो जाता । उसका आसमानी फितूर धराशायी हो जाता । उसके घुटने फैल जाते और वह नींद के आगोश में लुढ़क जाता—मिट्टी के लोथड़े की तरह तिड़का हुआ तार-तार ।

कुछ समय बाद ही लालसिंह निराश हो गया । उसके जोड़ों में दर्द होने लगा—मुँह तवा-सा काला पड़ गया । एक दिन मायूस होकर वह पूछने लगा :

—अरे ?

—हाँ ।

—अठै आ ?

—कहो ।

—तू म्हांनै एक बात बता ?

—पूछो ।

—कूड़ तो कोनी बोलैगी ?

—ना।

—तेरे टाबर कोनी लागे?

—पता नहीं।

—अब तक कोई हुयो कि ना?

—ना।

लालसिंह की रही-सही उम्मीद पर भी पानी फिर गया। अब वह उसे बेचने की बात सोचने लगा। रूपसिंह, कानसिंह और फूलसिंह को भी उसने अपने मन की बात बता दी—भाया, हो सके जितनी जल्दी बिकाओ इनै।

उसी सप्ताह कानसिंह का बूला गूजर भेंट गया। वह उसे लालसिंह के पास ले गया। हुक्का-पानी पीने के बाद असली मुद्दे पर बातचीत शुरू हुई। बूला ने उसे गौर से देखा और मुंह मांगी रकम देकर ले गया अपने गांव बैराठ में।

उसके जाने के बाद रूपसिंह बोला,—अरे उससे तो मैं हर छह महीने बाद एक टाबर ले लूं. कानसिंह की प्रतिक्रिया थी—'कोनी रही ब्याज समेत मूल रकम दे गयो?' फूलसिंह ने दो टूक बात कह दी—जवाब था—'इसी बोल्या।' लालसिंह निराश होकर बोला—थे कुछ बात करो हो बा तो बाँझ लोढ़िया थी।

उसकी हँसी और खूबसूरती पर रमजू जाट लट्टू हो गया। एक दिन मौका देखकर वह उसके बाड़े में कूद गया।

—भाभी ?

—कौन है तू ?

—तेरा देवर।

—मेरा देवर कोई नहीं है ?

—मैं हूँ भाभी।

—क्यों आया है यहाँ ?

—तेरे से एक काम है।

—क्या ?

—बताने का नहीं है।

—तो....?

—करने का है।

—क्या ?

—रात का खेल !

वह समझ गयी। उसने झाड़ू उठाकर रमजू के मुँह पर तीन-चार दे मारी—सड़ासड़-सड़ासड़। रमजू गुस्से में लाल चिरमठी हो गया। उसने उसकी चुटिया पकड़ ली तो वह जोर से चिल्लायी—बचाओ बचाओ।

उसी समय आसपास के सब लोग आ गये। बूला के बाड़े में भीड़ भरी थी—खचाखच। छूट-छुटावा हो गया। वह रमजू को बुरा-भला सुनाती रही, बहुत देर तक। शाम को जब बूला आया तो वह भी रमजू को खरी-खोटी सुना आया। कुछ लोगों ने रमजू का भी साथ दिया। गाँव में दो पार्टियाँ हो गयी। रमजू की पार्टीवाले ने कुछ दिन बाद उसका सारा इतिहास मालूम कर लिया। गाँव के नुक्कड़, चौराहे, खेत और खलिहानों में कई दिनों तक चर्चा रही।

—बैराठ में एक और द्रोपदी आ गयी है। हिऽऽऽ हिऽऽऽ हिऽऽ हिऽ।

अदीठ

शुभू पटवा

उसके लिए यही मुलाकात एक सार्थक मुलाकात रही। यह उसकी अन्तिम और पहली मुलाकात थी उस बाबा से। इसी मुलाकात में तो वह जान सका था अपने बारे में सही-सही बात। अब तक वह जिसके साथ रहा और जिस साये में पल-पुस कर इतना बड़ा आदमी बना—एक बारगी उसे निरर्थक-सा लगा। विरक्ति का पहला बीज भी उसके जेहन में तभी फूटा था।

यू वशानुगत या 'हेरीडेंटरी' जैसी बात पर उसका कोई झुकाव कभी देखने में नहीं आया। वशानुगत की जगह वह 'ताजा' संस्कारों का जीवन पर ज्यादा असर मानता रहा था। अक्सर होने वाली बातचीत में भी उसके ऐसे ही विचार सामने आते थे।

लेकिन वह जिस माहौल में पल-पुस कर इतना बड़ा हुआ—उस सब के पीछे तो एक 'हेरीडेंटरी' आधार ही रहा है। ऐसा शायद इसलिए रहा कि जिसने उसे पोषण दिया, उसमें अपने पूर्वजों के अहसास अभी भी तरो-ताजा थे। उसमें ही नहीं, जो समाज उसके इर्द-गिर्द था वह भी उसे 'वशानुगत' घराने के कारण ही सम्मान देता था। सम्मान ही नहीं, आकण्ठ विश्वास भी था।

उसके लिए यह एक तरह से गहरे द्वन्द्व की स्थिति थी। वह काफी सचेत रहता था। पूर्वजों के कोई संस्कार उसमें विद्यमान हैं—ऐसा आभास कोई न पा सके—यह उसकी कोशिश रहती थी।

लेकिन इसे एक बेकार कोशिश भी कही जा सकती है। क्योंकि जो द्वन्द्व उसमें होता रहता था वह क्या वशानुगत लक्षणों का ही प्रतिफल नहीं कहा जा सकता।

आखिर ऐसा क्यों था।

वास्तव में उसे अपने पिता का सरक्षण कभी प्राप्त नहीं हुआ था। सचमुच वह जानता भी न था कि उसके पिता कौन है। अलबत्ता पिता रूप में जिसे जाना

उसका स्थान समाज में बहुत ऊंचा था। लेकिन वह उस प्रतिष्ठा प्राप्त पिता को भी नहीं जानता था। उसने देखा भी नहीं था उन्हें। जानता वह अपनी मां को भी नहीं था। उसका संसार तो उसकी यह मौसी ही थी, जिसने उसे पाल-पोस कर इस लायक बना दिया था कि एक हैसियत के साथ वह खड़ा रह सके।

यह मौसी भी उसकी सगी मौसी न थी।

कुल चार छ माह का रहा होगा यह जब एक सन्यासी ने उसे मौसी को सुपुर्द करते हुए कहा था—'तुम अब से इसकी मौसी हो–'पाप मां।' और इस तरह वह मौसी के पास पल-पुस कर ही बड़ा हुआ था। बड़ा ही नहीं हुआ था—बड़ा आदमी भी बन गया था।

मौसी को इस बात पर तो गर्व था कि उसने गगन को एक ऊंची हैसियत वाला आदमी बना दिया। लेकिन उसे यह मलाल सदा बना रहा कि उस सन्यासी ने—जिसे वह अपना गुरु या कि अधिष्ठाता मानती थी—यह नहीं बताया कि गगन किस पाप या कि पुण्य का प्रतिफल है।

यह गगन नाम भी मौसी का ही रखा हुआ था। कहावत है 'आसमान जिसे नहीं झेल सकता उसे धरती झेलती है'। इसीलिए उसने इसका नाम गगन रखा। जैसे कि मौसी गगन की धरती है। वह धरती यानि कि 'धरित्री'। वह जैसे मा ही बन गयी।

मौसी का ससार भी बहुत छोटा था। उसके हाथ ही चूडिया और माग का सिन्दूर, ललाट की बिन्दिया और पावो की रुन-झुनती पाजेब नियति के हाथों समय से पूर्व छीन ली गयी थी। शादी से पहले और उसके बाद विवाहिता मौसी को जिन लोगों ने देखा है—सब जानते हैं कि मौसी के अंग-अग से लावण्य टपकता रहता था। लेकिन समय की रेख घिसते-घिसते इतनी मट-मैली हो गयी कि अब वर्षों बाद मिलने वाले लोग मौसी को पहचान ही नही सकते। सूने ससार मे अकेली मौसी के सात वर्ष उसे तीस से सीधे पचास की उम्र पर खडा कर गये।

किसने सोचा था कि प्रकृति का दिया यह सौन्दर्य काल के क्रूर चक्र मे इस तरह पिस-पिस जायेगा। मौसी के पिता उस नगर के सम्पन्न रईसो मे से एक थे। अपनी इकलौती बेटी का जिस उल्लास से विवाह किया था, वह आज भी उस नगर मे किस्सा-कहानी के रूप मे बताया-कहा जाता है।

सेठ ईश्वरचन्द्र की इसी पुत्री के विवाह पर गली-सड़क और नालियों में असली गुलाब जल का छिड़काव हुआ था। बारात की अगवानी से पहले शुद्ध केशर के घोल की फुहार कराई गयी थी। आस-पड़ोस के लोगों ने जरूरत पर काम की वस्तु के रूप में शुद्ध गुलाब जल की शीशियां भर कर अपने घरों में रखी थी। लेकिन शादी के डेढ़ साल बाद ही मौसी को नियति ने वैधव्य के शिलाखण्ड पर ला पटक दिया। तब मौसी कुल तेईस की थी। गगन के रूप में सन्यासी की भेंट जब मौसी ने स्वीकार की तो वह केवल तीस की थी।

उस क्षण जब गगन लालन-पालन के लिए सौंपा गया, ममत्व उसके हृदय में उलीचे भरने लगा था। तब उसे यही लगा था कि बाबा ने उसे उसकी जिन्दगी का एक आधार दिया है। वह कुछ न पूछ सकी थी कि कौन है यह। पहली बार अपनी गोद में लेते हुए मौसी का मन मां के दुलार से भारी हो रहा था। वह वत्सला सम्हल ही नहीं रही थी, उल्लास की मारी।

सात वर्ष के वैधव्य काल ने तीस वर्ष की उम्र में ही उसे पचास पर पहुंचा दिया था। लेकिन गगन को पाकर वह फिर जीने को लालायित हो उठी थी।

जिस तन्मय और तल्लीनता के साथ गगन का पालन-पोषण हो रहा था उसे देख यह सोचा भी नहीं सकता था, कोई कि वह गगन की मौसी है। बस नौ महीने पेट का भार गगन किसी और का बना था। बाकी तो सब कुछ मौसी का ही दिया गगन के अंग-अंग से प्रस्फुटित होता नजर आता था। गगन और मौसी को जैसे जुदा रूप में देखना कभी सम्भव ही न था। मौसी के लिए जो जीवन ऊब और उकताहट बन गया था, गगन की किलकारियों से उमंग और उल्लास में बदल गया था।

गगन पहली बार मौसी के लिए उस समय समस्या रूप बना था, जब उसे स्कूल में भर्ती कराने का समय आया था। दाखिले के फॉर्म में पिता का नाम खाली देख स्कूल के प्रधानाचार्य ने तब उसे भरने का इंगित किया था। गगन तब उसकी बगल में खड़ा था। मौसी ने फॉर्म के उस खाली कॉलम की ओर देख अपनी आंख गगन की ओर फेरी थी। गगन तब कितना मासूम लगा था मौसी को। पहली बार उसे अहसास हुआ कि गगन बिना बाप का है। उसने गगन को चूम लिया था। इस अस्वाभाविक भाव से प्रधानाचार्य भी स्तम्भित हो उठे थे क्षण भर को। और कहा था 'आपने पिता का नाम नहीं भरा' मौसी अब प्रधानाचार्य की ओर मुखातिब थी। उसने तत्परता से अपनी छोटी 'बैग' खोल पैन निकाला और पिता का नाम वाले खाली स्थान पर 'श्रेयाषकुमार' भर दिया था।

प्रधानाचार्य ने फॉर्म को हाथ में लिया और मौसी छूटे स्थान पर लिखे अक्षर बांच लिये 'स्वर्गीय श्रेयांसकुमार'। 'तो बच्चे का पिता नहीं है' प्रधानाचार्य ने टेबिल की ओर झुकी नजरों से ही कहा था। मौसी ने गगन की अंगुली पकड़ खड़े होते हुए कहा 'जी'।

उसने नमस्कार किया तो प्रधानाचार्य ने फिर कहा 'आप अगले सप्ताह दाखिले का पता करें।' मौसी ने फिर 'जी। ठीक' कहा।

कमरे से बाहर निकलने की दूरी भी मौसी के लिए लम्बी और भारी हो गई थी। सड़क पर आने तक उसका बदन पसीने से तर-बतर हो चुका था। अपनी कार में बैठ उसने ड्राइवर को गाड़ी 'स्टार्ट' करने का कहा और दूसरे हाथ से 'कार फैन' का स्विच ऑन किया। इस बार उसने गगन को जी भर चूम लिया 'मेरे बेटे'।

गगन के लिए यह अस्वाभाविक कुछ न था। तो भी उसे मौसी असाधारण-सी लगी। अपनी मीठी बोली में इतना भर कहा 'इतना पसीना आ गया मौसी' और उसने अपने नन्हे-नरम हाथों से मौसी के मुँह पर आया पसीना पोंछ दिया था। न मालूम क्यों गगन उसे सदा मौसी ही कहता रहा। 'मां', कभी नहीं सुना उसके मुँह से।

गगन तब से ही श्रेयांसकुमार का ही पुत्र माना जाने लगा। सार्वजनिक तौर पर तो पहली बार सबको तभी पता चला, जब गगन ने हाई स्कूल में पूरे राजस्थान में प्रथम स्थान प्राप्त किया और अखबारों में उसके बारे में कुछ छपा।

मौसी को भी तब पहली बार यह महसूस हुआ कि उसके दूर-नजदीकी रिश्तेदारों के सवालों का वह क्या जवाब देगी। पर मौसी इसलिए भी निश्चिंत-सी थी कि उसे कौन पूछेगा। उसके ससुराल में कोई न था पूछने वाला और पीहर में भी किसी को यह सरोकार न था कि श्रेयांस किसी के पिता है—कि नहीं।

पर मौसी के मन को यह आशंका हर समय सालती रहती थी कि गगन ने कभी सच्चाई जानना चाहा तो कैसे होगा। मौसी उसके लिए तैयार तो थी, पर गगन के स्वभाव को देख सशंकित हो उठती थी कि वह इस सत्य को सह सकेगा कि नहीं। इसीलिए समझ पड़ने के बाद से ही मौसी ऐसे अवसर टालने का ही प्रयत्न करती। जब भी ऐसा कोई प्रसंग आता कि जिसमें गगन के इस सवाल का उसे अंदेशा होता तो वह उसे वहीं काट देती। ऐसे किसी सवाल का कोई मौका उसने नहीं दिया।

पर, आखिर वह प्रसंग आ ही पड़ा। वर्षों बाद वह सन्यासी फिर भीनासर आये थे। तब उनके बाल सफेद रूई से पंख जैसे हो गये थे। चेहरे पर वृद्धावस्था की रेखाएं स्पष्ट रूप से उभर चुकी थीं। मौसी उस दिन उमंग की नई तरंगों से सराबोर थी। वह आत्माभिमान महिला थी, जिसे समय की क्रूरता ने युवती से प्रौढ़ बना दिया था। बाबा की भेंट ने ही मौसी को अब तक इस धरती पर टिकाये रख छोड़ा था। मौसी के लिए बाबा के दर्शन की उतावली भी इसलिए थी कि वह गगन को बाबा से मिलाना चाहती थी।

मौसी और गगन जब बाबा के आश्रम में पहुंचे तब बाबा अपने ध्यान कक्ष में थे। लेकिन ध्यानस्थ नहीं थे। कक्ष में प्रवेश भी निषिद्ध न था। बाबा के लिए मौसी को पहचानना कठिन न था। पर गगन तीस वर्ष का हो चुका था और बाबा उसे पहली बार देख रहे थे।

प्रणाम और आशीर्वाद के बाद जब मौसी ने कहा कि 'बाबा यह आपकी सौगात है। मैं इसे गगन कह कर पुकारती हूँ।' बाबा ने गगन के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'चार छ माह का होगा जब सूर्य की पहली उर्मी फूटने से पहले कोई इसे आश्रम की दहलीज पर छोड़ गया था। मैंने इसे पहली बार देख प्रभु की अनुकृति मान गोद में उठा लिया था। पर आश्रम में इसका लालन-पालन कौन करता। आश्रम तो मां-विहीन था। इस बालक को तुमने पाल-पोस कर बड़ा किया है अनुजा। तुम इस आश्रम की मां बन गई हो। यह पितृहीन बालक आश्रम-पुत्र ही तो है।' बाबा का यह कथन सहज-सरल हकीकत का इजहार था। यूं यह जरूरी भी था कि समाज का जो ढांचा हमारा है—ऐसे रहस्य साफ होने जरूरी है।

लेकिन गगन के सामने हुई यह बात गगन को उद्वेलित कर गई। आश्रम में तो वह कुछ न बोला, पर घर आ मौसी से सब कुछ जानने की जिद करने लगा और कुछ भी न जानने से उसने क्रोध में मौसी को बहुत कुछ कह डाला।

लेकिन मौसी तब भी जीवनदानी मां बनी सब सुनती-झेलती रही। उसके पास था भी तो नहीं और कुछ बताने को। पर इस बात से गगन के स्वभाव में परिवर्तन आया तो ऐसा कि वह सब सुख सुविधाओं को तिलांजलि दे बैठा। उसने मौसी से साफ ही कह दिया कि 'मौसी यहां जो कुछ भी उपलब्ध है—बस तुम्हें छोड़—अब मेरा अपना कुछ नहीं और इसलिए अब मैं इन सभी सुख-सुविधाओं को बन्धनयुक्त मानता हूँ। मैं बन्धनमुक्त होना चाहता हूँ मौसी, इसलिए मुझे इन सुखों से मुक्ति पानी होगी, जो कतई मेरी नहीं है।'

गगन का यह विरक्त भाव मौसी के लिए असह्य था। पर अब कोई रास्ता भी न बचा था कि जिससे वह गगन को उस ओर ले चले। 'हां गगन! नैतिक तौर पर मेरे सिवा यहां की किसी वस्तु पर तुम्हारा हक नही और 'हेरीडेटरी' वश भी तुम उन संस्कारो से मुक्त होने को तड़पते रहे हो।' मौसी ने यह कहते हुए उसके सिर पर हाथ फेरा। क्षण भर के अन्तराल के बाद मौसी फिर बोली 'पर सोचलो गगन-इतिहास को नये सिरे से गढ़ना इतना सहज नही। यह तो जानते ही हो कि कानूनी तौर पर आज तुम श्रेयांप के वारिस हो और उसके समस्त हकों के अधिकारी भी..........' कहते कहते मौसी रुक गयी।

गगन निर्निमेप मौसी को देखता रहा। उसने इतना भर कहा 'मौसी तुमने अपना काम बखूबी निभा दिया। इस योग्य भी बना दिया मुझे कि मैं स्वतंत्र हो सोचूं' कहते-कहते गगन रुका और फिर बोला—'मौसी क्या वह मैं न सोचूं।'

और गगन पीठ फेर अगले कदम मौसी से अदीठ हो गया।

रुक्का

रामानद राठी

ऐसा तो इस गांव में पहले कभी न हुआ था।

चौहेली बोहरा की बैठक में दोषी मिरचन चुपचाप सर झुकाये बैठा था। मिरचन! छोटे-छोटे खिचड़ी बाल। कई दिनों की बढ़ी हुई उजड़ दाढ़ी। जवानी में ही चेहरे पर घिर आयी झुर्रियों के बीच उठी कनपटी की तीखी हड्डियां, जो भीतर दबे आवेश के कारण अब और अधिक उभरी और अनगढ़ दिखाई देती थी।

'साहूकार हो न तुम, फांसी पर लटकवा दो अब मुझे। मैंने जो ठीक समझा, कर दिया!' अन्तिम निर्णय के साथ मिरचन ने एकाएक हाथ उठाकर कहा।

बैठक में खलबली मच गई। चोरी और सीना-जोरी! यह सरासर बेहूदगी थी। मिरचन ने पूरे किसान समुदाय की नाक कटवा दी थी। क्या ऐसा करना चाहिए मिरचन को? बोहरा तो गाढ़े समय का भगवान होता है, बस्ती की नाक। उसके सामने ही ऐसी जुबान। बस्ती के तमाम साहूकार इस घटना से तिलमिलाये हुए थे। चोटी के रास्ता निकालने जैसी बात थी यह। इस रास्ते से होकर कल हाथी भी गुजर सकता है? आज मिरचन ने ऐसा किया है कल रामधन, मिट्टू, सांवलिया कोई भी ऐसा कर सकता है। इस चोर को यहीं कुचल देना होगा, जहर के नाके पर!

'बिरादरी का का धर्म कर्म, पुरखों का नाम, सब यहीं डुबो दिया।' चौहेली पूरी बैठक में उबल रहा था—'तू है किस खेत की चिड़िया। तेरा जीना हराम कर दूंगा मैं।'

मिरचन ने आज सचमुच ऐसे पवित्र विधान का उल्लंघन किया था जो ईश्वर ने अपने हाथों रचा है और जिसे उलटने की ताकत शायद खुद ईश्वर में भी नहीं।

कोई मामूली अपराध नहीं है साहूकार की बही से खीचकर टीप का रसा फाड़ना।

खुदा, न्याय पंचों के सामने आज यह, अनहोनी घटी। गांव मे सब जानते हैं, बाहेती अगरवाल सिरचन का बहुत पुराना बोहरा है। बाप के मरने पर दो मरियल बैल और साढे चार बीघा बंजर जमीन के साथ ही सिरचन ने इस बोहरे को भी विरासत में पाया था। पंद्रह बरस हुए, जब बाप को हरिद्वार पहुँचा कर आये सिरचन के घर बाहेती अपनी बही लेकर पहुँचा था—'बेटा तुम्हारी अभी कच्ची उम्र है। यह भी अच्छा रहा जो बुधराम जाते-जाते तुम्हारा ब्याह कर गया। अब सारा लेन-देन घर की परवात तुम्हें अकेले ही देखनी है' बगल में दबी बही और स्याही की दवात बाहेती ने सिरचन के सामने बढ़ा दी—'यह हिसाब की पक्की कलम है। बुधराम ने तुम्हारे ब्याह के मौके पर मुझसे पांच सौ रुपये उधार लिए थे। बस्ती मे सबका काम एक-दूसरे से पड़ता है। आदमी ही आदमी से मिलता है, कूआ कुए से नहीं। हमें-तुम्हें तो बेटा अभी इसी समाज मे रहना है। खूब ध्यान से अपने हिसाब की कलम देखकर यहां दाहिने अंगूठे की सही कर दो।

पन्द्रह बरस हुए इस घटना को बीते, मगर सिरचन के अंगूठे से टीप की स्याही नहीं गई। बाहेती का आठ बरस तक उसने खेत जोता। हवेली के हर टीले-टूमे में खुद आगे होकर ढोर की तरह जुता रहा। अपने बच्चों का मुँह बांध कर हजार-बारह सौ रुपये का अनाज भी उसने बोहरा के तगादों पर पहुँचाया। मगर पांच सैकड़ा मूलधन बही में ज्यों-का-त्यों बना रहा। पन्द्रह सालों का एक चौथाई अनाज और हर चुकाने की अटूट मेहनत सब ब्याज में गर्क पड़ गई।

आज भी जब टीप का तगादा सिरचन के घर पहुँचा तो उसका समूचा परिवार दो दिन से निराहार था। तगादा सुनते ही सिरचन की आंखों में खून दौड़ गया—'इस बाहेती का आज अंतिम हिसाब करना ही होगा।' कठोर आत्मनिर्णय के साथ तमतमा कर वह उठा और सीधा बाहेती की [illegible] की ओर चल दिया।

[illegible] सूदखोरों की [illegible] ही जमा थी। [illegible] मगर [illegible] हैं। सिरचन [illegible] और [illegible]

'आओ सिरचन ! अब तो भाई हिसाब की यह कलम तुम्हें तोड़नी ही होगी। आड़े वक्त हम बस्ती के काम आते हैं लेकिन पैसे लेकर आसामी तुरन्त आँख बदल लेता है।' वाहेती ने कभी-कभी आकर बैठे सिरचन के आगे बही फैलाते हुए कहा, 'यह रहा तुम्हारा हिसाब-किताब। धीरज की भी कोई सीमा होती है, पन्द्रह बरस से मूल रकम का एक पैसा भी तुमने नहीं चुकाया।

बही के खुले पन्ने पर अपने अंगूठे की टीप देखकर सिरचन का कलेजा दहक उठा। न्याय पंचों की हिदायतें और अंगूठे का यह नीला निशान उसकी समूची जिन्दगी लील गये थे। वर्षों से मसोस कर रखी उसकी आत्मा अचानक विद्रोह कर उठी, 'यह रहा तुम्हारा धर्म, न्याय और बिरादरी !' बही के रुक्के को टुकड़े-टुकड़े करके उसने वाहेती के मुंह पर फेंक दिया !

कहते हैं अपनी कलम से खींची हुई लकीर विधाता का सबसे बड़ा विश्वास होती है, और पंचों-साहूकारों में किसी को यह विश्वास न था कि कोई गरीब-गुरबा उसके सामने ही ऐसा कर देगा ! पल भर के लिए सब अवसन्न रह गये, लेकिन इतनी आसानी से सदियों पुरानी अपनी हस्ती के पाये हिलने नहीं दिए जा सकते थे।

नुगरा ! धर्महीन ! मारो इसे ! चारों ओर से सिरचन पर थूका जाने लगा। बैठक के दरवाजे पर देखते-देखते तमाशाइयों की भीड़ लग गई। सभी बोदे किसान दिल से हालांकि सिरचन के साहस की प्रशंसा कर रहे थे, लेकिन किसी में इतनी हिम्मत न थी कि दिल की बात को बाहर ला सके। प्रकट में सबके सब वाहेती के समर्थन में सिर हिला रहे थे। वे जानते थे कि किसी भी वक्त वाहेती के आगे हाथ फैलाना पड़ सकता है और वाहेती ही क्या, इस मामले में तो सभी साहूकार एक थे !

'इसे बताता हूँ मैं अभी विधान फाड़ने का मतलब !' गुस्से में हाँफता वाहेती नंगे पाँव भीतर गया और चौक में खड़ी बाँस की मजबूत लाठी उठा लाया, वह आज सबके सामने सिरचन की ऐसी दुर्गत बनाना चाहता था कि बस्ती में फिर कोई देनदार भूलकर भी ऐसा दुस्साहस न कर सके।

सिरचन ने एक ताड़ती नजर चारों तरफ डाली। बैठक में धर्म-पंचों के बीच घिरा इस वक्त वह खुद को बेहद अकेला और असहाय सा रहा था। पल-पल बुझते उसके चेहरे से मालूम होता था कि उसके भीतर का आत्म-विश्वास लगातार टूट रहा है।

वरण

मालचद

कई दिनो मे लौटना हुआ। आसपास देहात का लंबा दौरा चला। ऐसे दफ्तर का मुलाजिम ठहरा, जिसका काम ही सरकारी कल्याण कार्यक्रम को देश के कोनों-खुदरों तक पहुचाना होता है। रेतीले रास्तो पर गुर्राती जीप का सफर, मेरा समूचा हुलिया बदरंग था, पर घर पहुचते ही पहली तलब मुझे डाक की हुई। लेकिन ऐसी उम्मीद कदापि नही थी कि इसमे उदय की चिट्ठी होगी। खोलकर पढ़ते ही एक लंबा सन्नाटा मुझमे रेंग निकला। क्या इतनी अजेय है मेरी भूलने की लाचारी, जिसने उदय तक को भुला डाला! उदय क्यो, अशोक भी कब याद रहा है। यह तो उदय की चिट्ठी है, जो अशोक की याद भी साथ लेकर आयी है।

कितनी बार उलट-पलट ली चिट्ठी, पर भले आदमी ने कोई अता-पता दर्ज किया हो तो नजर आये। दुनिया का बातूनी और चिट्ठी इतनी-सी! फकत चार बातें। और ये भी पूरी मेरे पल्ले कहा पड़ी है। मोटा हिसाब फैलाने से ही दिखता है कि कोई चार बरस हुए हैं उदय को गये और अशोक को..? साल भर बाद ही तो मचा था वह महाराम! अशोक के घर किसी सदेश की उडीक ही नही बची, शायद उदय के घर अब भी होगी। पर बिना अते-पते उन्हे सिर्फ यह बताने से क्या मतलब कि उदय जीवित है, यह रही उसकी लिखावट! वे क्या करेंगे, सिवाय नये सिरे से विचार करने के कि उस नालायक को क्या तकलीफ थी, जो अपना घर छोड़कर भाग निकला? इस सवाल के लिए मैं ही पर्याप्त हूँगा—क्योकि उदय को अपने साथ के शुरू दिनो से लेकर यहा, इस चिट्ठी के आने तक याद किये बगैर मुझे अब त्राण कहा मिलेगा।

उदय मेरा लगोटिया नही था। बहुत देर मे मिला। मैं दफ्तर जाने लगा, तब। उसे रामेश्वर लाया हमारे बीच। हेमन्त का सलेक्शन हुआ, तो 'गोठ' हुई व आयोजन अनोखा था। ऊट-गाडा साज-सामान से लैस खडा था। चादनी रात मे हिचकोलो का सफर करने तीस किलोमीटर जाना था। अगला समूचा दिन

यहीं, गाजाम में आसपास गाते-पीते, गाते-झूमते बिताना था। चल पड़ने की देर थी। रामेश्वर की राह देखी जा रही थी। वह आया, तो एक को साथ लेकर। नवागंतुक ने कुछ अटपटी-सी अदा में लपक-लपककर हममें हरेक से हाथ मिलाया और गर्दन मचकाकर बताया, 'उदयचंद्र जोशी...शिक्षा विभाग में वरिष्ठ लिपिक हूं, साब!'

सहसा मेरा ध्यान गया, उदय पतलून पर सिर्फ पूरी आस्तीन की कमीज पहने था जिसके आगे ऊपरी बटन खुले थे और आस्तीनें थोड़ी-थोड़ी उलटी हुई। वह अक्तूबर के अंतिम दिन थे। हम सबने नवागत शीत के सत्कार में स्वेटरें पहन रखी थी। गुलाबी ठंड छेड़छाड़ कर भी रही थी। उदय के कमीज में से उसकी छाती के बाल झांक रहे थे। रोशनी की सीधी लकीर में वह पड़ा, तो मैंने देखा-बूढ़ी औरतों की पसंदीदा तुलसी-काठ की एक कंठी भी उसके गले में झूल रही थी। उसका बाना मैं देखता रह गया। मेरी जीभ जरूर खुजलाई होगी, पर शायद नयी मुलाकात की हद में चुप रह गया।

खैर, सफर शुरू हुआ।

गाड़े में जाजम बिछी थी। हमारे पैर एक-दूजे में उलझ पड़े थे, क्योंकि उन्हें पसारने का यह अनिवार्य परिणाम था। हल्के-हल्के हिचकोले यूं लगते थे, जैसे धीमे-धीमे नशा चढ़ता हो। आसमान से मिठास झर-झर पड़ रहा था। चांद के घूंघट करने को, दूर-दूर तक भी कोई बादल न था। नवोढ़ा के उघड़े मुखड़े सरीखा लाजवंत होकर ही चांद इतना दमक रहा था। सड़क के आजू-बाजू फोग, खींप और खेजड़े फुसफुसाकर जरूर कोई रसभरी बात कर रहे थे, क्योंकि बीच-बीच में उनमें से कोई किस्स करती हँसी हँस देता। चौफेर का रसीलापन गाड़ेवाले पर ऐसा गुजरा कि वह गा उठा—

खोले नी कलाळी थारा

बाजणिया रै बाजणिया किंवाड़

भंवर म्हारा रे!

गीत का असर छाने लगा था। हर कोई बहक-बहककर दाद देने की होड़ चढ़ गया। इसी दरम्यान अशोक का उद्घोष जोर से उभरकर आया, 'गाड़ा रोको.. यहां जय भैरूनाथ होगी!' कहने के साथ ही पहले ही टटोली हुई पूरी बोतल अशोक ने सबके आगे लहरा दी। अचंभे के लिए सिर्फ हेमंत बचता था।

'यह .. यह कौन लेकर आया?' आयोजकीय अधिकार से आगें तरेरते उसने पूछा।

'अनन्त विभूति श्री रामेश्वर नाथ,' अशोक ने घुटनों के बल बैठकर दरबारी मुद्रा बनाते कहा, 'आपको कोई बाधा, श्रीमन ?'

'बाधा है। मुझे यह हर्गिज बर्दाश्त नहीं। मैं इस घंटे एक पैसा नहीं दूंगा, खोलने से पहले सुन लो।' हेमन्त ने शक्तिभर विद्रोह किया।

'पुच्च . पुच्च....!' समर शैतानी पर उतर आया, हेमन्त को बच्चे ज्यों दुलार कर बोला, 'बर्दाश्त नहीं होता न! चुपचाप आगे और दांत भींचकर लेटा रह ...थोड़ी देर लगेगी।'

सबसे पहले समर ही कूदा। फिर जैसे घाट की सीढ़ियों पर बैठे मेढक पानी में उतरते हों—छपाक! छपाक! हेमन्त और उसके एक ममेरे भाई को छोड़कर सब पीछे कूद पड़े। अन्त में, मैंने देखा—अपना शान्तिनिकेतनी झोला सम्भाले-सम्भाले उदय आ रहा था। कोलम्बस बनकर समर ने एक सुनसा-सा 'धोरा' ढूंढ लिया था, उसी पर सब आ धमके। रामेश्वर ने गुहार मचायी 'उदयवीर!'

'हां....यार! लाया हूं न!' कहते-कहते उदय ने झोला खोला। अखबार में लिपटी छह गिलासें थीं।

'ये गिलास आप लाये हैं?' गिलासों की नाजुकी और बेशकीमती खूबसूरती देखकर मुझसे रहा नहीं गया।

'जी—हां....' उदय ने कहा।

इतने नफीस!

'ज्यादा निगाहे-तारीफ से मत देखिए... इतराकर टूट गये तो इस नाचीज का नुकसान हो जायेगा और आपको चुल्लू-चुल्लू करके पीनी पड़ेगी।'

'क्या-क्या?' उदय का मोहक संवाद-प्रवाह मुझे बहा ले गया, तो मैंने समझना चाहा।

'लीजिए, जाम पकड़िए।' उदय ने एक गिलास मेरे आगे कर दी।

'जय भैरूनाथ।' अशोक ने गिलास बढ़ाया।

'जय भैरूनाथ!' कहकर चीयर्स हुआ और दौर शुरू हुए।

बोतल निपटते कितनी देर लगती? हेमन्त लेकिन बेसब्र होकर पीछे आ गया, 'जल्दी करो, राक्षसों। सवेरा यहीं करोगे क्या?'

सवेरा यहां नहीं हुआ ।

हम फिर गाड़ी में सवार हुए । रात बाकी थी । उदय बहकने लगा । उसकी [illegible] नशे में [illegible] थी । न जाने उसे कहां से एक बात याद आ गयी, किसी केन्द्रीय मंत्री के हत्याकांड की ताजा घटना के बारे में वह बहक-बहककर पूछने लगा, 'प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या पर आपकी क्या 'प्रक्रिया' है ?' जाहिर है, मृत्यु इंदिरा गांधी—जो तब प्रधानमंत्री थीं—की नहीं हुई थी। 'ओ जी....यह इंदिरा गांधी को किसने मार डाला ?' अशोक ने होश की बात करनी चाही ।

'आप सिर्फ यह बताओ, इस पर आपकी 'प्रक्रिया' क्या है ?' उदय ने फिर वही दोहराया ।

'अबे, 'प्रक्रिया' को 'प्रक्रिया' तो बोल पहले !' मैंने उदय की एक और गलती पकड़ी, लेकिन सुधरवाने की कोशिश में खुद गलत बोल गया । इसी बात पर हमारी नोक-झोंक शुरू हो गयी। गाड़े में हंसी के तूफान उठने लगे । पता नहीं कब तक हम यह बेतुकी छीना-झपटी करते रहते, यदि गाड़ेवाला हमें ठिकाने न ला छोड़ता ।

यह धर्मशाला थी । टूटी-फूटी दीवार से घिरे मैदान की बांजी पर चार कमरे थे । कमरों के सामने झिलंगी खाट पर एक देहाती गर्त में डूबा-सा नींद ले रहा था । खाट के नीचे एक देशी अद्धा, डोला और ढाबा-छाप गिलास लुढ़की पड़ी थी । बाहर चांदनी थी, लेकिन कमरे अंधेरे थे । गाड़ेवाले ने बढ़कर तीली जलायी, दरवाजों के पल्ले नहीं थे ! अंदर मुआयना किया । तीली की कंपकंपाती रोशनी में दीवारों पर कई-कई भैरू-भक्तों के हस्ताक्षर नजर आये । कुछ अज्ञात नामों के बीच शारीरिक संबंधों की स्थापनाएं गणितीय संकेतों से की हुई थीं। आंगन पर किस्म-किस्म के प्रसाद की जूठन बिखरी थी। सब कुछ देखभाल कर अशोक पर तोहमतें मढ़ी जाने लगीं । वह इस धर्मशाला के हवाले दे-देकर रात को यहां लाया था । अब वह सदा की भांति शराब पीकर संत बन चुका था—शांत, निर्विकार भाव से मुस्कराता हुआ चुप्पी लगाये हरेक की सुन रहा था ।

धर्मशाला से निराश हम तलाब के घाट पर चले आये । दरी बिछायी गयी । तालाब की सतह छूकर आती हवा ठंडी थी । हवा के कारण पानी में सुहानी-सी हलचल थी । चांद का प्रतिबिंब हिलते पानी में फैला था; कुछ ऐसे कि पानी में चांदी की बंदनवार बंधी हो ! हमने सिगरेटें सुलगायीं; जर्दा फांका

और एक बार और अशोक को कोसा। बचा-खुचा गुस्सा भी हवा ने बिखेर डाला। कुछ देर बैठकर हम एक-एक, दो-दो करके उठने लगे। मेरे पीछे उदय चला आया था।

इसी रात उदय मेरे हिस्से पड़ गया था। अगले समूचे दिन वह मेरे आसपास बना रहा। दिन के उजाले में मैंने उसे गौर से देखा। उसके चेहरे पर, नाक हो या आंखें, सर्वत्र एक नोकीलापन विद्यमान था। बोलने में एक तुर्शी थी, जिसमें बीच-बीच में मिठास का अद्भुत स्वाद आने लगता। उसके सेंहुए चेहरे पर एक दुर्लभ तरलता प्रवाहित थी, जो उसके बोलते समय और भी बढ़ने लगती। चौबीसों घंटे, मैं उसको किसी दिलचस्प किताब ज्यों पढ़ता रहा। मुझे लगा, इस किताब में हर पन्ने पर कोई बेचैन फड़फड़ाहट ठहरी हुई है। उसको समूचा भांपकर मेरा मन कह उठा, जरूर 'कुछ' है, जिसकी मुझे भी तलाश रही है। अपनी दीवानगी मुझसे छिपी न थी। मैंने अपने-आप में ही उदय को कहा, 'अब मुझ से छूटकर नहीं जा सकोगे, उदय!'

अधप्याली चाय पर 'सरदार' में जुटना होता था। साथ-साथ या अलग-अलग, प्राय सभी पहुंचते थे। वे दिन ख्वाबों-ख्यालों के थे। इस अधप्याली के पहलू में हम बहसें करते, जो पक्के प्रतियोगी परीक्षाओं से होकर अफसरी के दिव्यलोक तक पहुंचने से जुड़ी होती थीं। अपनी-अपनी बाबूगिरी के सिंहासन पर बैठे-बैठे हम हर बार फीस देकर इन उड़ानों पर निकला करते थे। एक उड़ान में सफल होकर हेमंत छोटा एकाउंटेंट बन चुका था। इस सफलता ने उसे किसी प्रेत-सिद्ध ओझा की तरह बोलना सिखा दिया था। उसमें 'इंसान के लिए कुछ भी असम्भव नहीं' वाला पारा ऊंचा चढ़ रहा था। वह किसी नये 'असंभव' 'को संभव' करने पर तुला था, सो 'सरदार' कम आता। जबकि उदय–घर शहर के भीतरी हिस्से में दूर होते भी—शायद ही कभी चूकता था। अब वह हमारी चौकड़ी का अधिकृत सदस्य था।

एक बार वह लगातार तीन दिन नहीं आया। रामेश्वर से पूछा, तो मालूम हुआ कि दफ्तर में भी गायब है। चौथे दिन मैं उसके घर पहुंच गया। यहां मैं पहली बार आया था। परकोटे में घिरे पुराने शहर की संकरी गली थी, जिसमें केशव का पुश्तैनी मकान था।

'यार बड़े तंग-गली निकले!' मैंने देखते ही मजाक किया।

'लेकिन तंग-दिल नहीं' वह तपाक से बोला। मैंने देखा, सहसा उसकी दृष्टि में कातरता लहरा गयी थी।

और एक बार और अशोक को कोसा। बचा-खुचा सुरूर भी हवा ने बिखेर डाला। कुछ देर बैठकर हम एक-एक, दो-दो करते उठने लगे। मेरे पीछे उदय चला आया था।

इसी रात उदय मेरे हिस्से पड गया था। अगले समूचे दिन वह मेरे आसपास बना रहा। दिन के उजास मे मैने उसे गौर से देखा। उसके चेहरे पर, नाक हो या आखे, सर्वत्र एक तीखापन विद्यमान था। बोलने मे एक तुर्शी थी, जिसमे बीच-बीच मे मिठास का अद्भुत स्वाद आने लगता। उसके गेहुए चेहरे पर एक दुर्लभ सरलता प्रवाहित थी, जो उसके बोलते समय और भी बढने लगती। चौबीसो घटो, मै उसको किसी दिलचस्प किताब ज्यो पढता रहा। मुझे लगा, इस किताब के हर पन्ने पर कोई बेचैन फडफडाहट ठहरी हुई है। उसको समूचा भापकर मेरा मन कह उठा, जरूर 'कुछ' है, जिसकी मुझे भी तलाश रही है। अपनी दीवानगी मुझसे छिपी न थी। मैने अपने-आपने मे ही उदय को कहा, 'अब मुझ से छूटकर नही जा सकोगे, उदय!'

अधप्याली चाय पर 'सत्कार' मे जुटना होता था। साथ-साथ या अलग-अलग, प्राय सभी पहुचते थे। वे दिन ख्वाबो-ख्यालो के थे। इस अधप्याली के पहलू मे हम बहसे करते, जो फकत प्रतियोगी परीक्षाओ से होकर अफसरी के दिव्यलोक तक पहुचने से जुडी होती थी। अपनी-अपनी बाबूगिरी के सिहासन पर बैठे-बैठे हम हर बार फीस देकर इन उडानो पर निकला करते थे। एक उडान मे सफल होकर हेमत छोटा एकाउटेंट बन चुका था। इस सफलता ने उसे किसी प्रेत-सिद्ध ओझा की तरह बोलना सिखा दिया था। उसमे 'इसान के लिए कुछ भी असम्भव नही' वाला पारा ऊचा चढ रहा था। वह किसी नये 'असभव' को सभव' करने पर तुला था, सो 'सत्कार' कम आता। जबकि उदय—घर शहर के भीतरी हिस्से मे दूर होने भी—शायद ही कभी चूकता था। अब वह हमारी चौकडी का अभिन्न सदस्य था।

एक बार वह लगातार तीन दिन नही आया। रामेश्वर से पूछा, तो मालूम हुआ कि दफ्तर से भी गायब है। चौथे दिन मै उसके घर पहुच गया। वहा मै पहली बार आया था। परकोटे से घिरे पुराने शहर की सकरी गली थी, जिसमे केशव का पुश्तैनी मकान था।

'यार बडे लम-गलो निकले!' मैने देखते ही मजाक किया।

'लेकिन लम-दिल नही' वह तपाक से बोला। मैने देखा, सम्भवा उसकी दृष्टि मे बावरता गहरा रही थी।

यह मुझे घर में ले गया। अन्दर और भी घिरा-घिरा था। घुसते ही छतवाला अहाता था। इसी में बायीं तरफ बांटकर बनाया हुआ नीची छत का कोठरीनुमा कमरा था। उदय ने मुझे इसी में बिठाया। चार फोल्डिंग कुर्सियां खुली पड़ी थी। मैं एक पर बैठ गया। कोने में पुरानी-सी, नक्काशीदार लाल काठ की तिपाई थी, जिसे देखते ही समझ में आ गया कि यह रजवाड़े के पुराने सामान की नीलामी में बोली छुड़ाकर लायी गयी है। छत पर ओरियंट का आल-फपंज भुनभुना रहा था। नील मिलाकर सफेद पुती दीवारों पर देवी-देवताओं की बेतरतीब तस्वीरें लटकी थीं। इन्हीं में घिरी एक मनुष्य की तस्वीर पर मेरी दृष्टि पड़ी। इसमें एक क्षीणकाय नौजवान सिर पर रुमाल बांधे, पतलून पर सैंडो बनियान पहने एक-टक आसमान ताक रहा था। फोटो खिंचवाते समय उसके मन में कौन-सा भाव रहा होगा, पता लगाना मुश्किल था। कुछ देर लगातार देखकर मुझे मितली-सी आने लगी। मैंने उबरने के लिए पूछ डाला, 'ये कौन हैं ?'

'मेरा मझला भाई, इससे बड़ा भी है। अहमदाबाद रहता है। इधर मुंह भी करना नहीं चाहता।'

'तुम सबसे छोटे हो—छोटे भाई !' मैंने हंसकर कहा, 'एक अरबी कहावत सुनी है, कुत्ता भी बनो लेकिन छोटा भाई मत बनो।'

उदय ठठाकर हंसा, मैंने फिर पूछ लिया, 'ये क्या करते हैं ?'

'भारत—भाग्य-विधाता हैं, याने अध्यापक। डबल एम. ए. है, इतिहास और लोक-प्रशासन में अलग-अलग। देखो, कैसा प्रतिभा-हनन है ! एम ए. डबल और तृतीय श्रेणी की मास्टरी। अत. यह विद्रोही आत्माएं स्कूल गाहे-बगाहे ही पहुंचती है। ऊपर आराम कर रहे हैं, मिलना चाहते हो ?' उदय की वाणी में व्यंग्य प्रकट था। मैं कहने के लिए कुछ जुटा रहा था, कि उसने पूछा, 'चाय पिओगे ?'

'वाह, पिऊंगा क्यों नहीं !'

'बैठो जरा !' कहकर उदय अंदर गया। अहाते के उस छोर पर रास्ता था। इसके सामने कोना घेरकर स्नान-घर बना था। स्नान-घर पर मैला पर्दा लटक रहा था। दीवार से लगी पुरानी, जंग-खायी साइकिल खड़ी थी। बदशक्ल जूते-चप्पल सीमेंट के फर्श पर बिखरे पड़े थे। मैं खाली बैठा यही मुआयना कर रहा था, कि आंगन से बरतन गिरने की तेज ध्वनि हुई।

'फोड डाल, राड कहीं की ! घर का एक-एक ठीकरा फोड डाल, पर सुन ले, यह न तेरे पीहर का है न तेरा खसम लाया है, जिस दिन अपने फोडेगी, तब देखूगी' सन्नाटे के पीछे अजान कर्कश नारी स्वर सुनाई पडा।

धप-धप ! अगले पल ही कोई भागता-सा सीढ़ियों से उतरा।

'बोल, अब बोल ना। जीभ निकालकर हाथ में दे दूगा किसी दिन।' यह पुरुष-कंठ था।

उदय लपकता-सा वापस आया। उसने लुगी की जगह पतलून पहन ली थी। बोला, 'आ यार, चाय बाहर पियेंगे—यहा तो इराक-ईरान हो गया है।'

मुझे मानो मोक्ष मिला, मैं तुरन्त खड़ा हो गया। बाहर निकलकर मैंने कहा, 'उदय चाय फिर सही ! फिलहाल मुझे इतना बता कि दफ्तर क्यो नही आया ?' 'सरकार' भी नहीं आ रहा।'

'छोड यार' पहले तुझे चाय पिलाऊगा आखिर तू पहली बार मेरे यहा आया है।' उदय चहकता-सा बोला, तो मैं अचभित रह गया। उसने पास आकर मेरे गलबहिया डाली और उसी तरह बोलने लगा, 'पी ओ की वेकेंसी आयी है—अखबार देखा ? यार, मेरा अतिम अवसर है। इस बार जमकर दूगा एग्जाम। तुझे बैंक की नौकरी से चिढ है, क्यो ?'

मैं अवाक् उदय का मुह देखता रहा। मुझे वह निकट विगत के प्रत्येक क्षण को अपने खुरों से धूल की तरह पीछे फेंकता लग रहा था व ऐसा खुशी-खुशी कर रहा था, पर मुझे उसमें बेचैनी रिसती नजर आयी। उसे देखकर मैं अपने को ख्वाहमख्वाह असहाय-सा पाने लगा था। बोलने की बजाय मुझसे बुदबुदाया गया।

'उदय !'

'कुछ नहीं, यार....मुझे पता है तुम क्या पूछोगे। उसे गोली मारो।'

उसने सिर झटकते कहा।

'किसे ?'

'मेरे उस डबल एम. ए भाई को। क्या इलाज है, उसका। उसे न मां रास आती है, न बीवी और न ही स्कूल। आदमी नहीं, वह एक साक्षात् जंजाल है। सब होता है, सबके होता है—पर मेरे यहा, उफ ! तू छोड, चाय पीते है, सिगरेट भी पियेंगे, यार !'

पान-दुकान सामने थी। उदय लपककर काउंटर पर गया, सिगरेट लाने। लौटते हुए उसने सिगरेट का लम्बा कश लेकर आधा निचोड़ डाला था। ढेर-ढेर धुआं उगलता मेरे पास पहुंचा। फिर वह इधर-उधर की बातों पर आ गया। दो-तीन लतीफों की जगह उसने जाने कैसे निकाली और सुनाकर जोर जोर से ठहाके लगाये। उसका रवैया देख कर एक पुराना दृश्य मेरी स्मृति में कैसे कौंध गया, मैं नहीं समझ पाया। मैंने देहात मे देखा था—कि कच्चे आगन में पड़ी धुआंई लालटेन के इर्दगिर्द छोटे-बड़े अनगिन बिच्छू जुट आये हैं और डंक उठाये-उठाये प्रकाश की परिधि में अंधाधुंध चक्कर लगा रहे हैं। यह भी याद आया, देहाती इन बिच्छुओं को बाद में बाल्टी में बटोरकर एकमुश्त परलोक भेजते हैं।

'चलें?' मैंने पूछा।

'हां,' उदय खुशी-खुशी बोला और मुझसे पहले ही हाथ हिलाता एक ओर चल पड़ा।

दफ्तर की एक निढाल दोपहरी मे रामेश्वर का फोन आया। उसने बताया, 'खुशखबरी है, उदय की सगाई हो रही है।' आगे की पूछताछ पर उसने मुझे चार बजे अपने दफ्तर बुलाया। कहा कि उदय बाहर गया है। तब तक लौट आयेगा। मैं उसी से पूछ लूं। असल बात यह थी, कि शाम को पीने का प्रोग्राम है। दावत उदय देगा। फोन रखने के बाद मैं सोच मे पड़ गया। यह अचानक उदय को क्या सूझा? आज तक तो शादी के नाम से ही छींकता था। रामेश्वर ने तो कहा—खुशखबरी है—मुझे अनायास ही किसी हादसे की बू सताने लगी थी। तीन दिन पहले भी उदय खुश था। कचौरी मगवाने पर तुल बैठा था। पर इसका कारण और कुछ था। तीन दिन मे वह कहा निकल गया? 'सत्कार' की तीन दिन पुरानी शाम का क्षण-क्षण मुझ पर उजागर होने लगा।

'आज अपन टॉप गियर में है', उस शाम उसने 'सत्कार' मे कदम रखते ही घोषणा की थी। लेकिन इसे उसकी अदा समझकर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया था। इस पर झुंझलाकर बोला, 'सब क्या इस्पात मे ढले हो? मैं कह रहा हूं, मै इतना खुश हूं कि चाहो तो कचौरियां मगवा लो।'

'यह जानकर हमे खुशी हुई।' अशोक बोला।

'पर प्यारे, खुशी की वजह सुननी पड़ेगी'। उदय ने कहा।

'सुना डाल।' मैंने सबकी तरफ से कह डाला।

'तो पहले बताओ, माधवी को कौन जानता है?' उदय ने फिर पहाड़ा बनाया।

'मैं जानता हूं, भई।' मैंने कहा, 'तुम्हारी गली के अन्तिम मकान वाले दुबेजी की बेटी। रोज रात को तुम्हें तुम्हारी खिड़की पर आकर सुपारी खिलाती है।'

'कमाल है यार! तुम्हारा लोकल जनरल नॉलेज तो बहुत ही गाउड निकला।' उदय अपनी अदा पर आने लगा।

'आज माधवी सुपारी की जगह कुछ और चबा गयी क्या?' अशोक ऊबा-सा बोला।

उदय की सावली सूरत और गहरायी। अनिरंजित नाटकीय ढंग से बोला, 'दोस्त! अपनी तरह हरेक को इतना चालू चरित्र मत समझा करो। माधवी से कुछ और चखना, मेरे बायें हाथ का खेल है–लेकिन अशोक और उदय में यही फर्क होता है। हां, यह हो सकता है कि तुम शायद मुझे मेरी शक्ल याद दिलाना चाहते हो। दोस्त! इन्सान की शक्ल कई जगह कोई अर्थ ही नहीं रखती।'

'जैसे माधवी की शक्ल।' अबकी मौका देखकर हमन्त बोला।

'मुझे तुम्हारी पाचन-शक्ति का अंदाज होता, तो तुम्हें माधवी की शक्ल कभी नहीं दिखाता। लेकिन महोदय, तब भी आपकी नायिका सुनंदा भूनड़ा से माधवी बीस ही है, उन्नीस नहीं।' इस बार लगा, उदय सचमुच मर्माहत हो गया है।

'उदय, तू सुनंदा [illegible] रहस्नुमा रशीद कर।' मैंने बात लपेटनी चाही, 'पुर्जी से [illegible]ता है?'

[illegible] गया। [illegible] [illegible]ए डॉक्टर! पी.एम टी. की [illegible]'। यार, ये लोग हमारे लिये [illegible]स सारा गुस्सा छोड़कर क[illegible]

[illegible] सही! आपको लिखाइ सुपारी के [illegible]ोर पर उदय की बिहारी की टांग

'तुमने सुपारी भी चरी है ?' उदय ने चिढ़कर पूछा।

अशोक ने बेरहमी से मुह बिचकाया, 'ये जनाना शौक हमें नही पालने।'

'तुम्हें अंदाज है, तुम कितने क्रूर हो रहे हो—हृदयहीन पिशाच! माधवी से मिले होते, तो तुम्हारी आत्मा का गंगा-स्नान हो जाता। तुम्हारे पाप धुल जाते।' उदय झल्ला पड़ा।

'मेरे धुल गये।' हेमंत को दुबारा मौका मिल गया। वह बोला, 'आप ही मुझ अंधे को घाट पर ले गये। कहा—यह अपने से फंसी हुई है। तुम्हारे फंसाने को माधवी ही बची थी? आदमी अपने जूते देखकर ही जाने की जगह चुनता होगा। अब फटे जूतों में ताजमहल जाने की हिम्मत कौन करे?'

'दोस्त! मुझे दया आ रही है कि तुम अंदर से इतने खोखले हो रहे हो।'

उदय ने कहा, तो उसकी पीड़ा में सच्चाई झलकी। लेकिन इसे उसकी अदा समझकर एक जोरदार ठहाका लगाया गया, जो मेज पर जिन्न की तरह बढ़कर छत से जा लगा।

'बधाई! उदय, बहुत सारी बधाई!' मैंने उदय का हाथ पकड़कर कहा।

'किस बात की?' वह सकपका चुका था।

'माधवी के सलैक्शन की, और काहे की? यह बधाई तुम्हें नही, तो क्या माधवी के बाप दुबेजी को दूंगा? कचौरी नही मंगवानी क्या?'

उदय थका-सा हसा। काउटर की तरफ मुह उठाकर आवाज दी, 'दो-दो कचौरी दे दो सबको।' वापस मेरी तरफ मुड़कर सबसे बेसब्र-सा बोला, 'यार, चाहे जो सहना पड़े, खुशी का कोई बहाना हाथ से क्यूं गवाया जाय! कई बार कितनी दूर तक निकलकर इसे ढूंढना पड़ता है। इतनी मेहनत से हासिल हर बहाना खूबसूरत होता है।'

वहां से उठने के बाद उदय मुझे गलबहियां पहनाकर किनारे ले गया। सबसे छिपाकर बोला, 'मैं इन्हें माफ कर चुका हूं। ये नही जानते कि कोई भी माधवी कितनी असाधारण हो सकती है। इनके आंखें ही नही है। मुझे ऐसी खुशियां इन्हें नही दिखानी चाहिए। बस, तुम अकेले ही ठीक होते।'

इस शाम के बाद सोने तक मेरा मन उमड़-घुमड़कर आता रहा। सवेरे उठा, तो भीतर का आसमान फिर साफ निकल आया था। नींद ने सारे किस्से को उदय की फाइल में डाल छोड़ा होगा। रामेश्वर ने फोन कर, फादर गोन

दी। कही से एक आवाज आने लगी— माधवी उदय के दूर या पास, कही नही, कोई नही। वह एक नाम भर है, जिसमे लिपटकर उदय हसना नही रोना चाहता है।

उस दिन मैं उदय से नही मिल पाया। उससे मिलना जरूरी था। भीड में उससे कुछ भी पूछना, उसे बिखेरने के अलावा कुछ न होता। मुश्किल से उसे अकेले मे घेरा। सगाई-प्रकरण पर देर तक फालतू टालमटोल करता रहा, फिर तग आकर फूट पडा, 'दोस्त! मैं अपने मा-बाप की लबी टागो से तग आ गया हू। मुझसे जुडे किसी मामले मे ये टागे नही चलेगी। इसलिए मैंने पूर्णिमा को चुन लिया है। उधर मा-बाप मुझे बेचने के टेडर-कॉल करने मे लगे हुए है।'

'लेकिन यह पूर्णिमा है कौन?'

'बता दूगा, यार।' वह आजिजी से बोला, 'लो, अभी सुन लो। कैलाश को जानते हो? मेरे घर से पहले चौक मे परचून की दुकान है, वही। पूर्णिमा उसी की सगी बहन है।'

'उसकी बहन?'

'हा, और जानकर क्या करोगे!' उदय बचना-सा बोला।

मैं उसका रवैया भाप गया। मुझसे छिपाना क्यो चाहता है? यह मेरे तईं अविश्वसनीय था। मैंने झल्लाकर कह दिया, 'तुम्हारी मर्जी हो, तो ही बताओ। मै अपनी सीमा तय कर सकता हू।'

उदय ने दृष्टि उठाकर मुझे देखा। उसका चेहरा तरलता मे आप्लावित दीखने लगा। थोडा रुककर बोला, 'नाराज मत हो यार प्लीज! ऐसी कोई बडी बात ही नही है। पिछले दिनो मैं मुद्दत बाद कैलाश के घर गया था। पूर्णिमा बीमारी से उठी है। पूनी-सी सफेद और दुबली हो गयी है। दो महीने अस्पताल मे भर्ती रही थी। यही उस घर की समस्या बन गयी है। पूर्णिमा की सगाई टूट गयी, यार। लडके वाले लोगो के बहकावे मे आ गये। वे पूर्णिमा के अस्पताल भर्ती रहने मे कई घिनौने कारण देख रहे है। यह भी कोई बात है— क्या इन लडकियो को बीमार पडने का भी हक नही?' उदय और झल्लाकर आगे बोला, 'मै एक दुःखी इन्सान हू, शायद इसीलिए दुःख का असली चेहरा मुझसे छिप नही सकता। पूर्णिमा का चेहरा वही है। उसके चप्पे-चप्पे पर दुःखो का इतिहास दर्ज है। मै शायद उसके दुःख से ही प्रेम करने लगा हू।'

'यह क्या बातें कर रहे हो, उदय ! तुम होश मे हो न ?' मैंने टोका।

'हाँ, आगे सुन लो। पूर्णिमा का बाप निठल्ला है। मां तिरपाल के थैले सीकर कुछ कमाती है। पूर्णिमा से छोटी एक और लड़की है। उसे भी ब्याहना है। इधर मैं नाना तरह-तरह से किस्मत आजमा रहा है। नौकरी पा नही सका। अब तुम कहो, मुझे क्या पड़ी है ? सही कहोगे। पक्की नौकरी पर हू। पढ़ा-लिखा भी लोग मानते हैं। जवान लड़कियों के बाप तक मेरे सपने देखते होंगे।' कहते-कहते वह थोड़ा-सा मुस्करा दिया और फिर संयत होकर बोला, 'लेकिन दोस्त. ..मैं अपनी जिंदगी में कोई दरियादिली नही चाहता। मैं तो ऊब की गर्द झाड़ना चाहता हूं, पीट-पीटकर.. समझे !'

'और माधवी ?' मेरे मुंह से निकला.

उदय सहमकर पीछे सरका। उसका एक हाथ कमीज का तीसरा बटन टटोलने लगा। बमुश्किल अपने मे लौटकर उसने जवाब दिया, 'ऐसे सवालो से क्या फायदा, जिनके उत्तर हमारे पास न हों। माधवी कौन है मेरी ? सिर्फ नाम-उदासी का रामबाण इलाज है किसी नाम मे चिपटे रहना।'

'हू-अ।' मैं सोचकर बोला, 'आखिर कब तक अपने को ठगोगे, मैं भी देखता रहूगा। इस मसखरेपन की भी कोई मंजिल होगी ?'

'मसखरापन....हा-यार खूब शब्द लाये तुम भी। लेकिन सबसे बड़ा मसखरा तो मेरा बाप है, जिसने मुझे पैदा किया। घर के कुरुक्षेत्र मे तो मेरे दो योद्धा भाई ही काफी रौनक रख लेते। ऐसा करो, पढाकूजी, मुझे मेरी पैदाइश का कोई अर्थ समझा दो।

न चाहते भी मुझे तैश आ गया। मैंने कहा, 'यह चालू फलसफा हर तीसरा सिरफिरा बघारता मिल जायेगा। माफ करना, मुझे इसका कायल नहीं कर सकोगे। मैं यह कहे बिना नही मानूगा कि जो जिंदगी की कल्पना फकत रेशम के गोदाम के रूप मे करते हैं, वे लफ्फाज किसी न किसी को धोखा देकर ही ऐसा कर पाते हैं। सुनो उदय ! खड़े होने का असली लुत्फ पक्की जमीन पर ही आता है। हा लडखडाने या डूबने के प्रयोग ही करने हो, तो बात अलहदा है। फिर चाहे जितनी नावो मे चाहे जितनी बार खड़े-खड़े यात्राएं करो और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खेलो, पर अकेले। माधवी, पूर्णिमा या सुनदा को खेल का औजार बनाने की छूट तुम्हे कौन लेने देगा ?'

'दोस्त ! बात दमदार कहते हो।' उदय उदास-सी आंखो को फैलाता बोला, 'काश, हमे भी कोई मौका देता ! दूसरो के निमित्त जोशीली शब्दावली मे ढले उम्दा मशवरों का अपने यहां भी टोटा नही है, प्यारे !'

मैंने देखा, उदय अपनी तर्जनी छाती पर टिकाये, चुनौती की मुद्रा में खड़ा मुस्करा रहा था। उसे देखते-देखते मेरे भीतर एक अचीन्हा-सा उद्रेक होने लगा। मैंने भीगते स्वर में कहा, 'ऐसे कई मौके मुझे याद हैं, उदय....जब मैंने तुमसे कुछ सीखा है। तुम इस अर्थ में सचमुच असाधारण हो, कि दुख का घनत्व मापकर भी जीने का साक्षात संदेश लगते हो। लेकिन भाई, जिंदगी में व्यवस्थाएं भी तो मूल्यवान होती हैं।'

'वही तो वही तो चाहता हूं।' उदय चहक पड़ा जैसे, 'घरवाले माने तो ठीक, न माने तो भी क्या करेंगे? दोस्तों पर निर्भर होकर पूर्णिमा से शादी कर लूंगा। बस, मेरी जिंदगी में व्यवस्था की यही सूरत नजर आती है।' बोलते-बोलते वह फिर भीगने लगा। इस बार एकदम कंठ रुद्ध हो गया उसका, जब उसने कहा, 'यार, मुझे प्यार की भूख लगी है। जोरदार भूख.. वह भी किसी नारी के प्यार की। और भूखा, तुम जानते हो–रोटी नहीं देखता कि कच्ची है या पक्की,–ताजा है या बासी!'

उदय जैसे अंडे से बाहर आया नवजात पखेरू हो, मैं उसे निगाह सजोये देखता रहा। उसे इस आवरणहीनता में देखकर एक नरम-सी उदासी मेरी पोर-पोर में पैठ गयी–ऐसी उदासी जो आत्मा में अगरबत्ती ज्यों सुलगती है और भीतर-बाहर, सर्वत्र सुगंध फैला देती है। उदय ने इसी सुगंध में मुझे मानो रूब-रू मिला दिया था।

एक दोपहर उदय मेरे दफ्तर चला आया। अपने जरूरी काम का हवाला देकर मुझे उसने घसीट लिया। थोड़ी दूर निकलकर कहा कि वह बातें करना चाहता है, सिर्फ बातें–निर्विघ्न! यही विघ्न-हीनता तलाशते हम एक शिव-मंदिर के रास्ते पर थे। यह जगह पहले की देखी-भाली थी। पहले भी एक बार यहां उदय मुझे लाया था। सूखे तालाब के किनारे आश्रम-नुमा मंदिर, जहां पुराने पेड़ों की हरियाली अब भी थी। मग-प्रेमी शिव-भक्तों के अलावा वहां कम ही लोग पहुंचते थे। सड़क पर थोड़ी-थोड़ी देर में गुजरते ट्रकों की चिंघाड़ या सुबह-शाम की घंटा-ध्वनि को छोड़ कोई कोलाहल वहां नहीं था। आसमान लावा बरसा रहा था। उदय जिद करके मुझसे आधा दिन छुट्टी की अर्जी दिलवाकर ले आया था। तेज चलकर मंदिर के किसी पीपल, नीम या जाल की छाया-तले आसरा लिया जा सकता था। पर हम बातों में मशगूल, आंच में पकने-से धीमे-धीमे चल रहे थे।

'यह क्या, फिर नयी कमीज?' मेरा ध्यान गया, उसने खादी की वह कमीज

पहली बार पहनी थी। मेरे निकट उसके एक-एक पहनावे की पुख्ता पहचान थी।

'बिल्कुल....कैसी लगी ?' उदय ने बखुशी पूछा।

'तुम्हारी लीला अपरंपार है, पतलून आलीशान और कमीज हमेशा खादी का ? सिर्फ ऊपर-ऊपर गांधीवादी होना चाहते हो क्या ?' मैंने ठिठोली-सी की।

'सच्ची बताऊ ?' वह रहस्योद्घाटन करता-सा बोला, 'दूसरो को नही मालूम, पर तुमसे क्या छिपाना। असल में बात यह है कि खादी में एक हद तक दुबलापन छिपा रहता है। पता नही, गाधीजी भी मेरी तरह इसके शिकार थे या नही, पर मैं इसमे अपनी दुर्बलता-जनित हीन भावना खादी में छिपाता हू। तुम मुझे आधी बाह का कमीज पहने भी कभी नही पाओगे। पहन ली तो अकाल-पीडित नजर आऊगा। समझ गये ?'

मैं क्या बोलू, सूझा ही नही। हंसी आयी, पर बीच मे ही फीकी पड गयी। बोलने की जगह भरने के लिए मैंने कहा, 'खादी मे भी तुम चीज छांटकर लाते हो। एकाध कमीज मैं भी तुमसे खादी मंगवाकर बनवाऊगा।'

'मान गये, मेरा चुनाव निर्दोष होता है ? पूर्णिमा भी निर्दोष है, एकदम निष्कलुष।' वह वही जा पहुचा, जहा के लिए मन ही मन भटक रहा होगा।

'तो अब सब कुछ तय क्यो नही करते ?'

'हो रहा है। पूर्णिमा के बाबूजी आये हैं, परदेश से। मर्द लाख गया-गुजरा हो, कही न कही अपने भाव वसूल कर ही लेता है। कैलाश कहता था, वही मेरे घर आयेंगे। मैंने कहा, मेरे साथ ही सब तय कर लीजिए। लेकिन यार, लगता है, वे भी मेरी मा से भयभीत हैं। मेरे घर के हाल-हवाल किससे छिपे हैं।' कुछ देर चुपचाप चला। फिर जैसे अपने से ही मुखातिब हो, बोलने लगा, 'अहमदाबाद वाले भाई की बीवी बीच-बीच मे पीहर से चली आती है, तो घर मे सूनी-सूनी, प्रेतनी-सी डोलती फिरती है। मास्टर साहब के पैर पकड-कर पिताजी ने उन्हे दुल्हन कबूल करवाया। क्या करते ? बेटे को श्रवणकुमार समझकर गाव मे सगाई का वचन जो दे आये। वह नही मानता, तो महान बिरादरी पिताजी की महान इज्जत मिट्टी में नहीं मिला डालती ? हठी राजकुमार दूल्हा तो बना, पर उनकी दुश्मनी अपने बाप और बीवी, दोनो से निभा रहा है। कैसा लाजवाब दुश्मन है कि उनकी बैरन के पेट में उनका बच्चा बढ रहा है। शैतान कही का !'

उदय की तुर्शी पर मैंने उधर देखा। घृणा और धूप के मिले-जुले असर ने उसके चेहरे पर तबाही-सी मचा रखी थी। मैं लाचार-सा बोल पड़ा, 'मास्टर साहब के ऐसा करने के पीछे कोई कारण तो होगा! वह लड़की कैसी है?'

'सीधी-सादी और शहर से सौतक देहातिन। वह अपने पतिदेव की इज्जत वैसे ही करती है, जैसे चूहा बिल्ली की। मेरा दम घुटता है, जब वह डबल एम ए उस पर आए दिन हमले करता रहता है। उस बेचारी को पता ही नहीं लगता, कहां चोट लगेगी, क्योंकि वह उसे आंखें तो दूर, घूंघट भी नहीं उठाने देता। यार पंडतजी, तुम ही बताओ कि इस दुनिया का ढांचा जो इतना बेडौल है—इसका कारण क्या है? कम से कम मेरे घर में मुझे यही लगता है कि कोई कारण नहीं हर चीज बिना कारण बिगड़ती चल रही है। सारे दुःखों का एक यही कारण मुझे नजर आता है, बस।

'उदय चुप हो गया। मैंने उसे देखा। धूप में उसकी काया का एक-एक कोण चमक रहा था। बाहर की इस चौंध के बावजूद मेरे भीतर जैसे अंधेरा घिरने लगा। इससे छुटकारा पाने की चेष्टा में मैंने पुकारा, 'उदय!'

'हुश्ट! यार... मैं फिर वहीं पहुंच गया अपनी पट्टी पर अपना दुखड़ा रोने। तुम्हें क्या यही सुनाने लाया था?' जवाब में वह सिर झटककर एकमुश्त बोल पड़ा।

'कोई बात नहीं। अब मेरी भी सुनोगे।' मैंने हंसकर कहा।

'कहो न।'

'उदय, कहना कई दिनों से चाहता हूं। तुम्हारे बारे में अक्सर सोचने-साचने जो कुछ पा सका हूं, वही है। यह न समझना कि मैं तुम्हारे दुःखों को कुछ कम कर रहा हूं। फिर भी मुझे तुम्हारी पहली भूल यही लगती है कि हर दुःख की जड़, अपने अनजाने ही, शायद तुम तकदीर में ढूंढ़ते हो। वहां कोई बस नहीं चलता, तो इन दुःखों को अपनी भावुक और मध्य व्यवस्थाओं में बरदाश्त में बदलने पर उतारू होते हो। तीसरा भी रास्ता हो सकता है, इस दलदल से पार का। हौसला तुमने पहले ही पस्त कर दिया लगता है। सिर्फ तुम्हारी नहीं, शायद हम सबकी यही कहानी है। जानते हो, क्या होगा? देखते-देखते हमारी नाक के नीचे किसी दिन हू-ब-हू हमारे दिमागों से निकल जाएगी। सोचो कितनी दुःखदायक है ये निराशा और ऐसी हालत!

उदय ने एक भरपूर दृष्टि मुझ पर डाली। थोड़ा-सा ठिठककर बोला, 'सब कुछ सही कोरा भावुक कल्पनाएं हैं, मैं मान लूं, पर सांसारिकता इससे भी अलग है।

बचपन से घर में यही सुनता रहा कि हम दौलतवाले थे। हमारे बाप-दादे रियासत के कृपा-पात्र ब्राह्मण थे। भेंट-बख्शीशों से जुटी अमीरी रही होगी। बाप-दादों के साथ रियासतें भी मर गयीं, तो औलाद में बंटवारे हुए। बंटवारे में हम अंदर से भी बंट गये। मां पिताजी से बंट गयी। जानते हो क्यों? वे अपने भाइयों से पिछड़ गये। उन्हें हमारे संदूकची सरीखे मकान के अलावा कुछ नहीं मिला। मां इसीलिए हम पर ममता नहीं लुटा सकी, क्योंकि उसे पिताजी से प्रेम नहीं घृणा थी। पिताजी ने इस घृणा के आगे घुटने टेक दिये। मुझे यह तुलना बड़ी क्रूर लगती है, पर यह सच है कि ये हमारे घर में, गली के कुत्तों की तरह, छाया की तलाश में सिसक-सिसककर सिर्फ सूरज डूबने की राह देख रहे हैं। उनकी जिन्दगी में हरियाली आयी ही नहीं। इन दो फटी-फड़फड़ाती पतंगों की छाया में बीता हमारा बचपन हमें उससे बेहतर क्या बनाता, जो हम हैं?'

'नहीं उदय.... यह नहीं।' मैंने उसके चुप होते ही कहा, 'तुम अपने घर की चौखट से आगे पांव क्यों नहीं बढ़ाते? तुम्हारा सारा सोच-विचार छोटी-सी परिधि में चक्कर खाते सरलीकरण के सिवाय कुछ नहीं। यह क्यों नहीं देखते कि कोई भी बात एक सीमा के बाद नितांत निजी नहीं ठहर सकती। आज की दुनिया में तो यह कतई मुमकिन नहीं है। तुम अपनी जकड़ से छूटकर सोचोगे, तो शायद अपने में मुझे, अशोक और यहां तक कि देश के हरेक नौजवान को देख पाओगे?'

'इसका फायदा?'

'सबसे बड़ा यह कि तुम फालतू के अकेलेपन से बच जाओगे। तुम केवल और केवल, उदय नहीं रहोगे!' कहते-कहते मैंने पाया कि हम दोराहे पर है, जहां से रास्ता मुड़ रहा था।

हमारी छांव की मंजिल सामने थी। हम जैसे समय को लांघते हुए यहां तक आ गये थे। एक नीम की मीठी छाया में हम बैठ गये। मुझे सहसा बोध हुआ कि किस कड़ी धूप से चलकर हम यहां तक आये हैं। उदय ने सिगरेट निकाली।

'यार, तुम तो बड़ी पते की बात कह गये!' उसने धुआं उगलते मुस्कराकर कहा।

'पते की बात! कहीं हंसी तो नहीं उड़ा रहे?'

'कसम से, अभी तो नहीं।' उदय नटखटपन से बोला, 'लेकिन उड़ानी तो पड़ेगी।'

मत सोचो सो बेकल फूलों को,
शाखों पे बिलखने मत छोड़ो।

यह फस्ल उम्मीदों की हमदम
इस बार भी मारी जायेगी,
यह मेहनत सुबहो-शामों की
अबके भी अकारथ जायेगी।

खेती के कोनों-खुदरों में
फिर अपने लहू की खाद भरो।
फिर मिट्टी सींचो अश्कों से
फिर अगली रुत की फ़िक्र करो

फिर अगली रुत की फ़िक्र करो
जब फिर इक बार उजड़ना है
इक फस्ल पके तो भरपाया
तब तक तो यही कुछ करना है।'

उदय आँखे मूदकर सुन रहा था। मेरे खत्म करते ही गहरी सांस छोड़ते बोला, 'तब तक तो यही कुछ करना है।'

'पूछोगे नही, इसे किसने लिखा है!' मैंने कहा।

'नही, कोई जरूरत नही। हा यदि कह सको तो लिखने वाले से कहना कि उदय ने सुन ली है।'

'उठें अब?' मैने पूछा।

उदय उठ खड़ा हुआ और कपडे झाडने लगा। धूल का एक गुबार उससे अलग होता सर्वथा दृष्टिगोचर था।

मैं सप्ताह भर दौरे पर रहा। लौटने के दिन थकान-सी लगी, तो 'सत्कार' नही गया। अगले दिन मुह-अंधेरे समर बदहवास दौड़ा आकर बोला, 'उदय नही आया?'

'यहां?' मैं चौंका।

'हां, तुम्हें कुछ भी पता नहीं ? उसकी सगाई टूट गयी। वह खुद तोड़ आया। मुझे शाम को मिला था—ड्रग-लोडेड। सड़क में अपने घर को गालियां दे रहा था। कहता था, उस नर्क में नहीं जाऊंगा। मैं पकड़कर अपने यहां ले गया। सुबह मुझसे पहले उठकर भाग निकला। मैंने सोचा, यहीं आयेगा।'

थोड़ा रुककर समर आवेश में आया, 'यार, यह क्या मजाक है ?'

'मजाक ?'

'और क्या ! कहता था, पूर्णिमा से खुद कह आया हूं कि यह रिश्ता यहीं समाप्त करता हूं। यार, उसकी यह बकवास अब बहुत हो गयी।'

मैं हतप्रभ सुनता रहा। समर गुस्से में कांप रहा था। मैंने उसे थामना चाहा, 'हम उदय को ढूंढते हैं। उसे मनमानी नहीं करने देंगे।'

'उसे ढूंढकर क्या लोगे ? दो-चार बेसिर-पैर के जुमले, जिन पर तुम्हीं भरोसा करना। मैं आज उसे अंतिम बार कह दूंगा कि...' समर बात अधूरी छोड़कर उठ पड़ा।

'ठहरो...' मैंने पुकारा। 'चलता हूं।'

'कहां ?'

'कैलाश के पास।' मैंने दृढ़ता से कहा।

समर मेरा मुंह ताकने लगा। मैंने फटाफट कपड़े पहने और समर को लेकर निकल पड़ा।

रास्ते भर कोई नहीं बोला।

कैलाश ने दुकान खोल ली थी। दुकान क्या, एक रिहायशी मकान का बाहर खुलता तहखाना था। उसके दो-तीन सीढ़ियों वाले दरवाजे में दुकान का रूप लगा था। एक तख्ता था। तख्ते पर दाल, चावल, चीनी, गुड़ और ऐसी ही चीजें अधखुले पीपों में उघड़ी पड़ी थीं। मक्खियों के जत्थे शायद रात में ही उन पर मौजूद थे। तख्ते से उठे खोखे में रोजमर्रा का सामान गर्द-गुबार में अटा पड़ा था। पीपों के पास छोटी-सी गद्दी पर बैठा कैलाश अत्यधिक दीन-हीन लगा। उसने पाजामे पर, अजीब-सी चारखाने की, मलगजी सफेद कमीज पहन रखी थी। उसने अपने बाल केवल तेल से चुपड़कर सीधे काढ़ रखे थे। हमें देखते ही सबसे पहले उसका हाथ इन्हीं चिकने बालों पर फेरने लगा, जैसे वह उन्हें आंखों से बिखरने से रोका रहा हो।

'नमस्कार, हमें आपसे कुछ बात करनी है।' मैंने दुकान में उतरते हुए दो-टूक कहा।

'मुझसे?' वह सहमकर बोला।

'हां, आपसे ही। आप शायद जानते नहीं, मैं उसका दोस्त हूं।'

इस बार कैलाश का छोटा-सा ललाट सलवटों से सिकुड़ा। कुछ रुककर बोला, 'आप उसे क्यों जानते होंगे! मैं और वह एक साथ बड़े-पले हैं। पर अफसोस यह है कि... वह...वह ऐसा कमीना और डरपोक निकला।'

'पूर्णिमा...' न जाने क्या कहते-कहते मगर इतना ही बोल पाया।

'मेरी बहन है' कैलाश तैश खाकर बोला, 'उसे इतनी दया करने को मैंने तो नहीं कहा। उसने अपने मुंह से कहा, तो मैंने मां से पूछा। मां तो तैयार बैठी थी जैसे. उसे एक दिन घर बुलाया और.. और बाकी सब कुछ क्या आपसे छिपा है? अब और क्या बात बाकी रही?'

'कैलाश जी... आप हमें गलत मत समझें।' मैंने अतिशय विनम्रता बरती, 'यदि हो सके, तो मुझे अपना भी दोस्त समझकर सबकुछ बता दें.. हो सकता है, अभी बात खत्म न हो।'

कैलाश के चेहरे पर कई-कई रेखाएं उलझ पड़ीं। मुझे लगा, अपने अंतस का आवेश प्रकट करने का और कोई तरीका उसके पास नहीं। सहसा वह उठता हुआ बोला, 'मैं चाय को कह आता हूं फिर आपसे बात करूंगा।'

वह रोके भी नहीं रुका। पीछे से समर ने पूछा, 'दफ्तर?'

'छोड़ उसे अभी। यहां रुकना जरूरी है, समर!' मैंने कहकर देखा, कि कैलाश लौट रहा है।

उस दिन दफ्तर की छुट्टी रही। दोपहर को घर पहुंचा, तो हरारत होने लगी। लेटा तो लगा, छाती पर चौकोर पत्थर ढांप दिया है किसी ने। यह भार दिन भर और अकेला लिये पड़ा रहा। लगता था, आज ऐसी दुनिया में हूं जो मेरी थी लेकिन मैंने पहली बार उसे पहचाना है। अपनी इस दुनिया की सीलन से सड़ती-उखड़ती दीवारें सहसा मेरे एकदम करीब आ गयी थीं। रह-रहकर कैलाश से हुई बातचीत कचोटती रही। वह बोलता, थमता और मैं उसे फिर कुरेद डालता। यही करते-करते यह मेरी दुनिया मुझ पर उजागर हुई थी। बस, कैलाश की सारी बातों की एक ही मंजिल थी—पूर्णिमा की जैसे-

लेंगे उसके घर में बिदाई। यह सवाल उसके घर की गो छत से सिर टकराये पड़ा था। उदय अपनी पहलकदमी से अगुली थामकर इसे विदा कराने आया, तो पूरा घर खुल पड़ा उसके स्वागत में। कैलाश के घर का हर पेंच खुल गया, तो मेरा मन अवश छटपटाने लगा। दुःख की बात शायद यह हुई कि मैं उदय का दोस्त होकर भी, यह कहने का सर्व-सुलभ मौका हार आया कि उन्होंने उदय को फांस लिया है। पूर्णिमा के परिवार को कोसना मेरे वश की बात ही नहीं रही। दो महीने अस्पताल में भुगतकर आयी पूर्णिमा की मुक्ति की शर्त किसी को फांसकर ही पूरी होनी थी—इससे क्या फर्क पड़ा, यदि यह कोई और नहीं, मेरा दोस्त उदय था।

यही निर्द्वन्द्व मत था, उदय की मां का। शाम तक कोई नहीं आया तो हिम्मत बटोरकर मैं ही निकल पड़ा। आज मैंने उदय के घर का रुख किया। उसके 'मल्हार' में मिलने की कोई उम्मीद न थी। उदय घर में नहीं था। दरवाजे पर उसकी बहन ने कहा, 'आप बैठो, भाई साहब .वह आ जायेगा।'

कुछ उम्मीद और कुछ थकान के वशीभूत मैं अन्दर आ बैठा। वही कमरा था, वही उदय के भाई सा'ब की आसमान ताकती तस्वीर। नक्काशीदार तिपाई पर बासी अखबार पड़ा था, जिसे मैं अनमना-सा उलटने लगा।

'तुम हो, उदय के दोस्त ?' मैंने गर्दन उठाकर देखा, दरवाजे पर एक अधेड़ औरत थी। उदय की मां होगी, क्षणभर में सोचा मैंने।

'प्रणाम, माताजी।' मैंने तुरत कहा।

'जुग-जुग जियो।' जीने का आशीर्वाद भी इतना अभ्यासी और रूक्ष होता है, ऐसा मेरे सोचने से आगे था। फिर इसके नैरंतर्य में ही वे भीतर चली आयीं और आंगन पर बैठते पूछ डाला, 'भले घर के लगते हो, उस नीच को कुछ कहते नहीं ?'

'जी. ' मैं हकलाकर रह गया। थोड़ी देर बाद हिम्मत बटोरकर बोला, 'सब आपके आगे ही तो हुआ...आपके घर ..!'

'मेरे आगे ! ' वे चिहुंकीं, 'मेरा इन पूतों पर जोर ही कितना है ? मा-बाप को तो तुम सब अपने कमाये का मोहताज समझते हो ! '

मेरे पास कोई सफाई न थी।

वे बोलती गयीं, 'तुम करो, तुम ही तोड़ डालो। हम तो मर गये। पहले दिन-दिन भर घर में घमासान मचाया कि ब्याह करूंगा, तो अपनी उसी मा-रांड

से....और अब आप ही छोड़ आया। हमें कही ठौर नही—कुए मे न खाड मे....तुम भी अपने मा-बाप से यही सलूक करते हो क्या ?'

सवाल की भयानकता से मै सिहर उठा। यह उन सवालों मे से था, जिनका हर उत्तर संदिग्ध होता है। मैने कतराना ही यथेष्ट समझा। तभी सीढ़ियों पर धप-धप सुनाई दी। कुछ पल में ही धमाका-सा हो गया। मैं देखते ही पहचान गया, उदय का आसमान ताकनेवाला, तस्वीर मे देखा भाई साक्षात था। उदय से थोड़ा लंबा, लेकिन ज्यादा काला। उदय की अचीन्ही मोहकता के विपरीत एक अपकर्षक भाव उसके रोम-रोम से टपक रहा था। आते ही उसने दहाड़कर कहा, 'तू हर आये-गये के सामने यह बकवास करते मानेगी नही ? बंधने दे उसे रोगल राड के पल्ले....मुझे बर्दाश्त नही कि ऐरे-गैरे किसी के आगे रोना रोये ।' और मैं मुह बाए देखता रहा, उसने लपककर अपनी मा की कलाई थामकर खीची, 'उठ....उठ यहा से ।'

'छोड....छोड दे, कसाई ! मेरा हाथ छोड ।' उदय की मां हाथ खीचते बुरी तरह चीख पडी ।

'मैं सबकी टांगें तोड दूगा... खाट मे पडा-पडा रोयेगा....इस घर मे वही होगा, जो मेरी मर्जी !' वह बेमतलब ही मेरी तरफ देखकर धमकाता-सा गरजा ।

'भड़ाम'....अहाते मे गली का दरवाजा खुला और उदय प्रकट हो गया ।

'रो लूगा....बेशक रो लूगा....पर तेरी तरह गऊ जैसी कमजोर बीवी की बोटियां नही नोचूगा....राक्षस !' मैं यकीन नही कर पाया, यह उदय बोल रहा था ।

'मां कह दे, इससे । लपर-लपर करेगा, तो मेरे से बुरा कोई नहीं ।' कुछ देर भापता-सा चुप रहकर, उदय का भाई मा से बोला ।

'उदय....चल, मेरे साथ ।' मै तपाक से उठकर उदय के पास गया ।

उदय ने मुझे धकेल ही दिया । भाई की तरफ गुस्से में फुफकारता-सा बोला, 'तेरी असली कमजोरी तू नहीं, मैं जानता हूं । तू पूर्णिमा की खूबसूरती से बचना चाहता है । तू वह भूत है, जो सुदरता से भय खाता है । तुझसे इस दुनिया की कोई सुदरता सहन नहीं होती, क्योंकि तू खुद भीतर-बाहर, हर जगह से भोंडा है, बदसूरत !'

'उदय !' मैंने फिर टोका ।

'दोस्त....तुम ठहर जाओ। तुम इस घर को नहीं समझ सकते। आज मैं इससे अंतिम संवाद कर लेना चाहता हूं।' उदय मेरी तरफ देखकर बोला।

'तू भला, न यह....।' उदय की मां अचानक फुर्ती से उठकर अंदर लपकती-सी बोली, 'पिये जाओ, दोनों मेरा खून पिये जाओ। पर भगवान तो देखता है, सब... जैसी मां की आशीश लोगे, वैसा ही भोगोगे। मैं तो जी ली ...पर तुम भी सुख नहीं पाओगे कभी!'

'निकल जा तू इस घर से निकल जा!' उदय का भाई लड़खड़ाता-सा बोला।

'उदय चल मेरे साथ।' मैंने फिर कहा।

'नहीं दोस्त! जरा ठहरकर देखो, यह है वह जगह जहां तुम्हारा उदय बड़ा होता है। यह मेरा भाई साक्षात् राम जिससे कौशल्या मां की रूह कांपती है, क्योंकि यह कायर उसे पीट सकता है। मुझसे कोई नहीं डरता, क्योंकि मैं पीट नहीं सकता। एक है, जो यह नर्क छोड़कर भाग गया। मैं मैं कहां जाऊं?' बोलते-बोलते उदय की आंखें छलछला आयीं।

मैंने उसके मुंह पर हाथ रखकर, उसे बांहों में भर लिया। दरवाजा सामने था, लेकिन अचानक मेरी नजर कोने में स्नान-घर पर पड़ी। वहां दीवार से सटी हुई, बुरी तरह डरी-सहमी, उदय की बहन खड़ी थी। उसकी आंखें रो-रोकर ही लाल हो चुकी थीं। मेरे कदम एक बार ठिठक गए। अन्दर ही अन्दर कुछ घुमड़कर आया—जिसे मैं उदय की बहन से कहना चाहता था। पर मुझसे कुछ कहते नहीं बना। मैं उदय को धकेलकर बाहर ले आया। घर से बाहर निकलते ही मैंने उदय को मुक्त कर दिया। वह तेजी से पलटा और मेरे देखते-देखते फिर घर में जा घुसा। मैं आशंका से डांवाडोल होने लगा। कुछ फैसला करता, इससे पहले उदय लौट आया! मैंने देखा, उसके कंधे पर वही शान्ति-निकेतनी झोला लटक रहा था, जिसमें एक दिन वह शराब पीने के निमित्त नाजुक-सी गिलासें लेकर आया था। आज झोला भारी दीखता था। मैंने इस बाबत उससे कुछ भी नहीं पूछा, और उसे बांह के साथ भारी झोला झुलाते, लम्बे-लम्बे डगों से बढ़ता देखने लगा।

बाहर सीत रात बनकर घिर चुकी थी। मैं उदय को कहीं सुरे में ले जाना चाहता था। समझ नहीं आता था, उसे किधर ले चलूं!

'सिगरेट पियोगे?' अंधेरे और सुनसान रास्ते पर मैंने उदय से पूछा।

'यह भी यार कहीं सुना है ? अभी आगे भी जीना है।'

'उदय खामोश होकर साथ चलता। मैंने सिगरेट माचिस बढ़ा दी। मेरा हाथ उसके छू गया, लगा कि उसकी काया तप रही है। उसने सिगरेट जलायी। हथेली में दबी तीली की रोशनी में उसका चेहरा रोशन हुआ। तीली फेंककर उसने गहरा कश खींचा। सिगरेट [illegible] हो गयी। उसका चेहरा पत्थर-सा तना था।

'इस कदर तो नहीं, शहर की भीड़ छोड़ चुके। सिर्फ मैं हूँ तुम्हारे साथ। क्या अब खुद को ढीला नहीं छोड़ोगे ?' मैंने कहा।

उदय ने मुँह उठाकर मेरी ओर देख लिया। फिर उखड़ा-सा बोला, 'क्या मैं इस बहते पानी को पार नहीं कर सकता ? मैं बहना नहीं चाहता, दोस्त। प्लीज़, मेरी बात को हल्का मत समझना—अब मैं अपना सबकुछ, सबकुछ बदलना चाहता हूँ—सबकुछ।'

मैं चुप रहा।

वह फिर बोल पड़ा, 'मुझे कोई खिड़की चाहिए, आसमान में खुलती खिड़की। इस मकड़जालों से अटी कोठरी-सी ज़िंदगी को मैं फाड़कर निकल सकूं, ऐसी खिड़की। वर्ना हर रोशनी मुझ तक पहुँचने से पहले ये जाले लील जाएंगे। तुम कुछ मत कहना। माफ करना। मुझे मशवरा नहीं, सिर्फ रास्ता चाहिए, बाहर का रास्ता।'

इस बार मैंने कहा, 'उदय, ज़िंदगी का मायना इतना छोटा नहीं कि फकत एक शादी या मुहब्बत के दांव पर बदल जाये !'

'मायने ? ज़िंदगी के मायने कौन जानता है यहाँ....पहले उसे जानकर तो देखूं। कूड़े के ढेर में बहुत कुछ होकर भी कुछ नहीं होता। मैं अपना कूड़ा झाड़ फेंकना चाहता हूं, ताकि हर चीज़ ठिकाने लगे। तुम इसमें किसी की मदद की पेशकश नहीं करोगे, यही तुम्हारी सबसे बड़ी मदद होगी, दोस्त !' उसने कहा और तेज़ी से मुड़कर जाने लगा।

'उदय....उदय ?' मैंने उसे पुकारा। उसने शायद पलटकर भी नहीं देखा। कुछ देर मैं स्तब्ध खड़ा रहा फिर एक लम्बी सांस लेकर चल पड़ा।

धीमे कदमों से चलकर मैं अकेला शहर लौट रहा था। मेरे कदम जैसे अब भी उदय के निर्णय की ताल पाकर उठ रहे थे। वह अपने चतुर्दिक के टुच्चे और लिजलिजे मकड़जालों को पहचान चुका है, इससे मुझे गहरा सुकून महसूस हुआ। मुझे लगा, मेरे भीतर एक और मुहाना खुल गया है, जिससे एक ठंडा निर्झर मेरे समूचे वजूद को भिगोता बह निकला है। सारा कोलाहल एक

बारगी थम-सा गया। उस नि:शब्द संगीत की प्रतीति लिये मैं चलता रहा.... चलता रहा और इतना कुछ बीत गया।

इन बरसों में बेसब ने क्या-क्या बदला होगा ? बदलने के नाम पर मेरे आस-पास भी बहुत-सी तब्दीलियाँ दीख रही है। यह शहर कुछ और दूर तक पसर गया है। नये रास्ते बने है, कुछ पुराने रास्तों को नये नाम मिले हैं। फैशन बदले हैं। और हम ? हेमत ने ब्याह किया, दो लड़कियों का पिता बन गया। इन बरसों में वह और मोटा होकर प्राय: गोल-मटोल दीखने लगा है। आजकल उस पर शेयर-मार्केट छाया हुआ है। कहते है, जब से वह नये विभाग में तबादला लेकर गया है, चांदी ही चांदी काट रहा है। 'सत्कार' की बैठकबाजी बंद हुए अर्सा बीता। अब किसी की खोज-खबर लेने खुद पहल करनी होती है। इसी से पता चला कि हेमत अपनी बीवी को अक्सर पीट डालता है। वजह है—हेमत की कोई मुहबोली बहन, जिसे वह घर में रखता है।

रामेश्वर के सिर पर सफेदी ने धावा बोल दिया था। वह हर महीने सैलून में घटाभर खर्च कर खिजाब लगवाता है और मूछे तो तंग आकर उसने साफ ही करवा ली थी। एक पुत्र की प्रतीक्षा में वह चार पुत्रियों का पिता बन चुका है। सुना है, भाभी फिर उम्मीद से है। पिछले दिनों वह भाभी को लेकर किसी पहाड़ी वाले बाबाजी के पास गंडा बंधवाने भी गया था। ईश्वर और बाबाजी के अनुग्रह से सम्भव है, इस बार वह उत्तराधिकारी का मुंह देख ले।

समर सरकारी नौकरी छोड़कर, अपने ससुराल वालों के साथ उन के कारोबार में उतर गया था। उसके चेहरे पर खूब रोगन चढ़ आया है। उसे आजकल दुपहिया वाहनों का बेजा शौक है। हर तीसरे महीने उसके नीचे नया दुपहिया मोटर-वाहन होता है। गये दिनों उसके किसी पार्टनर के यहां आयकर विभाग का छापा पड़ा था। लाखों का अघोषित माल निकल आया। मुझे समर ने बताया कि उसे कोई खतरा नहीं—यह मामला व्यापार से अलहदा है। उसने यह भी बताया कि पार्टनर की एक आयकर अधिकारी से ठन गयी थी, इस तरह फालतू हेकड़ी में मारा गया।

और अशोक ! बदली उसकी सीमावर्ती कस्बे में हो गयी थी। पंजाब और पाकिस्तान से लगे कस्बे में वह अकेलेपन, ऊब और अंधाधुंध ऊपरी आमदनी के मिलेजुले असर से पियक्कड़ हो गया था। घरवाले उसकी शादी चाहते थे, वह मना कर रहा था। एक दिन मैं मिलने गया, तो अपने एक दोस्त के साथ क्वार्टर

मे बैठा हथकड़ी पी रहा था। इधर के लोग, जो उधर से आते,
नित-नयी खबरें देने लगे थे। तस्करी से लेकर अवैध हथिया
में उसका नाम दबे-सहमे उठता था। तभी एक दिन वह स
मिली। उदय की तब बहक में कही बात, सच हो निकली। इंदि
उसके ही अंगरक्षकों ने गोलियों से भून डाला। यह उदय के जाने
भर बाद हुआ था। इन्ही दिनों किसी अज्ञात सिलसिले में अ
सीधे यू. पी. के किसी शहर गया हुआ था। वहीं से पुलिस ने सूच
वह हिंदू-सिख दंगों में मारा गया। उसके साथ उसका कोई सिख
दोनों को जिंदा जला डाला गया। बजरिए होटल, जहां वे ठह
का पता करके पुलिस ने इत्तला दी कि हुलिये से खुद सिख-सा लग
सिख के साथ होने के कारण वह दंगाइयों का निशाना बन गया
यह भी खबर दी कि उसकी अधजली लाश का अंतिम-संस्कार
गया है। पुलिस ने बाकायदा मुआवजा चाहने के आवेदन-पत्र भी
थे, लेकिन अशोक के पिता ने उन्हें फाड़कर फेंक दिया।

और मैं? तब से आज दिन तक अगले प्रमोशन की उम्मीद लिये
दफ्तर गया हूं। अपनी एक-एक छुट्टी को अंधे भिखारी की भीख में मि
की तरह पोरों से टटोलता रहता हूं। सोचता हूं, किसी दिन एक म
जमूंगा और जी भरकर लिखना-पढ़ना करूंगा। इन्हीं मसूबों को माप
बीत गये है। आज अचानक उदय ने यह पत्र डालकर मुझे अपनी ही
डाली जैसे....खाली कागज पर उतावल में लिखी-सी उसकी
लिखावट बार-बार पढ़ रहा हूं—

'दोस्त! पत्र पाकर हैरान रह गये न! उन दिन तुमसे मुह चुरा
आया था—इतना समय सिर्फ एक बात समझने-सोचने में ही बिताया
जिसे 'अपना सबकुछ' कहकर बदलने चला था, उसका विस्तार ब
तक जाता है। कोई मेरी फिक्र न करे, क्योंकि मैं सबकी फिक्र करन
करके अपने से आजाद हो गया हूं। वह कविता मुझे कंठस्थ है, जो
तुमसे सुनी थी। इतने दिन सिर्फ अश्कों से मिट्टी सींची, अब यदि हु
खेती के कोनों-खुदरों में अपने लहू की खाद भरूंगा यह आपा तुमसे
चाहता था कि तुम अपने उदय को हरगिज मत भूलना। जब भी कोई
जगमगाहट वाला फानूस कहीं देखो, उम्मीद करना कि इसकी कोई
तुम्हारे उदय ने भी बाटी होगी। बस, इतना ही। तुम्हारा—उदय'

लिफाफे को मैंने फिर उलट-पलट डाला। सिवाय रवानगी डाकघर
अस्पष्ट मुहर के, उदय का कोई अता-पता हाथ नहीं लग रहा!

श्रवण की वापसी

सूरज पालीवाल

बापू की गिरफ्तारी की खबर सुनकर मेरा मन रेत की तरह ढह गया था। चारों ओर किंकर्तव्यविमूढ़ता के गुब्बार उड़-उड़कर मेरे साहस, ज्ञान और कर्तव्य को ताने में दे रहे थे। मेरी यह मजबूरी या कमजोरी है कि ऐसे संकट काल में मेरा संतुलन डगमगा जाता है। और मैं उस वक्त इस स्थिति में कदापि नहीं रहता कि स्वविवेक से अपना निर्णय ले सकूँ। ऐसा ही इस समय भी हो रहा है। यह संकट अब तक के संकटों में सबसे बड़ा, पीड़ादायक और हताहत करने वाला है। बापू की सारी जिन्दगी की कमाई मिट्टी में मिल गई। तिल-तिलकर जमा की गई इज्जत का जाते देख बापू किस तरह सहे होंगे— यह अनुभव बड़ा कष्टकारक था।

चार घण्टे का लम्बा सफर पहली बार इतना बड़ा और भयावह लगा था। एक-एक क्षण हथौड़ा लिये शरीर में कीलें ठोक रहा हो जैसे। स्मृतियाँ जब अपने समय के साथ धोखा देकर पुनः मानस में प्रवेश करती हैं, तब उनका जो रूप होता है, वह इतना सहज नहीं होता कि उसे उसी सहजता के साथ स्वीकारा जा सके। स्मृतियों की आँख मिचौनी कभी इतनी कष्टकारक भी होती होगी, शायद मैंने कभी अनुभव नहीं किया। चेतना के जिन तारों पर उनका घर्षण हो रहा था, अब वे शायद पंगु हो उठे थे। मोटर के साथ आती धूल-भरी हवा और यात्रियों की भीड़-भाड़ से अलग मैं पिछली सीट के एक कोने में दबा सा बैठा रहा। इन्द्रियों की उठा-पटक शरीर को और भी अस्थिर किये थी।

लेकिन पहले की तरह से उठकर खड़ी नहीं हुई और न उनके इर्द-गिर्द मेरे आने की खबर से कोई सरगर्मी ही की थी, बल्कि एक सन्नाटा-सा और बुन गया था, एकाएक। अम्मा की सांसें इस सन्नाटे में स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं। मुझे देखकर सांसें और भी जोर से चढ़ गई थीं।

पास आकर जैसे ही मैं उनके पैर छूने को झुका तो अम्मा फफक पड़ी। मेरे साहस का बांध बहुत कोशिश के बावजूद पहले ही टूट चुका था। अम्मा के गर्म आंसू मेरे शरीर के पोर-पोर में उनके कष्ट की दस्तक-सी दे रहे थे। वे इतना रोईं कि उन्हें और मुझे कहने-सुनने का होश ही नहीं रहा। मेरी स्थिति नदी नाव के सहयात्रियों जैसी थी, जो साथ-साथ जीवन-मरण के कष्टों में बह रहे थे, लेकिन चाहते हुए भी एक-दूसरे की कोई सहायता नहीं कर पा रहे थे।

रात में अम्मा ने खाना तो बनाया, मगर खाया हम दोनों ने ही नहीं। खाना पेट भरने को ही नहीं खाया जाता। यदि ऐसा होता तो आदमी सुख-दुख में कभी भी खा सकता था। खाने का सम्बन्ध शायद मन से है। अम्मा की लाख कोशिश के बावजूद भी मुझसे नहीं खाया गया। इसी वक्त अम्मा ने आंगन में बैठकर बापू की गिरफ्तारी का सारा किस्सा मुझे सुनाया। सुनाने से पहले अम्मा ने गहरी सांस ली—बस और..।

अपनी जिन्दगी में पहली बार बापू ने सरकारी कर्ज लिया था। भूमिहीनों के लिये सरकार द्वारा भैंस खरीदने पर कर्ज मिला था। सरकारी कर्ज पर बापू का विश्वास नहीं था। बहुत कहने पर उनका एक ही उत्तर था—गांव का कर्ज अच्छा, जिसे जैसे-तैसे करके चुका दो, किन्तु सरकारी कर्ज में चपरासी से लेकर अफसर तक पचास खसम। सबको मनाओ, कुछ न कुछ खिलाओ। और कर्ज न चुकाने पर जेल की हवा। गांव में कम से कम इतना नहीं है। गांव वाले को थोड़ी बहुत शर्म भी रहती है। और यह भी ख्याल रहता है कि इस साल नहीं है, तो अगली साल दे देगा। और न भी होने पर फांसी तो है नहीं उसके हाथ में। मगर सरकार, जो चाहे करा दे। यही एकमात्र कारण है, जिस वजह से बापू ने आज तक सरकारी कर्जा नहीं लिया।

तीन हजार रुपये मंजूर हुए थे, बापू के नाम, बहुत दौड़-भाग के बाद। पांच सौ रुपये पहले ही खर्च हो गये—मंजूरी के चक्कर में। एक महीने तक बापू की नींद हराम हो गई थी। रोज जाते ब्लाक। शाम को आकर बापू अफसरों और कर्मचारियों की हरामखोरी पर गालियां बकते और फिर चुपचाप आकाश की ओर आंखें बिछाकर चारपाई पर पड़े रहते। खुली आंखों में हरे-

हरे नोटों की जगह वसूली का अमीन और उसका चपरासी आता। वे डर जाते। नींद भी मुश्किल से आती। बड़बड़ाना उनकी आदत-सी बन गई थी। रुपये मिलने पर बड़े बाबू के आदेशानुसार बापू कल्लू व्यापारी से भैंस ले आये थे। भैंस के सुघड़ पुट्ठे पर जब नम्बर गोदा गया तो बापू उस पीड़ा से चीख पड़े थे। उन्हें लगा कि यह भैंस के पुट्ठे पर नहीं—बल्कि उनकी पीठ पर लोहे की गर्म मशीन से दागा जा रहा है—'सरकारी कर्जदार।' भैंस लेकर बापू कई दिन तक उदास से रहे थे।

एक-एक दिन गुजरता गया–एक साल भी खत्म होने को आया किन्तु, बापू के पास कभी इतना पैसा इकट्ठा नहीं हुआ कि वे एक किश्त भी जमा कर दें। दूध बिकता कम, मुफ्त में ज्यादा जाता. गरीब आदमी किसी से मना भी तो नहीं कर सकता। गाव का रहना-सहना कब किससे काम पड़ जाये। और फिर बी डी ओ का चपरासी ले जाता और कभी बड़े बाबू। न देने पर किस्त की धमकी। बापू का मन ऐसी स्थिति में जल उठता, लेकिन कह नहीं पाते। अम्मा भी कहती तो धीरे से कहते—मुझे ही कौन अच्छा लगता है ऐसा करना, लेकिन मजबूर आदमी अपनी मर्जी से काम करे तो मजबूरी फिर क्या रही। अपने बेटे के होते हुए घी दूसरे खायें—सब भाग्य का दोष है। कहते हुए बापू की आखें भारी हो जाती और होंठ कांपने से लगते। अम्मा इस स्थिति को देखकर चुप हो काम करने लग जाती। बापू बहुत देर तक आँखें खोले एकटक देखते रहते। चेहरे की बनावट कुछ अजीब-सी हो जाती।

अम्मा की चुप्पी न आंधी से पहले की तरह थी और न समुद्र की तरह बल्कि एक इंसान की संवेदनशील चुप्पी थी। उनका चुप मन अंदर ही अंदर टूट-सा जाता। घर में पैसा कहां है। एक चीज भी अब नहीं बचा, जिसे बेचकर कुछ काम चल सके। बापू जितना कमाते, उतना घर खर्च के लिये भी पूरा नहीं था। ऊपर से बापू की बीमारी। गरीबी बीमारी की जड़ होती है और यही लाइलाज बीमारी बापू को है।

अम्मा ने यह भी बताया कि जाते समय बापू यह भी कह रहे थे कि—मैं जानता था कि यह स्थिति एक दिन आयेगी, इसी से बचना चाहता था जिससे बुढ़ापे में इज्जत बची रह सके। लेकिन तुम लोग कहां माने। अम्मा की आवाज में बापू का दर्द आ गया था। आदमी जिसे जिन्दगी भर स्वीकार न करे, अंत में वही स्वीकार करना पड़े तो, वह किस कदर अंदर तक टूट जाता है, वही जानता है। ऐसे में जिन्दगी अचल हो जाती है। जिन्दगी का रहस्य भी तो यही है, जिसे हम चाहते हैं यदि वही मिल जाये तो फिर

जिन्दगी क्या बाजीगर का मन हो जाती है—जो चाहो सो पाओ। यह बाजीगरी जिन्दगी में नहीं चल पाती। इसलिये बापू ने जो चाहा, वह उन्हें नहीं मिला और जो मिला, वह इस कदर विपरीत था कि उसे पाकर उनका मन और भी दुःखी हो उठता।

इकलौता बेटा भी नालायक निकले, तो जिन्दगी का रहा-सहा आसरा भी खत्म हो जाता है। मेरी नौकरी न लगने के कारण बापू के कष्ट और बढ़ गये थे—ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु मैं चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सका। इसी कारण बापू की यह मान्यता और भी प्रबल हो गई कि मैं कुछ नहीं करना चाहता। उनका यह कथन एक भारतीय बाप की पीड़ा की अभिव्यक्ति थी और मेरी सफाई मेरी मजबूरी के अलावा और कुछ भी नहीं!

नौकरी न मिल पाने के कारण घर की जो हालत है, उसे अम्मा के लाख छिपाने के बावजूद मैं अच्छी तरह जानता हूं। अम्मा की चिथड़े-चिथड़े धोती, पिछली बार बुआ आयी थी, तब दे गई थी। अम्मा चाहकर भी मना नहीं कर सकी थीं। बुआ समझती थीं कि अम्मा को यह अच्छा नहीं लग रहा, लेकिन अच्छे लगने से ज्यादा आवश्यकता की अहमियत है। अच्छी तो बहुत बातें नहीं लगतीं। लेकिन जिंदगी जीने के लिये उन्हें भी स्वीकारा जाता है। अम्मा चूंकि एक सामान्य औरत हैं, मतलब यह कि, हर हाल में जीने वाली, इसलिये वे चुप हो सब कुछ सह लेती हैं। यही कारण है कि बाहर से शायद ही कभी वे बीमार रही हों, परन्तु मन से शायद ही कभी ठीक। बाहर की स्थिति को हर कोई देख-समझ सकता है, मन को कौन समझे। अम्मा का मन है कि दर्द का संग्रहालय। जब भी कोई नया दर्द मिला—रोई नहीं, चीखी नहीं, किसी से कुछ कहा नहीं, बस आंखें गीली हुई और पी लिया सब कुछ। कहीं बापू को न मालूम पड़ जाय और कहीं नम आंखों में मेरी आंखें न समा जायें, इसलिये सब कुछ चुपचाप चलता रहा।

शहर में मेरे पास खबर भेजते समय अम्मा ने यह भी कहला भेजा था कि मैं चाचा को साथ ले आऊं और यदि वे न आयें तो उनसे कुछ रुपया उधार ले आऊं। चाचा ने न रुपये दिये और न वे आये। अम्मा ने सिर्फ पूछा भर था कि उन्होंने क्या कहा है। मेरे मना करने की कहने पर अम्मा के होंठ सिर्फ थरथराये थे। निश्चित ही चाचा का यह व्यवहार अम्मा को बुरा लगा होगा। जिस भाई को बापू ने अपने बेटे की तरह पाला और अम्मा ने दुलारा, आज वही गैरों जैसा व्यवहार करे तो बुरा लगना स्वाभाविक ही है। आज

तब अम्मा ने इतनी बुरी बातें सही है कि अब ऐसी बातें उन पर कोई असर नहीं करतीं। सिवाय इसके कि कुछ क्षण को वे और उदासी के सागर में डूब जाती हैं। और फिर धीरे-धीरे किनारा पा लेती हैं।

अगारे की मानिंद जलती आंखें अम्मा ने ऊपर उठायीं और बताया कि एक हजार रुपये जो—तुम्हारी फौज की नौकरी के लिए रामनगला के हवलदार को दिये थे, उसने नहीं लौटाये—अभी तक। कई बार बापू के कहने के बाद भी। रुपये न दे पाने के कारण पुजारी भैंस खोल ले गया है। अम्मा की पलकें नीची हो गईं—रुआं सी।

हवलदार रुपये दे दे तो कुछ काम संभव है। लेकिन जब बापू के कहने पर ही नहीं दिये तो मेरे कहने से कैसे दे देगा। गांव में रुपया उसी का वसूल होता है, जिस पर चार छह लठैत हों और हो पुलिस का संरक्षण। बापू में ये दोनों गुण नहीं हैं, इसलिये पैसा वसूल नहीं हुआ। अत बापू संतोष करके बैठ गये। निर्बल आदमी संतोष के अलावा कर भी क्या सकता है। निर्बल हृदय संतोष की उर्वर भूमि होता है।

अम्मा ने गांव में और लोगों से भी रुपये उधार मांगे थे, लेकिन जिस पर कूड़ भी खेती न हो और खूंट पर एक भी जानवर, उसे रुपये तो क्या कफन भी नहीं मिलता—आजकल। अब वह जमाना नहीं, जिसमें एक आदमी दूसरे की सहायता करे।

गांव में रुपये न मिलने देख मैं रामनगला गया। यह जानते हुए भी कि वहां से खाली हाथ आना पड़ेगा। आदमी संकट में परखे हुए को भी परखने की कोशिश करता है। हवलदार के पिता ने मूंछों पर हाथ फेरते हुए साफ कह दिया कि लेन-देन के मामले में वही जानें, न तो मुझे—तुमने दिये और न मुझे कुछ मालूम। वापस आ गया। लौटते समय मुझे लगा कि मेरे पांव भी शायद वहीं रह गये हैं। आंखों के आगे तिलूले नाच रहे थे।

बापू अभी जिला जेल नहीं भेजे गये थे। कुछ आमदनी के चक्कर में उन्हें थाने में ही रख छोड़ा था। मैं अपनी सारी हिम्मत बटोरकर सुबह थाने गया। अम्मा मेरे कहने के बाद भी नहीं आयीं। शायद वे इस दृश्य को बर्दाश्त नहीं कर पातीं। थाने के अंदर हवालात के सींखचों में बंद बापू। गर्दन घुटनों के अंदर, सिर के बाल अस्त-व्यस्त, कंधों पर फटी कमीज और घुटनों तक धोती। बापू की इस अवस्था को देखकर मैं कांप उठा था। हिम्मत जुटा-कर मैंने कुछ कहना चाहा, मगर गला इतना भारी हो गया था कि शब्द

बाहर निकल ही नहीं पा रहे थे। अचानक कुछ हवा में गूंज उठा—बापू ने गर्दन उठायी। सूने चेहरे पर कुछ तरंगित हुआ। सफेद दाढ़ी में छिपी काली आंखें भीग गईं। माथे की झुर्रियां और गहरी हो गईं। बापू टकटकी बांधे मुझे देखते रहे। यकायक अंदर से मजबूत हथकड़ी में जकड़े हाथ बाहर आने को आतुर हो उठे, लोहे के कड़ों से थोड़ी निकली अंगुलियां कुछ पाने को लपलपा उठीं। मैं कुछ झुका तो मेरी आंखों से दो बूंदें टपक पड़ीं। बापू की आंखें गीली तो थीं, मगर आंसू बाहर नहीं निकल पा रहे थे। कांपते होंठों से बापू ने अम्मा का हाल पूछा था और फिर चाचा के संदर्भ में। पूरी बात वे कह नहीं पाये थे कि बीच में ही उनकी आंखें बह चलीं। स्थिति की भयावहता को मैं समझ रहा था। लेकिन ऐसे समझने का क्या अर्थ, जिससे समस्या का कोई समाधान ही न निकले।

बापू के थरथराते होंठ कुछ कहना चाह रहे थे....। ध्वनिहीन शब्द कानों में नहीं, मन में सुनाई दे रहे थे। लेकिन एक बेरोजगार बेटा ऐसे में क्या करे—यह समस्या मेरे सामने थी। अचानक मुझे लगा कि सरकारी कर्ज का दाग मेरे पुट्ठे पर नहीं, बल्कि मेरे शरीर के एक-एक हिस्से में दागा जा रहा है। और हथकड़ी बापू के हाथों में नहीं, मेरे अस्तित्व को जकड़ गई है। मेरी संवेदना हवालात के सींखचों में कैद हो गई। शहर भेजते समय बापू के ये शब्द आज पहली बार कितने थोथे लग रहे थे—'जिस बाप पर जवान बेटा हो उसे किसी बात की चिंता नहीं रहती।' और बचपन में मुझे इतना आज्ञाकारी बनने की शिक्षा देना कि मैं उनकी इतनी सेवा करूं कि उनकी जिंदगी के सारे घाव धो डालूं। तभी वे अम्मा से लाड में भरकर कहा करते— देखना मेरा बेटा श्रवणकुमार बनेगा—एक दिन। और फिर लगातार चूमते रहते—गोदी में बैठाकर।

बापू का वह आत्मविश्वास कितना खोखला था। खोखले विश्वासों और रेत-सम्बन्धों की दुनिया में खड़े बापू आज अपने को अकेला और असहाय अनुभव कर रहे हैं। यही अहसास... बापू की आँखें बरस रही हैं।

और उनका श्रवण असहाय हो वापस लौट रहा है—बापू के विश्वास की अर्थी उसके कंधे पर नहीं, सिर पर है और अम्मा की ममता मन के अंदर जमे हिमखंड को पिघला रही है। डग-डग करती जमीन उसके भारी पैरों को सहते हुए अनमना रही है। यह निरीह स्थिति....। श्रवण जाते समय दशरथ से अपने प्यासे मां-बाप को पानी पिलाने को कह गया था, लेकिन बापू के विश्वासों का श्रवण इस स्थिति में भी नहीं है—आज।

नाटक

श्याम जागिड

नाटक कैसा रहा, कलाकारों ने अपना रोल ठीक से किया या नहीं, मुझे कुछ भी नहीं मालूम। शो खत्म होने के बाद जब दर्शकों ने मंच पर चढ़कर बधाई देना शुरू किया, तो लगा नाटक ठीक ही चला गया है। कालेज के विद्यार्थी और साथी मेरे निर्देशन की प्रशंसा कर रहे थे। लेकिन मैं केवल हाथ जोड़े खड़ा था। कुर्सियों की धप्-धप् और दर्शकों की समवेत हल-चल से रंगकर्मी के लिए हॉल में जो एक विभोर कर देने वाली पुलक भर जाती है, उस पुलक ने एक क्षण के लिए मुझे वातावरण से जोड़ा। पर दूसरे ही क्षण मैं उस नाटक में फिर खो गया जो प्रोग्राम शुरू होने से पूर्व थियेटर के बाहर शुरू हो गया था। ज्योंही मन्त्री जी ने परिसर में प्रवेश किया, ठीक उसी समय हॉल के सामने बने फव्वारे के पास हल्का लाठी-चार्ज हुआ। पुलिस वाले भीड़ को धकियाते हुए इधर-उधर भागे और उसे पकड़ लिया। वह विकास ही था जिसे पुलिस ने पकड़ा। मैं ऊपर की मंजिल पर खड़ा यह सब देख रहा था....मेरी [illegible] विकास ही था।

दबोचने के [illegible] बुरी तरह पीटा, जैसे [illegible] होक[illegible] धर [illegible]

[illegible] की [illegible] दो [illegible]

[illegible] प्रार्थना करते हुए [illegible] नाटक के।

इस समय तू मेरे सामने विकास की ओर था। मेरा मन-मस्तिष्क उस ओर का पीछा कर रहा था, जिसमें पुलिस ने [illegible] में लगी थी। उसके बाद मंच पर [illegible] का [illegible] हुआ। [illegible] पर उसका [illegible] हुआ। नाटक शुरू हुआ और समाप्त भी हो गया। पर मैं अभी तक उसी [illegible] के पीछे था।

इसे पुलिस ने इतनी भीड़ में कैसे [illegible] निकाला? उसने [illegible] भी [illegible] की थी। [illegible] था आज दिन में [illegible]। [illegible] है उसका मंत्री पर हमला करने का विचार हो। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह मंत्री से बहुत दूर था, फिर न कोई [illegible] की आवाज हुई न कोई [illegible], फिर भी वह ऐसी भीड़ में पुलिस की नजर में पड़ गया—आश्चर्य है।

यहाँ थियेटर में आने से पहले शायद वो वह मुझे बाहर सड़क पर मिला था। मैंने केवल [illegible] अंदाज से उससे पूछ लिया, 'कैसे हो विकास?' पर उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं हुई। वह एक अजनबी की तरह मेरे पास से निकल गया। मैं जानता हूँ वह मुझ से नाराज था। कल जब मेरे घर आया तब बात ही कुछ ऐसी हुई कि वह बिना कुछ बोले चला गया था। दीप्ति भी [illegible] थी [illegible] वह सब देखती रही, वह चाहती थी, मैं कुछ कहूँ, पर मैं अपने सिद्धांत-प्रिय स्वभाव के हाथों विवश था। मैं चाहते हुए भी उसकी सहायता नहीं कर सका....और अब मेरी स्थिति उस भयातुर पक्षी जैसी हो रही है, जिसके बच्चे को बाज उठा ले जाता है और वह दूर-दूर उड़ता हुआ चीं-चीं करता रहता जाता है और मैं भी क्रंदन कर रहा हूँ, पर अंदर ही अंदर। हालांकि वह मेरा कोई नहीं था, पर न जाने क्यों अपना-अपना-सा लगने लगा था।

पहली बार वह इसी थियेटर के ऊपर, कार्यालय में मिला था...यही कोई.... पंद्रह-सोलह दिन हुए होंगे। प्रायः देर रात तक हम थियेटर में काम करते। उस दिन भी—रिहर्सल खत्म होते-होते बारह साढ़े बारह का समय हो गया था। रिहर्सल के बाद सभी कलाकार चले गये थे, लेकिन मैं नाटक के प्रारंभिक भाग पर काम करने आफिस में रुक गया था।

मेरा नाटक (यह गुलिस्तां हमारा) बंधुआ मजदूरों की दयनीय स्थिति और उत्पीड़न को फोकस करता है। पहला दृश्य ईश-वंदना का है। इसमें बंधुआ मजदूरों को अपनी झोंपड़ियों के बाहर बैठ कर प्रार्थना करते हुए दिखाया

जाता है। लेकिन आज रिहर्सल करते समय एकाएक मुझे लगा इस सीन में परिवर्तन अपेक्षित है। यदि विषय-वस्तु के अनुरूप इसे मोड़ दिया जाये तो बात और अधिक स्पष्ट होगी और मैंने परिवर्तन कर दिया। ऑफिस में बैठा मैं इसी परिवर्तन पर काम कर रहा था।

बधुआ मजदूर ईश-प्रार्थना कर रहे हैं। झूम झूम कर गा रहे हैं। उसी समय मालिक दमनसिंह का मुसाहब उनमें प्रवेश करता है। वह बधुआ मजदूरों को प्रार्थना करने से रोक देता है, 'चोप! भगवान की प्रार्थना कोई नहीं करेगा। तुम्हारे भगवान केवल दमनसिंह जी हैं। वे ही तुम्हारे विधाता हैं। उन्हीं की प्रार्थना करो हरामजादो... उस ऊपर वाले से तुम्हें क्या लेना-देना। उठो (डाँटते हुए) और गाओ यह धुन। (झोले से जूता निकालते हुए)

देखो यह मालिक दमनसिंह जी का जूता है—कितना सुन्दर है यह। (सभी हाथ से सिर खुजाते हैं) इसकी पूजा करो चलो इसके सामने हाथ जोड़ो। सब उठो और मेरे साथ गाओ जय जूता तेरी जय हो... मैं, सिपाही के कहने (सिपाही, जो बाद में 'जूता वंदना' का विरोध करता और बीस कोड़ों की सजा पायेगा)... तू नहीं उठा? उठता है कि नहीं? उठ ... गा, सब गाओ जय जूता तेरी जय हो। जबर जूता तेरी जय हो। हम किंकर तू प्रभु। तू मालिक हम दास। [illegible] कुछ नहीं आस जय जूता तेरी जय हो। जबर जूता

मैं इस जूता वंदना को लिख रहा था. रखकर तुम्हें शीश पर, हम हो गये निहाल। उम्र तक न करें कभी जय तुम बड़ा कपाल जय जूता... कपाल के स्थान पर कृपाल कर या कपाल ही रहने दूँ। दोनों शब्द विपरीतार्थी हैं, पर पंक्ति में दोनों ही अपने-अपने सरोकारों के लिए, अपनी सार्थकता इंगित करते हैं। इसी उधेड़बुन में मैं सिगरेट पर सिगरेट फूंक रहा था। कभी कभी एक शब्द भी पंक्ति में उपस्थित होने की अच्छी कीमत लेता है।

उस वक्त वहाँ कोई आवाज नहीं थी। सन्नाटे में डूबी पूरी बिल्डिंग में केवल मैं ही अकेला बैठा कागजों को पलट रहा था। इसी समय सामने खड़े स्टेज पार्टीशन के उस पार पट की आवाज हुई, जैसे किसी का जूता फर्श पर लगा हो। उधर देखा—कुछ नहीं था। शंका तो हुई, पर मैंने नकार दिया और वापस टेबिल पर झुक गया। लेकिन थोड़ी देर बाद फिर वही आवाज दो-तीन बार हुई, जैसे कोई अपने पीटी-शू फर्श पर बजा रहा हो। कमरे में किसी के होने का सवाल ही नहीं उठता। सभी कलाकार मेरे सामने ही तो गये हैं—सोचता हुआ मैं अपने आपको आश्वस्त करने के लिए उठा। हालांकि मेरी धड़कनें

अचानक बढ़ गयी थी। फिर भी मैं ऊपर गया। पर कदम बढ़ा कर जब पार्टीशन के उस तरफ देखा, तो सन्न रह गया। एक युवक कुर्सी पर आराम की मुद्रा में पसरा मेरी ओर देख रहा था। उसने हल्के नीले रंग की पुरानी पैंट और जरसी पहन रखी थी। उसके पैरों में फटे-पुराने जुराब और पीटी-शू थे। दुबला पतला बदन और चेहरे पर दाढ़ी मूछें। उसकी चमकती आँखें लगातार मुझे देख रही थीं।

उसके अपलक देखते रहने से मैं आतंकित हो गया क्योंकि वह बिना हिले-डुले खुली आँखों वाले शव की तरह देख रहा था। क्या यह किसी का शव है—मेरे जहन में कौंधा। शव की कल्पना मात्र से मैं एकदम घबरा गया। साय-साय करती कॉलिज बिल्डिंग, कमरे में किसी अजनबी की लाश का पाया जाना, बेवक्त मेरी उपस्थिति, ऐसी बहुत-सी बातें एक साथ मेरे दिमाग में उभर आयीं। हठात् आये इस संकट से मैं सभीत खड़ा रह गया और मेरी जीभ तालू से चिपक गयी।

लेकिन तभी वह बोला, 'घबराइये नहीं सर, मैं आदमी हूं।'

हालांकि वह बोल गया था। पर मैं उसी तरह भयभीत खड़ा रहा।

'आप तो एकदम डर गये....क्या आपने कभी आदमी नहीं देखा।' उसने एक हाथ उठाकर मन्द स्मित के साथ कहा।

'तुम कौन हो?' मैंने साहस बटोर कर पूछा।

'मैं आदमी हू, इस देश का नागरिक।'

'वह तो ठीक है... पर तुम हो कौन? यहां क्या कर रहे हो?' मैंने विशेष साहस जुटा कर ऊची आवाज में कहा।

'सर, ऐसा है कि मैं एक पल मे नहीं बता सकता कि मैं कौन हूं—ठीक उस तरह, जैसे आप नहीं बता सकते कि आप कौन हैं, फिलहाल सीधा-सा उत्तर मेरे पास यही है कि मैं एक भारतवासी हूं और मेरे पीछे पुलिस है।' उसका स्वर बहुत ही संयत और सधा हुआ था।

पुलिस दल द्वारा पीछा किये जाने का जिक्र जितना सहजता से उसने किया, मैं सुनकर उतना ही असहज हो गया। पूरे शरीर में एक कांपती-सी लहर दौड़ गयी।

'तो तुम यहां नहीं रह सकते...चलो यहां से...निकलो बाहर...' मैंने कहा और साथ ही अपने कांपते हाथ से दरवाजे की तरफ इशारा भी किया। मेरी

आवाज मे एक उधार ली हुई-सी बुलदी थी। [illegible] हुआ। वह उसी तरह कुर्सी पर निश्चल और शात बैठा रहा। [illegible] मुस्कराया। शायद वह मेरी बनावटी हिम्मत भाप गया था। इस अनपेक्षित व्यवहार से मैं ठगा-सा खडा उसे देखता रह गया। सीमाएँ तोडता उसके सर्द व्यवहार का आतक मेरे आस-पास मडराने लगा। गहराते आतक से उबरने के लिए मैंने उसे पुलिस बुलाने की धमकी दी।

पुलिस की धमकी सुन वह तुरन्त खडा हो गया। अपनी जरसी की चैन खोली। फिर दाहिने हाथ से उसने अन्दर रखे पिस्तौल को बाहर निकाल लिया, 'मैं आपको यहा से जाने ही नही दूगा, बताइये पुलिस कैसे आयेगी ?' —उसने निरुद्वेग लय मे कहा। उसके होठो पर अब भी एक रहस्यमयी मुस्कान चिपकी हुई थी, 'मै कोई नाटक नही कर रहा यह पिस्टल असली है और लोडेड भी यह देखिए और उसने एक झटके मे पिस्तौल खोल कर उसका चेम्बर दिखाया। छ पीली-पीली टोपिया मुझे साफ दिखाई दी। ऐसी विचित्र परिस्थिति मे पिस्तौल देखने का मेरा यह पहला अनुभव था।

कुछ सोचते हुए उसने पिस्तौल का खुला चेम्बर खट से बन्द कर लिया फिर वापस पॉकेट के हवाले करते हुए बोला, 'पर मैं ऐसा नही करूगा, क्योंकि मैं जानता हू कि आप पुलिस को फोन नही करेगे।'

उसके पिस्तौल निकालने, खोलने और बन्द कर वापस रखने के क्रिया-व्यापार से मेरे अन्दर घनीभूत होता भय सहसा विलुप्त हो गया। उसके दृढ और आस्थापूर्ण व्यवहार से मुझे विश्वास हो गया कि वह नाहक ही उलझने वाला कोई चलतू अपराधी नही है। साथ मे उसकी बातो से यह भी मालूम हो गया कि वह ठीक-ठाक पढा-लिखा भी है।

'देखो, तुम जानते हो मै एक अध्यापक हू। तुम चाहे कुछ भी करके भागे हो, पर तोहमत मेरे माथे मढने पर क्यो तुले हो—तुम कही और जाकर छुप जाओ', मैंने कहा।

'सर, मै तीन दिन से इसी कैम्पस मे हू. रात को यही सोता हू। क्या आपको आभास हुआ ? फिर रात भर यदि और रह लूगा तो कौन फरक पड जायेगा। हा, कल से यह जगह छोड दूगा। वैसे आप न भी देखते तो भी एक स्थान पर लगातार नही रुकता.. प्लीज सर।'

मुझे आज भी आश्चर्य है कि उस दिन मैं उसके वाग्जाल मे क्यो फस गया। न चाहते हुए भी उसने मेरी स्वीकृति ले ली। मै नाटक के काम को ज्यो-त्यो

छोड़ तुरन्त ही यहां से घर चला आया था। आते समय उसने मुझे इस तरह विदा किया, गोया कोई बहुत नजदीकी व्यक्ति रहा हो, 'ठीक है सर, आप बाहर ताला लगा दीजिए मैं उस खिड़की से जो बरामदे में खुलती है, तड़के ही निकल जाऊंगा...

नीचे उतर कर मैंने स्कूटर स्टार्ट किया और कैम्पस से बाहर आ गया। लेकिन ज्यों ही मैंने कैम्पस छोड़ा एक अजीब तरह के भय ने मुझे गिरफ्त में ले लिया। ऐसा भय जो स्वय की किंचित-सी चूक से शंकाओं की शह पर अन्दर ही अन्दर बड़ा हो जाता है और चेतना में एक जहरीली गैस की तरह फैलने लगता है। ज्यों-ज्यों मैं कैम्पस से दूर जा रहा था, यह उतनी ही तेजी से मुझे जकड़ रहा था...

...और घर पहुंचने के बाद तो मुझे महसूस होने लगा शायद मैं ऐसा घोखे भरा समझौता कर आया हूं। जिसके दुष्परिणामों को मेरा जेहन बरदाश्त नहीं कर सकेगा। एक तपिश भरी बेचैनी पूरे शरीर में उपद्रव-सा मचाने लगी। मैं बार-बार उठकर पानी पीता रहा—सिगरेट फूकता रहा, पर नींद का कहीं नाम नहीं था। आने वाला हर क्षण मुझे खतरे की चेतावनी दे रहा था... तुम भयंकर गलती कर आये हो। यदि संभावित घटित हो गया तो तुम कहीं के नहीं रहोगे। तुमने उसे वहां रुकने की इजाजत क्यों दी? ऐसा मैं अपने आप से ही सवाल कर रहा था—ऐसा भी शराफत का क्या ठेका, जो खुद को ही मारी पड़े न जाने उसने कौन-सा जुर्म किया हुआ है.. वह कोई खूखार डाकू भी तो हो सकता है? डाकू को शरण देने का जुर्म जानते हो? यू बातों के लच्छे फैंकने में तो बहुत से अपराधी माहिर होते हैं—हो सकता है रात को ही पुलिस को कोई सुराग मिल जाये. यदि थियेटर की तलाशी ली तो तुम्हें जरूर जाना होगा. थियेटर की चाबी भी तुम्हारे ही तो पास है? तुम सीधे-सीधे फसोगे. तुम्हारे फस जाने के बाद क्या वह तुम्हें बचा-येगा...? हो सकता है वह यह रहस्य फिर कभी पुलिस को उगल दे...

अभी पुलिस को सूचित कर देना चाहिए—भलाई इसी में है। मैंने सोचा पर फोन करने का विचार बनते ही उसका चेहरा आंखों में घूम जाता—शांत और विश्वस्त। न जाने बेचारा क्यों मारा-मारा फिर रहा है।
तो वहां से निकल ही जायेगा...पर न गया तो?

ऐसे बहुत से प्रश्न एक साथ मेरे दिमाग में र
से जुड़ी संभावित परिणतियां अं

सूर्योदय से पहले मुझे नींद आयी।

नहीं सकता। पर सुबह करीब आठ बजे दीप्ति ने मुझे जगाया। बोली, 'प्रिंसी-पल साब का फोन था, आपको अभी-अभी बुलाया है।'

'अभी .. क्यों ?

'मालूम नहीं. कह रहे थे, अभी भेज दें।'

क्या काम हो सकता है ? मैंने उठकर उन्हें फोन मिलाया। पूछा तो बोले, 'यहां डी एस पी साब आपका इंतजार कर रहे हैं,' सुनकर मैं धक रह गया। साब ने आगे और भी कुछ कहा होगा, पर मुझे कुछ भी सुनाई नहीं दिया। मेरे दिल की धड़कनें इस कदर जोरों से बजने लगी थीं, मुझे लगा, पास खड़ी दीप्ति भी उन्हें सुन रही है। मेरे चेहरे की ओर देखकर उसने पूछ भी लिया, 'क्यों ! कोई खास बात है ?'

मुझे याद नहीं उसे क्या जवाब दिया, पर इतना जरूर याद है कि मैं किसी तरह जल्दी से तैयार होकर जब स्कूटर स्टार्ट करने लगा तो वह स्टार्ट नहीं हुआ। वह क्यों स्टार्ट नहीं हो रहा है, यह देखने की फुरसत मुझे नहीं थी। शायद मैं दीप्ति के किसी भी संभावित प्रश्न से बचना चाहता था। अतः स्कूटर को ज्यों-का-त्यों छोड़ मैं ऑटो के लिए चौराहे की ओर चल दिया।

साहब के बंगले पर पहुंचकर देखा, बाहर पुलिस की जीप खड़ी है। दो-तीन सिपाही जीप में थे और एक डंडा लिये जीप के बाहर खड़ा था। मेरे प्रवेश करते ही बाहर खड़ा सिपाही मुझे घूरने लगा। पर उसकी ओर से ध्यान हटाकर मैं तेजी से जीप को पार कर गया। अन्दर साहब के ड्राइंग रूम में दो-पुलिस अधिकारी मेरे इंतजार में बैठे थे। प्रवेश के साथ मैंने नमस्कार किया। मुझे लगा जैसे पूरे शरीर के साथ ही खून पैरों में उतर आया है। मेरा हलक सूख गया और गले में कांटे से चुभने लगे। मैंने साहब की ओर देखा, वे मुस्करा रहे थे, 'आप ही [illegible] भरत मिश्रा'। उन्होंने मेरा परिचय दिया। दोनों [illegible] से मुझसे हाथ मिलाया। इसके बाद मैं [illegible] दिल में [illegible] पी के बोलने का [illegible] बोले, 'मिश्रा [illegible] चन हो गया है, [illegible] पधारे हैं, सो आप [illegible] दें।'

[illegible] जेब में ही थी पर [illegible] चाबी तो घर पर छूट

नहीं सकता। पर सुबह करीब आठ बजे दीप्ति ने मुझे जगाया। बोली, 'प्रिंसीपल साब का फोन था, आपको अभी-अभी बुलाया है।'

'अभी . क्यों ?

'मालूम नहीं   कह रहे थे, अभी भेज दें।'

क्या काम हो सकता है ? मैंने उठकर उन्हें फोन मिलाया। पूछा तो बोले, 'यहां डी एस पी साब आपका इन्तजार कर रहे हैं,' सुनकर मैं धक रह गया। साब ने आगे और भी कुछ कहा होगा, पर मुझे कुछ भी सुनाई नहीं दिया। मेरे दिल की धड़कनें इस कदर जोरों से बजने लगी थीं, मुझे लगा, पास खड़ी दीप्ति भी उन्हें सुन रही है। मेरे चेहरे की ओर देखकर उसने पूछ भी लिया, 'क्यों ! कोई खास बात है ?'

मुझे याद नहीं उसे क्या जवाब दिया, पर इतना जरूर याद है कि मैं किसी तरह जल्दी में तैयार होकर जब स्कूटर स्टार्ट करने लगा तो वह स्टार्ट नहीं हुआ। वह क्यों स्टार्ट नहीं हो रहा है, यह देखने की फुरसत मुझे नहीं थी। शायद मैं दीप्ति के किसी भी सम्भावित प्रश्न से बचना चाहता था। अत स्कूटर को ज्यों-का-त्यों छोड़ मैं ऑटो के लिए चौराहे की ओर चल दिया।

साहब के बंगले पर पहुंचकर देखा, बाहर पुलिस की जीप खड़ी है। दो-तीन सिपाही जीप में थे और एक डंडा लिये जीप के बाहर खड़ा था। मेरे प्रवेश करते ही बाहर खड़ा सिपाही मुझे घूरने लगा। पर उसकी ओर से ध्यान हटाकर मैं तेजी से जीप को पार कर गया। अन्दर साहब के ड्राइंग रूम में दो-पुलिस अधिकारी मेरे इन्तजार में बैठे थे। प्रवेश के साथ मैंने नमस्कार किया। मुझे लगा जैसे पूरे शरीर के साथ ही खून पैरों में उतर आया है। मेरा हलक सूख गया और गले में कांटे से चुभने लगे। मैंने साहब की ओर देखा, वे मुस्करा रहे थे, 'आप ही हैं मि   भरत मिश्रा'। उन्होंने मेरा परिचय दिया। दोनों अधिकारियों ने बारी-बारी से मुझसे हाथ मिलाया। इसके बाद मैं लपककर सोफे में धंस गया। धड़कते दिल से मैं डी एस पी के बोलने का इन्तजार करने लगा। पर उनकी जगह प्रिंसिपल साहब ही बोले, 'मिश्रा जी हमारे एन्युअल फक्शन के लिए मन्त्री जी का प्रोग्राम निश्चित हो गया है, इसलिए आप लोग सिक्योरिटी सम्बन्धी इन्तजामों पर पधारे हैं, सो आप इन्हें पूरे प्रोग्राम की कॉपी दे दें और थियेटर भी दिखा दें।'

मैंने पैंट की जेब पर हाथ मारा। थियेटर की चाबी मेरी जेब में ही थी पर हाथ मारने के साथ ही मेरे मुंह से निकला 'ओ सॉरी, चाबी तो घर पर छूट गयी है   दोपहर को देखें तो ठीक रहेगा।

वे लोग आसानी से मान गये। मैंने राहत की सांस ली। लौटते वक्त मैं त्रिशिपुर के बंगले से सीधा थियेटर की ओर गया। पर थियेटर के नजदीक जाने की जरूरत नहीं पड़ी। मैंने देखा ऊपर मेरे कार्यालय की वह खिड़की खुली पड़ी है तो वह चला गया है! मैंने सोचा।

खतरे का घटाटोप अचानक छट जाने के बाद एक ऐसी दोहरी जीवनानुभूति होती है कि आदमी संधि पर खड़ा इधर और उधर साफ देख सकता है। होने के ठीक बीच का निर्णायक समय कहीं गहरे में उतरकर अपने तेवर बताने लगता है—कुछ समझाने लगता है। शायद अनुभव इसी को कहते हैं।

इस घटना का जिक्र मैंने किसी से नहीं किया। अनायास ही खतरे से खेल जाने की सनसनी और रोमांचक अनुभूतियों को जज्ब किये, नाटक में खो गया। मेरे नाटक का पात्र शिलांग खूब विकसित हो चुका था। बार बार सजा पाकर भी वह बन्धुआ कुव्यवस्था का विरोध करने से बाज नहीं आ रहा था। शिलांग के दृढ़ निश्चय को देखकर, आखिर दमनसिंह उसके मुंह पर पट्टी चिपकवा कर उसके दोनों हाथ हमेशा के लिए पीछे कमर पर बंधवा देता है। दूसरे बन्धुआ भी ऐसी जुर्रत न करें, इस हेतु मालिक शिलांग को उसी अवस्था में हर समय अपने साथ रखता है।

ऐसे पात्र के लिए यह बहुत बड़ी सजा है। अब शिलांग अपने मालिक के क्रूर कर्मों का मात्र दर्शक बनकर रह जाता है। एक दिन यही शिलांग अपनी बेटी के साथ मालिक द्वारा बलात्कार किये जाते हुए अपनी आंखों से देखता है। इन दिनों, मैं इस कुकृत्य को शिलांग के चेहरे पर घटित होता दिखाने की पीड़ा पात्र कलाकार के साथ-साथ भोग रहा था...मुंह पर पट्टी और बंधे हाथों वाला शिलांग, विवशता और क्रोध की अन्तराग्नि से तपता-तड़फता शिलांग .. कुकर्म रोकने को सिर पटकता शिलांग।

मालिक दमनसिंह कहता है, 'अरे, तुमने खिड़की से देख लिया। तुम्हें दिखाई भी देता है?...अजीब बात है।' और शिलांग की दोनों आंखें निकलवा ली जाती हैं। अंधा शिलांग अब मुक्त है। पर उदरपूर्ति के लिए उसे गलियों में भीख मांगनी पड़ती है। भीख मांगने के लिए वह हर समय इकबाल का यह गीत गाया करता है—'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा..' यह गीत मंच से या नेपथ्य में बार-बार सुनाई पड़ता है। शिलांग नाटक के अन्त तक केवल यही गीत गाता है और कुछ नहीं कहता।

कलाकारों की अच्छी मेहनत के कारण मंच से दर्शकों के अप्रभावित जुड़ाव की पूर्वानुभूति मुझे सहज ही हो रही थी। इसी रंग रूप में डूबा मैं नाटक के

शायद रोहित (शिलाग का बेटा) की ओर बढ रहा था, जो अपने बाप की परम्परा को आगे बढाता है ।

इन्ही दिनों दीप्ति ने मुझे एक लिफाफा दिया। उसने बताया, 'एक लडका दे गया है।' मैंने लिफाफा देखा—एकदम सादा—न भेजने वाले का नाम न पाने वाले का नाम। खोलकर अन्दर का पत्र निकाला। हस्तलेख अजनबी लगा। किसने लिखा है, जानने के लिए कागज को उलटा पलटा। पर न कोई नाम न हस्ताक्षर—किसका पत्र है?

आखिर पढना शुरू किया।

श्रद्धेय मिश्रा जी, नमस्कार! उस रात आश्रय देने के लिए धन्यवाद। आशा है वहा रुकने से आपको कोई परेशानी नही हुई होगी। मैं सुबह वहा से निकल गया था। इस समय मैं शहर के बाहर हू। उम्मीद है दो-तीन दिन यहा और गुजार दूगा। इसके बाद कोई ठीक नही। कहा जाऊ, यहा से किसी अन्य सुरक्षित स्थान को कूच करने से पहले एक बार आपसे मिलने की इच्छा है। पर कह नही सकता, मिल सकूगा या नही—क्योंकि मेरा जीवन ही ऐसा है। शायद भटकना मेरी नियति है। उस रात आपने पूछा था कि मैं कौन हू यही बताने के लिए यह पत्र लिख रहा हू।

आपको जानकर शायद आश्चर्य (या क्षोभ) हो कि मैं एक अध्यापक की सतान हू। मेरे पिता हाजीपुर के पास एक गाव-गुरवापुर मे प्राइमरी टीचर थे। इसी गाव मे हमारा घर था। मेरी मा, मेरी दो बहनें और एक छोटा भाई—हम सब इसी गाव में रहते थे। यह गाव खेतिहर मजूदरो की एक बस्ती है। केवल दो जमीदार परिवार है, जिनके पास पूरे गाव की जमीनें हैं। इस अव्यवस्था और शोषण को लेकर पिताजी का टकराव सदैव इन असरदार लोगो से रहा। स्वतत्रता के बाद उन्होंने मजदूरो को उनके हक की जमीनें दिये जाने के माग उठायी। चूकि मेरे पिताजी अपने क्षेत्र के जुझारू स्वतन्त्रता सेनानी रहे है, इसलिए सामत लोग सीधे से उन पर हाथ नही डाल सके, पर उन्हे दूसरे तरीको से परेशान करना शुरू कर दिया। फिर भी उन्होंने खेतिहरों को सगठित कर सरकार पर दबाव डाला। इसका असर यह हुआ कि मजदूरो को उनकी जमीने सरकारी कागजो मे बाकायदा मिल गयी, पर कब्जा नही मिला। कब्जा दिलवाने के लिए उन्होंने पूरे एक वर्ष तक छोटे किसानों की जमीनो को मजबूरन बटाईदारी पर नही लगने दिया।

परिणामस्वरूप सामत बौखला गये और उन्होंने अपने लठैतो से मजदूरो की बेरहमी से पिटाई का एक लम्बा सिलसिला चलाया। मेरे पिताजी को एक

पुलिस थाने पर ले जाकर पांच दिन तक अमानवीय यातनाएं दी गयी। उन्हें इतना पीटा और सताया गया कि वे दो महीने तक अस्पताल में एडमिट रहे।

अस्पताल से निकलने के बाद उन्होंने आसपास की सभी गांव बस्तियों के भूमिहीनों को एकजुट किया और पटना में एक बहुत बड़ा प्रदर्शन आयोजित करवाया। यह कोई दस-वर्ष पूर्व की बात है। प्रदर्शन शांतिपूर्ण था। पर इससे सामंतो के कलेजों में एक आग धधक उठी।...सभी भूमिहीनों को सबक सिखाने के लिए दूसरे दिन ही रात को गुरवापुर पर कहर ढहा देने वाला हमला किया गया। गांव को चारो ओर से घेरकर घरो को आग लगा दी गयी। हत्या, लूट-पाट, बलात्कार क्या कुछ नही हुआ इस हमले में। इसी आक्रमण में मेरे पिताजी की हत्या कर दी गयी। मेरी मा भाई-बहनो को कहां गायब किया गया, उनका आज तक पता नही। वे काटकर गंगा मे बहा दिये गये या जिंदा जला दिये गये, कुछ नहीं कहा जा सकता। उस समय मैं अपने मामा के यहां पटना मे था, इसलिए बच गया। इसके बाद मेरे मामा ने ही मुझे पाला-पोसा और बी. ए. तक पढ़ाया।

मेरे मामा चाहते थे, मै पढ़-लिख कर कोई नौकरी करूं। पर गुरवापुर की जलती बस्ती और रोते-बिलखते लोगों ने मुझे किसान मजदूर संग्राम समिति से जोड़ दिया। कॉलिज के दिनो में ही मैंने समिति के एक्शन्स मे भाग लेना शुरू कर दिया था।

आप जानते है कि पूरे बिहार मे जमींदारो ने अपनी भूमिसेना बना रखी है। ये भूमि सेनाएं पुलिस से मिलकर हमारे आदमियों की हत्याएं करती है—सरकार भूमिहीनो का साथ न देकर जमींदारो की पीठ ठोंकती है। आदापुर, दूरमिया, पारसडीह, अरवल—कहा नही मारा पुलिस ने भूमिहीनो को। अरवल मे तो मजदूरो और किसानो की सभा पर गोलिया बरसा कर जघन्य हत्याए की गयी हैं, यह सब आपने अखबारो मे भी पढा होगा। दुर्भाग्य से मैं पटना क्षेत्र का विशिष्ट कर्मी हू, इसलिए पुलिस मेरी जान की ग्राहक बनी हुई है। आप शायद नही जानते, राज्य के एक नेता है जो हमारी प्रतिबंधित संग्राम समिति के सदस्यो की सामूहिक हत्या के लिए जिम्मेदार है। यह खुद भी बहुत बडे जमींदार है और सामतशाही के प्रबल पक्षपोषक भी। इन्हीं के इशारे पर अब हमारे भूमिगत साथियों को पकड़ा जा रहा है और फर्जी मुठभेड़ द्वारा उनकी हत्याएं की जा रही हैं। मैं गिरफ्तारी से नही डरता, लेकिन डर इस बात का है कि पुलिस मुझे पकड कर मेरा काम तमाम कर देगी। एक विशेष दस्ता मेरे पीछे लगा हुआ है।

इसलिए मैं ऐसे सुरक्षित स्थान की तलाश में हूं, जहां निःशंक भूमिगत रह सकूं।

आदरणीय श्रीमान् मैं नहीं जानता कि आपकी दृष्टि में सही कर रहा हूं या गलत। पर इतना जरूर जानता हूं कि जो कर रहा हूं उसके लिए मजबूर हूं। वरना आप जानते हैं, आराम से कौन नहीं जीना चाहता। एक बार फिर धन्यवाद। हां, इस पत्र को पढ़कर फाड़ना न भूलें।

वह पत्र नष्ट करने की बात न भी लिखता तो भी मैं उसे जरूर फाड़ता। पत्र पढ़कर उसके जीवन की भयावह परिस्थितियों का मुझ पर सहानुभूतिपूर्ण असर न होकर एक अलग तरह का प्रभाव पड़ा। लगा जैसे कुछ अनचाहा घटित हो रहा है और इस विभीषिका की आंच मुझ तक पहुंचना चाहती है। कुछ क्रूर और निंदनीय घटनाएं अपनी परिणतिमूलक परिस्थितियों की बिसात बिछाकर मुझे भागीदारी के लिए बुला रही हैं।

अनेक अनगढ़ शंकाएं दिमाग में घुमड़ने लगीं। उस दिन प्रिंसिपल के बंगले के बाहर खड़ी पुलिस की जीप जेहन में फिर उभर आयी।

मैंने जल्दी से पत्र को चिंदी-चिंदी कर डाला, मानो थोड़ी देर वह हाथों में रह गया तो उसके शब्द नीचे झरकर मेरे सामने खड़े हो जायेंगे और मुझे घेरकर अपने साथ कर लेंगे। उन कागज के टुकड़ों को मैं बाहर जाकर नाली में डाल आया।

पत्र फाड़ते हुए दीप्ति ने देख लिया था। इसलिए ड्राइंग रूम में वापस पहुंचते ही उसने पूछ लिया, 'किस का था पत्र ?'

मैंने उसकी ओर देखा और देखने को अनदेखा करने के लिए नजरों को दूसरी ओर घुमा दिया, 'यूं ही था किसी का।' मैंने इतना ही कहा।

वह समझ गयी कि उसके मतलब की बात नहीं है, अतः उसने आगे सवाल नहीं किया। पर मैं भावना और बुद्धि के संघर्ष में घिरा स्वयं से ही जूझ रहा था। उसने मुझे पत्र क्यों लिखा ? क्या मात्र धन्यवाद ज्ञापित करने के बहाने ही उसने सब कुछ बता दिया या इसके पीछे कोई अन्य कारण है। कारण न रहा होगा पर विधि-विरोधी कर्मों में लिप्त होते हुए भी उसने लिखित में परिचय देने का जोखिम क्यों कर उठाया। ... शायद इसलिए कि मैं दलित वर्ग की उद्भावनाओं को उभारने वाले नाटकों पर काम कर रहा हूं।

वह पूरा दिन उधेड़-बुन में ही बीता।

शायद बौद्धिकता भावनाओं की शोषक होती है। यही कारण रहा होगा कि मैं देर रात गये तक मन ही मन यह प्रत्याशा करने लगा कि वह मुझसे न मिले। साथ ही दिमाग के किसी हिस्से मे यह निश्चय भी दृढ़ हो गया कि वह यदि मिल भी गया, तो उससे कोई सम्बन्ध नही जोड़ूंगा।

लेकिन आशा और निश्चयों का प्रतिफलन तो भविष्य के हाथ है। एक दिन वह अचानक मेरे सामने आ खड़ा हुआ। जुलाई की वह एक बरसाती शाम थी। मैं ड्राइंग रूम मे अपने साथियो की प्रतीक्षा मे बैठा था। नाटक मे एक लोक-गीत की संभावनाओं पर पूर्व-विमर्श करने हेतु उन्हे घर बुलाया था। पर बारिश के कारण उनमें से कोई भी नही पहुंचा। मैं खिडकी से बाहर नहा रहे, पेड़-पौधो को देखते हुए उस गीत को गुनगुना रहा था। तभी दरवाजे की घंटी बजी। दरवाजा खुला था, इसलिए मैंने अन्दर चले आने को कह दिया।

आगंतुक शीघ्र ही अन्दर आ गया।

मैंने देखा, वही युवक टपकता रेन-कोट और हैट पहने मेरे सामने हाथ जोड़े खड़ा था। आज उसने हजामत बनवायी हुई थी। वह उस दिन से ज्यादा चुस्त और सुन्दर लग रहा था। उसके आकर्षक व्यक्तित्व और मोहक मुस्कान का ऐसा असर हुआ कि मेरे मुह से अनायास ही निकल गया, 'आओ'।

'थैंक्यू', उसने कहा और पानी टपकता बरसाती पहनावा उतारने, बाहर बरामदे में चला गया। फिर वापस आकर मेरे सामने चौकी पर बैठ गया।

अब मुझे उसे लिफ्ट देने की गलती का आभास हुआ। मेरे व्यवहार में अचानक रूखापन उभर आया, 'बोलो क्या काम है?'

'कुछ नही सर, बस यूं ही चला आया। ....मेरा पत्र आपको मिल गया था न? ....उम्मीद नही थी यहां रुकने की पर रुक गया। आज अवसर मिला तो सोचा मिल लू।'

मैंने कुछ नही कहा और खिडकी से बाहर देखने लगा। बारिश और तेज हो गयी थी। इतनी तेज कि बाउंडरी-वाल से उधर दूसरी तरफ के क्वार्टर्स की दीवारें दिखाई नहीं दे रही थीं। खिड़की से पानी की बूंदें छिटक कर अन्दर आने लगी थी। मैंने उठकर खिड़की बन्द कर दी। फिर अपनी ओर से उदासी दर्शाने की गरज से एक पत्रिका उठा ली और उसके पन्ने पलटने लगा।

'सर, आप एक काम करेंगे मेरा... ?' उसने कहा।

'मैं कोई काम नही कर सकता तुम्हारा।' मैंने तुरन्त ही कह दिया।

'मुझे भूख लगी है, थोड़े से चावल बच रहे हों तो दे दीजिए।'

मैंने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में कहीं कपट नहीं था।

'देहात में मेरा एक दोस्त है, उसी के यहाँ टिका हुआ था। लेकिन सुबह ही वहाँ से हटना पड़ा। पैसा था नहीं, इसलिए दिन भर मैं कुछ नहीं खा सका।' मैं उससे बचना चाहता था, पर उसकी सीधी सादी उदरपूर्ति जैसी मानवोचित माँग अपने लिए सहानुभूति जीतने में सफल हो गयी। मैंने स्टूल पर बैठने को कहा और दीप्ति को आवाज दी।

वह भीतरी दरवाजे पर आयी। मैंने उसे एक थाली में चावल ले आने को कहा। थोड़ी देर बाद वह थाली लेकर आ गयी। वह दीप्ति को नमस्कार करना नहीं भूला और उसके हाथ से थाली लेकर अधीरता से खाने में जुट गया। मुँह में चावल रखने की जल्दबाजी से उसका यह कथन सत्य लगता था कि वह पूरे दिन का भूखा है। दीप्ति को मैंने कुछ और लाने के लिए इशारा किया। वह भीतर जाकर एक प्लेट में दो सूखे पराठे और हरी मिर्च ले आयी। उसने निश्चित संकोच के बाद दोनों पराठे ले लिये। हम दोनों उसे खाना खाते हुए देख रहे थे। दीप्ति की आँखों में एक अतिरिक्त स्नेह झलकता था। तीन बेटियों की यह माँ, बेटा न मिलने के कारण प्रायः भावुक हो जाती है, ऐसे अवसरों पर प्रायः कह देती है, इन की जगह लड़का होता तो आज [illegible] का हो जाता या इतना बड़ा हो जाता। शुक्र है उसने कुछ नहीं कहा। केवल टुकुर-टुकुर देखती रही।

बारिश अब भी हो रही थी। खाना खाने के बाद उसने बाहर जाकर हाथ धोये। फिर वापस आ कर स्टूल पर बैठ गया और रूमाल निकाल कर हाथ मुँह पोंछने लगा। वह बार बार रूमाल को आँखों पर मल रहा था। काफी देर तक वह रूमाल से ही कुछ न कुछ करता रहा। उसकी [illegible] हम दोनों तक पहुँच रही थी।

उसका निस्संग भाव से लौटना मुझे उसकी ओर से एक औपचारिक क्रम भग करने जैसा लगा।

'बारिश हो रही है....' मैंने खिड़की से बाहर देखते हुए मानो अपने आप से कहा।

'मेरे लिए बरसात एक कवच है, कोई देखेगा नहीं।' उसने कहा और बाहर बरामदे में जाकर रेन कोट और हैट पहन लिया।

मैं भी उसके पीछे-पीछे बरामदे मे चला गया।

'हां। एक काम और था, आप अगर कर सकें तो मेहरबानी होगी।'

'क्या ?'

'आप अपने कॉलेज मे क्लर्क या चपरासी . जो भी संभव हो, मुझे नौकरी दिलवा दीजिए। आपकी बात प्रिंसिपल नही टालेंगे। कालेज मे नौकरी मिल जाये तो मैं पुलिस की नजर से बच सकता हूँ। वरना सड़को पर तो भूमिगत होना मुश्किल है।'

'पर तुम्हारी पहचान . मतलब आइडेंटीफाई कौन करेगा।' मैंने कहा।

'यह सब मैं करवा लूंगा।'

'पक्का नही कह सकता, बात करूंगा।'

'कीजियेगा प्लीज', उसके चेहरे पर याचना थी, 'अच्छा मैं चलू। हा, यदि काम हो जाय तो बाहर कूडेदान पर चौक से क्रास लगा दीजियेगा मैं आ जाऊंगा।' उसने कहा और बारिश में नहाता हुआ चला गया।

जब तक वह धारों-धार बरसते पानी मे ओझल नही हो गया, मैं उसे जाते हुए देखता रहा।

नाटक की व्यस्तता के कारण मैं प्रिंसिपल से बात नही कर सका और यह भी कहूँ तो झूठ नही कि जोखिम भरे इस कदम को उठाने से, मै अपने आपको बचाता रहा। अत. कूडेदान पर क्रास लिखने का प्रश्न ही नही उठा।

पर क्रास की उम्मीद मे उसने तो कूड़ादान देखा ही होगा। वह सुबह-शाम जरूर इधर से गुजरा होगा। काफी इतजार के बाद भी जब क्रास नही लगा, तो मौका पाकर वह एक दिन फिर आ पहुचा। उसने अपनी वही प्रार्थना दोहरायी। मैंने उसे नाटक के बाद काम देने का आश्वासन दे दिया।

'आप अपने नाटक मे ही कोई रोल दे दीजिए। मै रोहित का पात्र ठीक से जी लूगा।' उसने मासूम-सा प्रस्ताव मेरे सामने रखा।

मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, रोहित विद्रोही रोहित -- जो अपने मिलमालिक का बेटा है। रोहित, जो बधुआ मुक्ति के लिए संघर्ष करता हुआ अंत मे मालिक दमनसिंह का कत्ल कर देता है, बेशक तुम्हारा जीवन रोहित से मिलता जुलता है, पर यह रोल तुम्हे देना मुमकिन नही है। हमारे यहा केवल स्टूडेंट्स ही काम कर सकते हैं।' मैंने कहा और उसे एक्जाम के बाद मिलने की हिदायत दी।

लेकिन उसने फिर आग्रह किया, 'सर आपके प्रोग्राम में मंत्री जी आ रहे है बहुत काम होगा। कोई भी दिलवा दीजिए।'

'नहीं भई इस तरह का कोई काम नही है' मैंने उसे किसी तरह टाला।

इसके बाद वह दो बार और मिला। हर बार उसने प्रोग्राम मे पहले काम देने की गुजारिश की। दीप्ति तो मेरे और मन को उघाड़ने पर ही तुली थी। दीप्ति के लिए तो वह मात्र एक अनाथ बच्चा था। उसके क्रिया-कलापों से अनभिज्ञ वह प्राय रोज ही पूछ लेती, 'विकास के लिए कुछ किया' इसीलिए न कितना अच्छा लड़का है। कई शाम जब आप रिहर्सल मे थे, वह आया था। कितना घुलमिल गया हम सब से। खाना खाने के बाद कहने लगा—मम्मा न जाने यह घर मुझे क्यो अपना-अपना सा लगता है। सर जब मेरी नौकरी लगा देंगे, तब मैं आपके पास ही रहूगा। मुझे नौकरी के साथ साथ मम्मा भी मिल जायेगी।' दीप्ति ने यह सब बताते समय मम्मा संबोधन पर विशेष जोर दिया था।

मै केवल 'हूँ-हां' करता रहा।

ऐसी बात नही कि मेरी उसे मदद देने की इच्छा नही थी। पर मै अपने तरीके से उसे एडजस्ट करना चाहता था। मै उसके भटकते जीवन को एक दिशा देने की फिराक मे था। पर दूसरे रूप मे। इसलिए मेरे मन की चाहत मात्र एक कामना के रूप मे दुबकी बैठी रही।

एक बार लगभग नौ-दस बजे मेरे घर पहुंचा। तीनों बेटियां और दीप्ति न उसे चारों ओर से घेर कर बैठी थी। मेरे पहुंचते ही उसने खड़े होकर नमस्कार किया। लड़कियां उसका अदब करती रहीं। [illegible]

यह हमारी आखिरी मुलाकात थी।

'आज तो विकास कई दिनों बाद आया है।' दीप्ति बोली।

'हूँ...' बस इतना ही बोला मैं।

'आपके बैंक मे प्रोग्राम का एक वी. आई. पी. कार्ड दिया है इसे।' स्नेहिल नजरों से विकास को सराबोर करती वह मेरी ओर मुस्करायी। उसकी मुस्कान में एक कौतुकित अधिकार मिश्रित आस्था थी।

भोली और निश्छल औरत की भावनाओं का दोहन करना मुझे ठगी-सा लगा। टिकट मांगना था, मुझसे मांगता। यह व्यावहारिक कपट क्यों? फिर कार्यक्रम का उद्घाटन एक मंत्री करने आ रहे हैं...और यह अपराधों की दुनिया वाला लड़का हॉल मे कुछ भी कर सकता है।

'किसने दिया?' मैंने दीप्ति को आंखों से बींध डाला।

'मैंने....' दीप्ति सशंकित-सी बोली। एकाएक मेरे चेहरे के बदलते रंग को देख कर सहम गयी थी।

'कार्ड कहा है?'

दीप्ति ने पहले उसकी ओर फिर मेरी ओर देखा।

इसी प्रकार विकास ने भी बारी-बारी से हम दोनों को देखा। क्षणांश के लिए हमारे बीच एक विडंबना नाच गयी। हम तीनों ही अपने द्वारा किये व्यवहार के तनावों मे बिंधा गये थे। शायद उसी पर अधिक दबाव पड़ा। वह उठा और पैंट की पिछली जेब से कार्ड निकाल कर मेरी ओर बढ़ा दिया, 'यह रहा सर ..'

मैंने उससे आवेग मे वह कार्ड ले लिया। बल्कि कहना चाहिए झटक लिया।

'विकास, तुम जो सोच रहे हो वह काम ठीक नही है।'

दीप्ति मेरे कथन के पीछे छिपे संदर्भ को जानने की कोशिश मे मेरे चेहरे को पढ़ने लगी। पर एक संकेत मात्र से उसका पूरा जीवन-युद्ध वह कैसे जान पाती।

मैंने उसे अंदर जाने को कहा। वह चली गयी।

'सर मेरे सामने और कोई रास्ता नही है। मैं किसी भी वक्त पकड़ा जा सकता हूँ....फिर एक पिशाच को मारकर ही क्यों न पकड़ा जाऊँ।'

'....?'

'हां, सर कल जो आपके फंक्शन में मंत्री आ रहे हैं, इन मंत्रीजी ने ही संग्राम समिति की सभा पर फायरिंग करवा कर 55 आदमियों को मौत के घाट उतरवा दिया था। इन्हीं की शह पर क्षेत्र के बड़े जमींदार दलितों पर क्रूर अत्याचार कर रहे हैं।'

'लेकिन क्या मिनिस्टर की हत्या से दलितों की समस्याएं हल हो जायेंगी ?' मैंने पूछा।

'समस्या चाहे हल न हो पर हमारी ओर से एक शोषक का अंत तो हो ही जायेगा।'

'मैं नहीं मानता कि हिंसा ही कोई आखिरी हल है। हिंसा के बाद भी मनुष्य शांति की तलाश में भटकता है। क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता ?'

'लगता है पर स्थायी शांति के लिए हिंसा जरूरी है। पुलिस हिंसा क्यों करती है ? शांति स्थापना के लिए ही न ? हमारी हिंसा भी पुलिस की हिंसा की तरह व्यवस्थागत है। फिर हमारी हिंसा अलग क्या है ? हम कोई डाकू-लुटेरे नहीं हैं। हम अपने निजी स्वार्थों के लिए किसी का खून नहीं बहाते.'

'मैं जानता हूँ' मैंने उसे बीच में टोक दिया। 'पर विकास, इस सड़ी-गली व्यवस्था में तुम अकेले कुछ नहीं कर सकते। तुम्हारे बलिदान का मूल्य भावुकता से अधिक नहीं होगा। तुम जो भी कदम उठाना चाहते हो सोच-समझ कर उठाना। जिंदगी का भी अपना मूल्य होता है। यूं आवेशपूर्ण जीवन जीने से कोई सुधार होने वाला नहीं है।'

वह मुस्कराया—एक सर्द मुस्कान। उसके होंठों पर मेरे कथन को बचकाना बना देने वाला एक गूढ़ विद्रूप खिंच गया, 'मैं आपकी भावनाएं समझता हूँ पर मैं उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ। जो अपने आपको बचाने के लिए किसी समाजशास्त्रीय बहाने की तलाश करते हैं।' उसने कहा और तेजी से बाहर निकल गया।

'विकास...' मैंने उसे दरवाजे तक पहुँचते पहुँचते रोक लिया। 'तुम इस तरह जा रहे हो, मुझे पीड़ा होगी।'

'सर, कुछ लोग पीड़ाओं में से पीड़ाएं निकालते चले जाते हैं और उन पीड़ाओं का कोई अंत नहीं होता।'

'तुम कुछ भी कहो, तुम मेरे बच्चे के समान हो। केवल मेरे कहने से रुक जाओ, अभी तुम कुछ मत करना।'

धूल सना ओर वे घिसटते-घिसटते बोले, 'भैया....परमेसर भी....।' गालों पर आसुओं को भीतर से आहत हो उठे। बुढ़ापे मे और अंगो के साथ मजबूरी जीभ भी वश मे नहीं रही। हांफते हुए लम्बी सांस लेकर कुनमुनाए 'हे परमेसर अभी तो इतना र जाने कब से होगा ?'

रास्ते मे एक बैलगाड़ी आ रही थी। उसकी आवाज सुनकर उन्होंने अपनी गरदन मोड़ कर देखा और सोचा, 'बिना बांध हुई बैलगाडी की तरह उनकी काया है। लेकिन उन्होंने सोचा बुलट तो सारे घिस गये, अब बांस ओर रंग रोगन कराए भी तो कोई फायदा नहीं। जाने कब खिसलकर गिर जाए। वे अपने जोड़ों के बुलट देखने लगे। सारे ढीले पड़ गये हैं। एक पल मौत का अहसास होते ही वे और ढीले पड़कर सोच मे भरे गये। फिर यह सोचकर कि जन्म-मरण तो होते ही है। अपने को तसल्ली दी। अब तो बिना ज्यादा दुख-दरद के उठा ले तो ही अच्छा, नहीं तो खाटली मे पड़े सड़ते रहेंगे। कोई सू-सूत करने वाला भी नहीं है।

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय....' होठो मे बुदबुदाते हुए सोचने लगे...' जिनगानी भो क्या है ? कब कट गयी ? पता ही नही चला। बाप-दादों के जमाने से चली आ रही जजमानी की वजह से रात-दिन पूजा-पाठ, अमावस-पूनम की कथा ओर ब्याह-सादी, तीया-बारा में उमर बीत गयी। उन्होंने नजर उठाकर अपने चौतरफ देखा और गाव का पुराना नक्शा मन मे उतारते चले गये। पहले इतने मकान कहा थे। बस ठाकुर साहब की हवेली थी। पर अब उनके देखते-देखते कई हवेलिया खडी की गयी और ठाकुर साहब की हवेली की एक-एक ईंट खिरती चली गई। अभी तो फैलाव होता जा रहा है। एक बड़ी स्कूल और सफाखाना भी बन गया। सब मनीस्टर, बालेस्टर की कारस्तानी है। उन्हे याद आया गरमियो मे दो-तीन लडके मन्दिर के बाहर बड के पेड के नीचे तास-पत्ती खेला करते थे। तब कभी-कभी वे ऊचे बोलो मे मनीस्टर, सरकार, पारटी जाने क्या-क्या बोलते रहते थे। हा याद आया एक तो किसना अहीर का छोरा था, दूसरा बालू का जो टेसण पर पैठमैन होते हुए भी अपने छोरे को पढ़ा रहा था। और एक छोरा और था पेशानी पर जोर डालने के बावजूद वे याद नही कर पाये कि किसका था। पर उसकी शकल-सूरत उनके सामने उभर आयी। यही कोई ठिगनी कद-काठी का होगा। उमर तो तीनों की ही कोई बीस-पच्चीस बरस की होगी। कई बार तो वे इतनी जोर से बोलते कि लगता अभी लड़ पड़ेंगे।

एक बार का वाकया है, वे मन्दिर के चूतरे पर गरमियो मे प्याऊ लगाया करते थे। एक दिन छोरो से यू ही पूछ लिया....'सरेरी बन्धे की खुदाई हो रही

है। काम के बदले कितना नाज देते है ?' तो बिफर पड़े। 'सारा चकमा है बाबा, आधा तो ठेकेदार और इंजीनियर खा जाते हैं। जो आधा होता है वह भी सड़ा-गला होता है। और फिर चुनाव आ रहे हैं। इसलिए भी यह सारा टोटका हो रहा है।' और दो महीने बाद हुआ भी यही। धूल-माटी उड़ाती मोटरकारों का हुजूम आया था। एक दिन तो वे भी भाषण सुनने जाने वाले थे। लेकिन पुलिस थाने के सिपाहियों को देखकर सहम गये। मन्दिर में ही भोंपू की आवाज सुनाई दे रही थी। उसमें तो न गये तो ही चोखा हुआ। पीछे सुना इन्हीं लोगों को उल्टे-सीधे नारे लगाने और हुड़दंग करने के जुरम में सिपाहियों ने खूब मारा था।

दिमाग में यह सब अटरम-सटरम दोहराते हुए उन्हें लगा, जरूर कहीं कुछ गड़बड़झाला हो गया है। कानों के आस-पास उन्हें अनाप-शनाप शोर-शराबा और रोने-धोने की आवाज सुनाई दी तो घबराकर सामने देखा, कजोड़ का घर आ गया था। सामने से रोती हुई औरतों का झुण्ड आ रहा था। और गुवाड़ी के बाहर दाह-संस्कार में जाने के लिए लोग-बाग खड़े थे। एक बार तो उन्हें अपने पर झुंझल आयी कि कुछ जल्दी आना चाहिए था।

'देर से कैसे आए बाबा ?'

कजोड़ के भाई ने पूछा तो ठण्ड से कपकपाते होंठों से उसकी ओर देखते हुए उन्होंने कहा – 'क्या बताऊं, एक अकेली जान तिस पर यह ठण्ड, आरती-करनी करने में ही गुण वखत हो जाता है।'

पछेवड़े को अच्छी तरह ओढ़कर भीतर से सामग्री मगायी और किरिया-करम करने लग गये। 'नैन छिदन्ति शस्त्राणि..' होंठों के भीतर बुदबुदाते जा रहे थे पर बाहर भी फुसफुसाहट साफ सुनाई दे रही थी—आत्मा अमर है, नाशवान तो यह काया ही है, इसलिए इस पर कभी गरब नहीं करना चाहिए।

अरथी तैयार हो चुकी थी। लोगों ने कन्धा देकर 'राम नाम सत है' के साथ उठाया तो वे भौचक्के होकर सन्न रह गये। नसों का रक्त ऐसी ठण्ड में भी तेज होकर दौड़ने लगा। उन्होंने अपनी मुट्ठी भींचकर फैला दी और हाथ की रेखाएं देखने लगे। इच्छा हुई कजोड़ की हाथ की रेखाओं को भी एक बार देखें। अपने हाथ की मिटती रेखाओं के साथ सपाट हथेली को देखकर वे सोचने लगे, कहीं अन्तिम समय में रेखाएं मिट तो नहीं जाती हैं। दहशत से अन्दर तक कांप गये....नहीं.... नहीं.. और वे भी लोगों के साथ 'राम नाम सत है' कहते हुए पीछे-पीछे चलने लगे।

'अरथी के साथ धीमी चाल व ख्यालात में डूबे उन्हें पता भी नहीं चला कि वे कहां तक आ गये और इसी ख्यालात में डूबे वह पीतल की बजती घण्टी के साथ खिसकती गई और खिसकने के साथ एक अठन्नी उनके टूटे जूते में आकर टकरायी तो उन्होंने गरदन नीची कर अगल-बगल देखा, दो-तीन छोकरे आपस में झपट रहे थे। वे घबराहट में बड़बड़ाते हुए कुछ और सोचें उससे पहले एक ख्याल आया कि अठन्नी को यहीं पांव के नीचे रोपकर मिट्टी में दबा दें और रात-बिरात आकर ले जाए। इसके लिए तुरत-फुरत मन-ही-मन टीकर के पेड़ का ठीया भी सोच लिया। अपने को व्यवस्थित कर जनाजे की ओर देखा, वे पीछे छूट चुके थे। किसी तरह घबराते हुए जूता ठीक करने के बहाने नीचे झुके ही थे कि तभी दो छोरे झपटते हुए उनके करीब आ गये।

'बाबा, बाबा यहां एक सिक्का गिरा था।'

चोरी करते रंगे हाथों पकड़ लिया हो उस तरह घबराते हुए उन्हें लगा मानो वे सीधे नहीं हो सकते। वे गड़बड़ा गये थे। लेकिन उसी क्षण उनके भीतर एक शक्ति-सी आ गयी और.. 'साले, मादर के... भिड़ोगे.. दूर हटो', छोरों को डांटते हुए सीधे होकर दौड़ते हुए अरथी के पीछे के लोगों में शामिल हो गये। यहां आकर उन्होंने पहले तो एक लम्बी सांस ली, फिर लोगों के चेहरों के हरफ पढ़ने लगे कि किसी ने कुछ भांप तो नहीं लिया है।

अरथी जमीन पर उतार कर किरिया के सामान सामने रख दिये गये थे। धूजते हाथों से दीया जलाकर मन-ही-मन श्लोक पढ़ने लगे तो उन्हें लगा कि वे अपने ही हाथों खुद का किरिया-करम कर रहे हैं। मानो वे उमर भर लड़ाई के मैदान में युद्ध करते रहे हों। लेकिन जीत आज तक हासिल नहीं हुई और इस अन्त समय में भी वे हार जायेंगे। सब कुछ तैयार हो चुका था। लकड़ियों के चिने हुए शरीर से कजोड़ की असहाय कातर आंखें मानो प्राय-श्चित करना चाह रही थीं। लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता। जीवन की बाजी मौत के हाथ जा चुकी थी।

तीसरे पहर निवटना हुआ था। ठण्ड के कारण वे नहीं नहा सके। सोचा मन्दिर के कुए पर नहा लेंगे, लेकिन वहां तक आते-आते धूजणी तेज हो गयी थी। उन्होंने एक बार मन्दिर पर निगाह फेंकी और गौर से देखने लगे। उसके उतरते लेवड़ों के झरते चूने पर निगाह टिक गयी। लगा यह भी उनके साथ ढह जायेगा। उनके पीछे कोई आल-औलाद भी नहीं है, जो देखभाल कर सके। फिर नजर सामने मूर्ति पर चली गई, जहां राम जानकी फटे चिथड़ों में

लिपटे थे। पूजा के नाम पर पीतल की एक घण्टी और माटी के दीये के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। भोग के लिए परसाद भी नहीं हो पाता तो उन्होंने सोचा कि तेल के दीये से ही काम चला लिया जाय। बस मन में भावना होनी चाहिए, सब शुद्ध है, तेल तो परचूनी वाला रामलाल दे जाता है। मूर्ति पर निगाह टिकते ही वे अन्दर जाते-जाते फिर रुक गये। नहीं, बिना नहाए नहीं जाना चाहिए। लेकिन धूजणी और थकावट को देखकर सहम गये। आखिर एक जुगत सोची कि परिक्रमा देकर चरणामृत ले लिया जाय। फिर दूने जोश से सोचने लगे—'भगवान भी समरथ का है उसका तो सब किया माफ है'।

'समरथ को नहीं दोष गुसाईं।'

धुंधलका हो गया था। आरती के बाद बोरी बिछाकर वे परिक्रमा की गली में ही पड़ गये। भूख हावी होकर दिमाग में चढ़ती जा रही थी और वे थे कि बार-बार भूख पर हावी होने के लिए उथल-पाथल हो रहे थे। कभी मूर्ति को देखते कभी बाहर देखने लगते। और कभी अपने अतीत के घिरे हुए पन्नों में खो जाते।

बरछी-सी तीखी हवा का झोंका उनके सीने में आकर चुभा तो दो-तीन पल तक दांत किटकिटाते रहे। वे और अधिक सिकुड़ गये और सोचने लगे अब क्या ओढ़ें? अचानक ध्यान आया उनके नीचे एक बड़ी बोरी बिछी हुई है, उसे आधी ओढ़ लें और आधी बिछा लें। पछेवड़े से हाथ निकालकर बोरी को टटोला तो लगा, हाथों का खून जमकर पीला हो गया। बमुश्किल टाट को चारों ओर लपेटकर सिकुड़ गये। एक बार फिर ठण्डी लहर उठी तो नाक के पानी को ऊपर खींचते हुए कुनमुनाए। 'हे परभू तू ही है। अब तो उठा ले।'

सिकुड़ते ही भूख फिर हावी हो गयी। सोचा परचूनी वाले से आटा उधार ले आएं। पर दूसरे ही पल ध्यान आया वह तो पहले ही मना कर चुका था। उसके दस रुपये जो देने हैं। और दूसरा कोई ऐसा दिखाई नहीं दिया जिससे कुछ मांगा जा सके। ससुरी ठण्ड भी ठण्ड जैसी पड़ रही हो तो। पेट ही पेट बुदबुदाए तभी एकाएक ध्यान आया कि ठण्ड तो भूख की वजह से लग रही है। अपने इस ज्ञान पर वे मुग्ध हो उठे। पर पेट के भीतर होती गड़गड़ाहट बार-बार दिमाग पर चढ़कर महसूस होती जाती और वह रह रह कर सोच का केन्द्र बिन्दु फिर पेट हो जाता, इस तरह हर बार सोच वहीं आकर अटक जाता तो वे हुड़क उठते।

अंतड़ियां तनकर पेट गयी थी। दिमाग अब भी चलायमान था। पर कहीं कोई ठौर नजर नहीं आ रही थी। सोच फिर कजोड़ की तरफ घूम गया, कल उसका तीसरा है। इसलिए जरूर कुछ विद बैठ सकती है। चावल या खिचड़ी कुछ तो जरूर होगा। इस सोच ही सोच में एक बारगी पेट भर गया हो, इस तरह होंठों पर जीभ फेरी पर इसी वक्त ऐसा मरोड़ उठा कि हाथ पेट की सिकुड़ी हुई खाल को सहलाने लगा।

तभी बेसाख्ता उनका ध्यान कच्चे आटे के पिण्डों पर चला गया जो कजोड़ को ले जाते वक्त श्मशान के पास उसके बेटे ने रखे थे। आटे के पिण्डों पर सोचते ही आँखों में चमक-सी आयी, लेकिन दूसरे ही पल उन्हें यह सोच घृणित लगा और खुद को ही एक भद्दी-सी गाली दी। लेकिन भूख थी कि और अधिक उकस रही थी। जब्त करने के बावजूद उसके पंजे पेट में खलबली मचा रहे थे और इस समय उनका सोच भी उसी से संचालित हो रहा था। उन्होंने सोचा आटे के पिण्ड खाने में आखिर हर्ज क्या है? 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्?' नहीं लेकिन यह पाप भी कहां है? खुद ही ने फिर समाधान भी किया।

और अधिक कुछ सोचने से पूर्व ही जोड़ों को सीधा कर वे खड़े हो गये। उन्हें लगा मूर्ति की निगाह उन पर टिकी हुई है। घूमकर उससे आँखें मिलाने की हिम्मत नहीं जुटा सके। 'साली ऐसी भगती भी किस काम की कि भूख से मौत हो।' वे बुदबुदाए।

पछेवड़े को दोनों हाथों से कसे हुए वे किवाड़ तक आ चुके थे। अटकाए किवाड़ के ठिठुरते पग से लात मारी तो आवाज करता हुआ एक पल्ला बाहर की ओर झुक गया और दांत किटकिटाते हुए वे इस सोच के साथ जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगे कि उनके जाने से पहले ही कहीं आटे के पिण्डों तक कुत्ते न पहुंच गये हों।

एल. टी. सी.

अशोक सक्सेना

काफी सोच विचार के बाद बाबू लल्लनप्रसाद श्रीवास्तव ने इक्कीस अप्रैल से पन्द्रह दिनों की छुट्टियाँ ली थी। बच्चों के सालाना इम्तहान सोलह अप्रैल को खत्म हो गये थे। रिजल्ट मई–जून में आयेंगे। बच्चों के लिए इस साल गर्मी की छुट्टियों की शुरुआत काफी अच्छी रहेगी।

'सुनती हो' बुशर्ट उतार कर खूंटी पर टांगते हुए वे बोले.. 'कल चलना है। गाडी सुबह सात बजे छूटती है। छः बजे घर से निकलना होगा, रात को ही सारी तैयारी कर लेना।'

'कितने टिकिट लिये ?' पत्नी ने पूछा।

'सात। शीनू और बॉबी का पूरा-पूरा टिकिट ले लिया।'

'कितने रुपे के हुए।'

'इक्कीस सौ के।'

'बहुत ज्यादा किराया है।'

'जम्मू यहीं रखा है क्या, कम से कम छः सौ मील है और फिर फर्स्ट क्लास एयरकंडीशंड के टिकिट है। किराया ज्यादा तो होगा ही।'

'जरूरत क्या थी फर्स्ट क्लास की' उसने उदासीनता से कहा।

लल्लन बाबू को झुंझलाहट हुई। कैसी बौड़म औरत है न जाने इसका दिमाग कहाँ रहता है। अभी महीने भर पहले समझाया था कि प्रमोशन हो गया है। तनख्वाह में केवल चालीस रुपये बढ़े थे लेकिन पे-स्केल के हिसाब से वे अब फर्स्ट क्लास में सफर करने के हकदार हो गये थे। तभी उन्होंने यह भी बताया था कि अगले माह एल टी सी मिलने वाला है। मौका लगा तो इस बार बच्चों को कश्मीर ले चलेंगे। मालती ने उस वक्त भी उनकी इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं ली थी और आज फिर वही हाल था।

लल्लन बाबू को पत्नी की यह उदासीनता की प्रवृत्ति कभी-कभी बहुत खलने लगती थी। जिस उमंग और उत्साह से वे टिकिट लाये थे वह फीका पड़ गया। पास आते हुए बोले—'लो ये टिकिट सँभाल कर रख लो।'

मालती ने टिकिट आलमारी में बिछे अखबार के नीचे सरकाकर ऊपर से किताब रख दी। आलमारी के किवाड़ बन्द करते हुए वह बोली—'ऐसा नहीं हो सकता कि हम ये टिकिट वापस कर दें और इसके बदले इते रुपे हमें वापस मिल जाएँ।'

उनका मन बुरा गया। किस गधी से पाला पड़ा है। जब देखो तब टुच्ची बातें करेगी। इस साली ज़िंदगी में वैसे ही कम चोरियन नहीं है। ऐसे मौके कौन रोज़-रोज़ आते हैं। जब कभी ऐसा मौका आता है तब यह त्यौनारपन छाँटेगी। कोई हल्का-फुल्का प्रोग्राम होता तो वे उखड़ जाते लेकिन मामला कश्मीर का था। कल की गाड़ी से जाना था और चलने से पहले ही वे सफ़र का मज़ा किरकिरा करना नहीं चाहते थे। बोले—'टिकिट वापस नहीं होता, ना ही रुपये मिल सकते हैं।'

'ये तो हो सकता है कि हम सैकिंड क्लास के टिकिट ले लें बाकी रुपे....'

'ये भी नहीं हो सकता। चार्ट में सफ़र करने वाले मुसाफ़िरों के नाम लिखे होते हैं।' उन्होंने पूरा संयम रखकर समझाया।

'मैं सोच रही थी जाना ही तो है। सैकिंड क्लास में चले चलते। बाकी रुपे ऊपर के खर्चे में काम आ जाते।' फिर जैसे खुद को सुनाकर बुदबुदाने लगी। 'अब वो रुपे निकालने पड़ेंगे। सोच रही थी कि बरेली भात देने जाना है। इस बार कर्ज़ नहीं करना पड़ेगा पर तुम्हें तो....' वह कहते कहते रुक गई।

लल्लन बाबू उठकर आँगन में नल पर नहाने चले आये।

जिस समय वे लोग स्टेशन पहुँचे जम्मू तवी एक्सप्रेस प्लेटफ़ार्म नम्बर चार पर आ चुकी थी। रिक्शों से सामान उतारने के साथ ही लल्लन बाबू ने बिस्तरबन्द उठाया और अरुण ने संदूक। पीछे-पीछे मालती और चारों बच्चे हाथों में कुछ न कुछ सामान उठाये गिरते-पड़ते भाग रहे थे। चार नम्बर पर पहुँच कर लल्लन बाबू ने चैन की साँस ली। बिस्तरबंद ज़मीन पर टिका कर अरुण को वहाँ खड़ा किया और खुद अपना कम्पार्टमेंट देखने चले गये। अब

'सामान उठाओ भाई' बिस्तरबंद उठाये हुए लल्लन बाबू ने बताया 'इंजन से तीसरा हिस्सा।'

'सुनिये, शीनू पानी माँग रही है।'

'ओफ्फो' उन्होंने बैडिंग धम से जमीन पर पटक दिया। 'लाओ गिलास निकालो फटाफट। सुनो अरुण तुम लोग सामान लेकर पहुँचो। छब्बीस से बत्तीस तक अपनी सीटिंग है, मैं आता हूँ। जल्दी करो तुम लोग।' वे पानी की टंकी की तरफ लपके।

टंकी थोड़ी दूर पर थी। वे लगभग भागते हुए वहाँ पहुँचे। गिलास आगे बढ़ा कर टोंटी खोली मगर पानी नदारद था। वे झुंझला उठे, बड़ा इंतजाम है साला, गर्मियों की सीजन और स्टेशन पर टंकी में पानी नहीं। उन्होंने इधर उधर नजरें दौड़ाई। जिस तरफ से वे चले आये थे उसके ठीक 'विपरीत दिशा' में प्याऊनुमा कोठरी दिखाई दी। वे भागकर वहाँ गए। बाहर चार छः खाली घड़े रखे थे। प्याऊ के दूसरे दरवाजे पर ताला पड़ा था। हारकर सामने के टी स्टाल पर उन्होंने पानी के लिए गिलास बढ़ाया।

जब पानी का गिलास लेकर वे कम्पार्टमेंट में पहुँचे सावित्री और बच्चे दरवाजे के पास टायलेट से लगे सहमे से खड़े थे। सारा सामान वहीं गैलरी में इधर उधर पड़ा था। 'यहाँ क्यों खड़े हो। तुम लोग [illegible]' पानी का गिलास शीनू को थमाते हुए उन्होंने पूछा।

'क्षमा कीजिये हमारी ये सीट्स आपको छोड़नी होंगी।'

'आपकी सीट्स ?' ताश खेलते युवकों में से एक ने किंचित आश्चर्य से पूछा ?
'जी हाँ फाम ट्वेन्टी सिक्स टु थर्टी टू।'

'उन लोगों ने लल्लन बाबू और उनके परिवार को गौर से देखा। पत्ते फेंक-कर वह लड़का खड़ा हो गया 'ठीक है आप लोग अपनी सीट्स ले लीजिये।' वे चारों उठ कर दूसरी खाली बर्थों पर चले गये।

गाड़ी ने जल्दी ही गति पकड़ ली। वे इत्मीनान से अपनी बर्थों पर जम गये। कंपार्टमेंट मे छाई शांति उन्हे कुछ अजीब लग रही थी। वे लोग ट्रेन से पहली बार ऐसा सफर कर रहे थे जिसमे न भीड़-भीड़ का शोर था न धक्का-मुक्की की रेलम् पेल। सब कुछ शांतिपूर्वक और इत्मीनान से चल रहा था। लल्लन बाबू को सफर की इस सुखद अनुभूति ने गुदगुदा दिया।

उनकी आँखें रह-रह कर साथ वाली बर्थों पर फिसलने लगीं, जहाँ वे फैशनेबुल लडके-लडकियाँ ताश खेलने मे मशगूल थे। उनके मांसल बदन से उठती सेंट की भीनी-भीनी खुशबू लल्लन बाबू को कुछ से कुछ बना रही थी। आँखों पर फ्रेम के चश्मे, बॉब हेयर, तंग जीन्स पैंट और ढीली-ढीली शर्ट मे पारे-सी मच-लती गोलाइयाँ।

इसी वक्त पता नही क्यो अचानक उन्हे मालती का ध्यान आया। उन्होंने मालती पर नज़रें टिका दी। उसके गालों की हड्डियाँ उभर आई थी। साँवले चेहरे पर झाँइयो के निशान कुछ ज्यादा स्याह लग रहे थे। आसपास के लोगो से निगाहे बचाती वह अपने मे सिमटी बैठी थी। उन्होने पत्नी के कपड़ो से आती हींग-जीरे की गंध को अपनी चेतना मे महसूस किया।

कंडक्टर के कंपार्टमेंट मे आने के साथ ही उनका ध्यान बँट गया। वह चैकिंग करता हुआ उधर ही आ निकला। उन्होंने जेब से टिकट निकाल लिये। 'पास है ?' कंडक्टर ने पूछा।

'जी नही। टिकिट हैं।' उन्होने उसे थमा दिये।

टिकिट पंच कर लौटाते हुए उसने पूछ ही लिया 'क्या करते हैं आप ?'

'जी ?' वे थोडा चौंके फिर सँभल कर बोले—'सर्विस करता हूँ पी एन्ड टी मे ऐज पोस्टमास्टर।'

'ओह आई सी' वह मुस्कराया 'एल. टी सी. पर चल रहे हैं।'

उन्हें लगा जैसे किसी ने चौराहे पर थप्पड़ मार दिया है, 'जी हाँ-जी हाँ' वे ढंग से खीसें भी नहीं निपोर सके। किसी प्रकार ये दो शब्द उनके मुँह से निकले।

कंडक्टर दूसरी तरफ बढ़ गया। लल्लन बाबू ने मन ही मन उसे सैकड़ों फोश गालियाँ दे डाली, फिर भी मन का सन्ताप कम नहीं हुआ।

बर्थ से उतर कर महज चहलकदमी के लिए वे टायलेट गये। लौट कर नीचे रखा बैंडिंग अपनी बर्थ पर सिरहाने लगा लिया। भूरे मटमैले रंग का बैंडिंग जूट की एक पतली रस्सी से बाँध दिया गया था। उनके विवाह में मालती के किसी रिश्तेदार ने यह प्रेजेंट किया था। तभी से यानी बीस-बाइस वर्षों से यही एक मात्र बैंडिंग हर सफर में उन लोगों का साथ निभाता चला आ रहा था।

फर्स्ट क्लास के इस कंपार्टमेंट में अपनी बर्थ पर रखा यह बैंडिंग लल्लन बाबू को कष्ट दे रहा था। उन्हें लगा कि यह बैंडिंग और कनस्तर (और सन्दूक भी) यहाँ उनका मजाक उड़वा रहे थे।

सफर में हर बार वे सोचते थे कि अब की तनख्वाह मिलते ही बैंडिंग लेंगे लेकिन तनख्वाह मिलने पर खरीदने की गुंजाइश कभी न होती।

अपनी लाचारी से वे पहले ही दुखी थे। ऊपर से इस हालत पर और कुढ़न होने लगी थी। मालती से इतना भी न हुआ कि एक साफ-सी चादर ऊपर लगाकर बैंडिंग बाँधती और फिर यह रस्सी बाँधने की क्या जरूरत थी। बैल्ट नहीं थी न सही, अलगनी वाली प्लास्टिक की डोरी से भी बिस्तर बाँधा जा सकता था। कम से कम इतना गलीज तो न दिखता।

गाड़ी अगले स्टेशन पर रुकी तो प्लेटफार्म पर उतरकर वे अंग्रेजी का अखबार खरीद लाये। थोड़ी देर पेज उलटते रहे, फिर अखबार सिरहाने लगा कर लेट गये।

शाम पाँच बजे गाड़ी जम्मू पहुँची। वह रात उन लोगों ने जम्मू की एक डोरमेटरी में गुजारी। दूसरे दिन दोपहर को उन्हें श्रीनगर की बस मिल गई।

श्रीनगर पहुँचते-पहुँचते शाम हो चली थी। बस स्टैंड पर काफी चहल-पहल थी। लल्लन बाबू ने एक हल्की-सी अंगड़ाई लेकर बदन चटखाया, फिर एक गहरी साँस लेकर ढेर-सी कश्मीरी हवा फेफड़ों में भर ली।

चारों तरफ खुली और नरम धूप बिछी थी। मौसम बेहद खुशगवार था। सफर की थकान और खर्च की चिन्ता पल भर में हिरन हो गई। कर्ज-वगैरह

ही आदमी पर पलना ही रहता है। आखिर आदमी कमाता किसलिए है। अपने सुख के लिए न !

लल्लन बाबू को जिंदगी में सुख कम ही नसीब हुए थे। जैसा कि अधिकांश शहरी लोगों के साथ होता है। लल्लन बाबू भी गाँव के एक देहाती परिवार से ताल्लुक रखते थे। वह बीस-पच्चीस वर्ष पहले गाँव छोड़कर शहर आ गये थे और यहीं बस गये थे।

उनके पिता रियासत के जमाने में रायसाहब के यहाँ मुलाजिम थे। जिस कारिंदे के अधीन उन्हें काम करना पड़ता था, वह अव्वल दर्जे का काँइयां आदमी था। क्या मजाल कि कोई हेरा-फेरी उसकी नजर से बची रहे। उन्हें सूखी तनख्वाह में गुज़र करनी पड़ती थी। सस्ती का जमाना था, फिर भी आठ लोगों का उनका परिवार तंगी में रहता था। तंगी उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में शहरी लोग उसे लेते हैं। तब गाँवों में तंगी के मायने कुछ और थे।

लल्लन बाबू को अच्छी तरह याद है कि घर में केवल एक रजाई थी। पुरानी इतनी कि रूई टूट-टूट जाने से वह गुदड़ी ही बन गई थी। माँ उस रजाई में उन भाई बहिनों को दुबका कर करीब रोज ही सुई-डोरा लेकर बैठती।

पिता उस कोठे के एक कोने में पुआल के ढेर पर टाट बिछाकर पड़े रहते। सर्दी के बचाव के नाम पर तार-तार हुआ एक कम्बल था जिसे वह एक मोटी सूती चादर के साथ मिलाकर ओढ़ लेते थे।

मैट्रिक पास करते-करते लल्लन बाबू डाकखाने में अपनी सेवाएं देने आ पहुँचे थे। बेटे को नौकरी मिलने पर माँ-बाप की खुशी का ठिकाना न था। पिता ने सारे गाँव का मुँह मीठा करवाया था और देर रात तक लोगों की बधाइयाँ बटोरते रहे थे। नौकरी की खातिर लल्लन बाबू को गाँव छोड़कर शहर में रहना पड़ा। नौकरी कम उम्र में मिल गई थी तो विवाह भी जल्दी हो गया और विवाह जल्दी हुआ तो बच्चे भी जल्दी होते गये। चालीस तक पहुँचते-पहुँचते वह दो विवाह योग्य कन्याओं के पिता बन चुके थे। दोनों लड़कियों को दसवीं पास करा कर बिठा लिया था और उनके विवाह करने की चिंता में सूख रहे थे। उधर बड़ा लड़का अरुण इंजीनियरिंग में आने की तैयारी कर रहा था। दो छोटे बच्चे अभी स्कूलों में पढ़ रहे थे। खर्च पूरा था लेकिन तनख्वाह से पूरा नहीं पड़ता था। बस किसी तरह गाड़ी खींच रहे थे।

अपने परिवार का सहारा बनने की कामना में शुरू की गई नौकरी अपनी

गृहस्थी का भाड झोंकने चुकने लगी। उधर गाँव मे रह रहा परिवार और जर्जर होता चला गया। वे चाह कर भी कुछ नही कर पाते थे।

लल्लन बाबू का बचपन दरिद्रता के वातावरण मे व्यतीत हुआ था। वह तो पैसे की कदर जानते थे मगर पैसा उनकी कदर नही जानता था। वे जितना हाथ रोक कर खर्च करना चाहते, जरूरतें उससे अधिक हाथ खुलवा लेती। इस सफर के लिए भी उन्हे कर्ज लेना पड़ा था।

पूरे सफर मे वे अपनी बर्थ पर करवटें बदलते रहे थे। कर्जे की चिंता ने उन्हे रात भर सोने नही दिया था। सिर पर पहले ही कुछ कर्ज था। इधर वर्मा से वे हजार रुपये और ले आये थे।

इस मौके पर उन्हे बैंक का अपना आर डी एकाउण्ट बन्द करना पड़ा था। मालती की तरह उन्हे भी इस बात का दुख था कि साल भर बाद ही यह एकाउण्ट बन्द करना पड़ा था। पाँच साल एकाउन्ट चलता रहता तो पूरे आठ हजार रुपये हो जाते। आर डी तोड़ने के बाद भी बारह सौ रुपये मिल पाये थे। कश्मीर मे पन्द्रह दिन गुजारने के लिए यह रकम नाकाफी थी। लिहाजा कर्ज तो बढ़ना ही था।

ठहरने की व्यवस्था के लिए वे होटल दीपशिखा पहुँचे। इस होटल के बारे मे वर्मा ने ही बताया था कि अच्छा होटल है और चार्जेज भी काफी रीजनेबल।

लल्लन बाबू ने कमरों के रेट पता किये तो कलेजा बैठ गया। सत्तर रुपये प्रति कमरा, होटल के नियमों के मुताबिक वे लोग एक कमरे मे नही ठहर सकते थे। एक कमरे मे दो बेड यानि उनके परिवार के लिए तीन नही तो कम से कम दो कमरे लेना तो जरूरी था। सिर्फ रात गुजारने के लिए एक सौ चालीस रुपये। वह अब रात को सारे लवाजमे को साथ लिए कहाँ जगह तलाशते फिरे। उनके सामने कोई चारा न था। आखिरकार दो कमरे लेने ही पड़े।

होटल का बेयरा कमरे खोल सामान रखवा कर चला गया था। लल्लन बाबू ने सामान एक तरफ रखा और बेड पर पसर गये।

शाम सिमट चली थी। रात का धुंधलका छाने लगा था। कमरे की खिड़कियाँ बंद कर वे बाथरूम मे जा घुसे। तरोताजा होकर आये तो चाय की तलब महसूस हुई। बच्चो को भी भूख लग रही होगी, उन्होंने सोचा। वे उठे और स्विच बोर्ड पर लगा बटन दबाकर बेटर के लिए बेल दी।

छपा हुआ मीनू उनके सामने रखा था। लेकिन वे तुरन्त तय नहीं कर पाये कि भोजन में क्या मँगवाया जाए। बेयरा आर्डर के इन्तजार में सिर झुकाये खड़ा था। इधर उनकी मुश्किल यह थी कि मीनू पर रेट्स लिखे हुए नहीं थे। बेयरे से पूछना उन्हें ठीक नहीं लगा। थोड़ा सोचकर उन्होंने दाल, आलूदम और चपातियों के लिए छः थालियों का आर्डर दे दिया।

उन्होंने पहले भी दो चार होटलों में खाया खाना था। लेकिन उसके सामने उन्हें होटल तो क्या ढाबे ही कहा जायेगा। सही मायने में किसी होटल में खाना खाने का मालती और बच्चों की तरह उनका भी पहला अनुभव था और यह अनुभव काफी सुखद रहा।

खाना खाकर बच्चे नरम-गरम बिस्तरों में जा दुबके। दिन भर की थकान और भरे पेट का नशा उन पर नींद बनकर छा गया।

उन्होंने एक ममता भरी दृष्टि अपने परिवार पर डाली, कुर्सी से उठे, गहरी नींद में सोये अपने बच्चों को उढ़ाया, फिर सहज संतोष से पुलकित होकर वापस कुर्सी पर आकर बैठ गये। मालती उठकर बगल वाले कमरे में जाकर लेटी रही।

होटल थोड़ा महँगा जरूर था लेकिन था अच्छा। आज बहुत खुश थे लल्लन बाबू। आदमी को जिन्दगी में और चाहिये क्या? यही कि उसके घर-परिवार के लोग सुखपूर्वक रह सकें।

उनके तो सफर की शुरुआत कुछ ऐसी स्थिति में हुई कि उस उम्र तक वे रास्ते के कंकड़ ही बीनते रहे। अपने आस-पास बिखरी हरियाली पर नजर डालने का अवकाश ही नहीं मिल पाया। बेहद उबाऊ, नीरस और थका देने वाली जिन्दगी के अभ्यासी हो गये थे वे और इसी साँचे में परिवार ढल चला था।

नहीं अब और ज्यादा टूटन बर्दाश्त नहीं करेंगे। चेंज बहुत जरूरी है, जीवन में पहली बार उन्हें लग रहा था कि एक पति और पिता की हैसियत से उनके कुछ ऐसे कर्तव्य हैं, जो रोजमर्रा की ढर्रे वाली जिन्दगी से थोड़ा अलग हटकर हैं।

लल्लन बाबू उठे और आहिस्ता से बक्से का ताला खोलकर डायरी निकाली। डायरी लेकर वे बेड पर आ गये। आज का खर्च डायरी में दर्ज करना जरूरी था कि ताकि अंदाज रहे।

सहसा वे उठे और बेयरा बुलाने के लिए बैल का बटन दबाया। दरअसल

उन्हें चाय की तेज तलब महसूस हो रही थी। एक चाय और सही, उन्होंने सोचा, आज के इस आखिरी खर्च के बाद ही डायरी में हिसाब लिखेंगे।

बेयरा चाय लेकर आया तो उन्होंने उसे रोककर बिल लाने को कह दिया। 'बिल ! क्या साहब सुबह होटल छोड़ रहे हैं ?' लड़का आश्चर्यचकित था। 'होटल नहीं छोड़ रहे भाई। खाने का बिल ले आओ।'

लड़का चला गया। थोड़ी देर बाद वह आया और उनके हाथ में बिल थमाकर लौट गया।

'बहत्तर रुपये पचास पैसे।' लल्लन बाबू ने बिल को कई बार गौर से यहाँ तक कि उलट-पुलट कर भी देखा। बिल पर लिखे एक-एक आइटम और रेट पढ़कर जोड़ मिलाया। जोड़ सही था यानी बहत्तर पचास।

एक दिन में एक वक्त का पेट भरने का जुगाड़ बहत्तर रुपये ! नहीं-नहीं। इतना खर्च कर पाना उनकी सामर्थ्य के बाहर था। एक सौ चालीस रुपये ठहरने पर और करीब इतने ही खाने पर यानी दो सौ अस्सी रुपये रोज का नेट खर्च। इंपॉसिबिल। पन्द्रह दिन ठहरना था उन्हें। तीन सौ रुपये रोज से साढ़े चार हजार होते हैं जबकि वे कुल तीन हजार रुपये का इन्तजाम कर चले थे। इसमें से भी एक हजार रुपये बतौर एहतियात वे अपने पास दबाये हुए थे। मालती और बच्चों को इन रुपयों की भनक तक न थी।

थोड़ी देर पहले उनका मन जिस गर्व और संतोष से फूल उठा था, उसमें खाने का बिल जैसे सुई बनकर चुभ गया। उनका सारा उत्साह ठंडा हो गया। अपनी स्थिति पर उन्हें तरस कम क्षोभ अधिक था। कश्मीर, मसूरी या नैनीताल सब अमीरों के चोंचले हैं। घर से बाहर निकलकर एक की जगह चार पैसे खर्च कर सको, तो जिंदगी के मजे लूटो और ऐसा वही लोग कर सकते हैं, जिनके पास अनाप-शनाप पैसा है। कोई मास्टर, बाबू या टकियल नौकरी-पेशा क्या खाकर शिमला-कश्मीर घूमेगा। लल्लन बाबू बहुत ऑब्जेक्टिव होकर सोच रहे थे कि मडवाइजर बाबू उन्हें देखकर हँसा था तो उन्हें बुरा क्यों लगा था। बुरा लगना ही नहीं चाहिये था। वास्तव में फर्स्ट-क्लास के उस कंपार्टमेंट में वे उस व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के यथार्थ पात्र थे।

उन्होंने नाइट लैंप का स्विच ऑन कर ट्यूब लाइट बंद की। दरवाज़े और खिड़कियों पर लगे पर्दे ठीक किये, फिर अपने कमरे में सोने गये।

दूसरे दिन सुबह से ही वे ठहरने की माकूल जगह तलाशने निकल पड़े। काफ़ी दौड़-धूप करने पर उन्हें एक कमरे की जगह मिल गई। यह शहर के एक

मोहल्ले में बने किसी पुराने मकान का कमरा था। कमरे में मोटा सूती फर्श बिछा था जिसके बीचों-बीच एक पुराना गलीचा बिछाकर मकान मालिक ने कमरे को सुरुचिपूर्ण बनाने की कोशिश की थी।

होटल में ठहरना उनकी सामर्थ्य से परे था और किसी डोरमेटरी में रात गुजारना उन्हें पसंद न था। यहाँ होटल जैसी सुविधाएं तो नहीं थी, फिर भी किराये को देखते हुए कमरा बुरा नहीं था। बल्कि उन्हें आवास की यह व्यवस्था आदर्श प्रतीत हुई। दिन भर घूमो-फिरो, चाहे जहाँ खाओ-पिओ, जब चाहो तब अपने दड़बे में आकर घुस रहो। उन्होंने मकान मालिक को एक हफ्ते का पेशगी किराया देकर कमरा बुक कर दिया।

सूरज डूब रहा था। घने वृक्षों की सघन छाया में हवा की सरसराहट बंशी के स्वरों की मानिंद तैर रही थी। उधर चिनार के लम्बे वृक्षों से छनकर आ रही कुनकुनी धूप से जलाशय नहा उठा था। तिरछी सूर्य किरणें झिलमिलाते पारे में सिंदूर घोल रही थीं। पक्षियों की चहचहाहट का शोर वातावरण को और अधिक मोहक बना रहा था। कितना नैसर्गिक सौंदर्य है? उनका कवि-मन प्रकृति की इस उन्मुक्त छटा पर मुग्ध हो उठा।

लल्लन बाबू ने किसी जमाने में अपनी आठवीं कक्षा में हिन्दी पुस्तक में एक पाठ पढ़ा था—धरती का स्वर्ग–कश्मीर।' उन्हें यह पाठ विशेष प्रिय था। तभी से उनके मन में कश्मीर घूमने की एक साध थी, जो अब एल. टी. सी मिल पाने की वजह से पूरी हुई थी।

उन्होंने एक कंकड़ उठाकर जल की सतह पर उछाला, फिर बड़ी देर तक सूर्य-बिम्ब को किरच-किरिच होकर पानी में टूटते और जुड़ते देखते रहे। 'वाकई कश्मीर धरती का स्वर्ग है। अनायास वे कह उठे।

मन के आह्लाद को वे दबा नहीं सके। उन्होंने हाथ के संकेत से मालती को पास बुलाकर कहा—'देखती हो कितनी खूबसूरत है।'

'क्या' उचाट नजरों से उधर देखते हुए मालती ने पूछा।

जलाशय की ओर उठता हुआ उनका हाथ नीचे गिर गया। इस 'क्या' का क्या जवाब देते लल्लन बाबू। सौंदर्य मन की आँखों से देखा जाता है। किसी की आँख में अंगुली गड़ाकर तो उसे सौंदर्य के दर्शन नहीं कराये जा सकते।

मालती की मन स्थिति उनसे छिपी नहीं थी। जबसे वे लोग यहाँ आये थे तभी

से वह अव्यवस्थित-सी थी। वे देख रहे थे कि कश्मीर आकर उसे कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी।

मालती को अच्छी तरह जानते थे वे। आखिर उनकी पत्नी थी। उसका सौंदर्य-बोध सदा से इतना भोथरा नहीं था। दरअसल जिन्दगी की जिस हालत में वह गुजरती रही थी, उसमें किसी सौंदर्य को निरखने-परखने का उसे अवसर ही कब मिल सका था।

मालती के सोचने का अपना तरीका है, जो शायद हर स्त्री का होता है। पुरुषों की बनिस्पत स्त्रियाँ अधिक व्यावहारिक होती है। प्राय पुरुष हवाई किले बनाने में माहिर होते है। वे वैसा आचरण भी कर बैठते हैं और परिणाम सारे परिवार को भुगतना पडता है। इसके विपरीत स्त्रियाँ जीवन की मूल समस्याओं से सीधे-सीधे जुडी रहती है, इसलिए उन समस्याओं को उनसे बेहतर और कौन समझ सकता है।

वे कल गुलमर्ग में हुई घटना के बारे में सोचने लगे। बच्चे वहाँ हॉर्स-राईडिंग की जिद करने लगे थे। मालती ने बच्चो को झिड़क दिया था। लेकिन वह ही नहीं माने थे। उन्होंने घोडे वाले से बात की। चार्जेज सुनकर वह सोचने को विवश हुए थे। उन्होंने कई घोडे वालो में पूछ देखा था, लेकिन इससे कम पर कोई भी टस से मस नहीं हो रहा था।

एक बार उन्होंने सोचा कि प्रोग्राम कैंसिल कर दिया जाये, फिर ख्याल आया बच्चों का मन ही तो है। इन्हें फिर कब-कब यहाँ आना नसीब होगा। वे घोड़े वाले को आवाज देने जा ही रहे थे कि सैलानियों का एक झुण्ड आया और बिना मोल-भाव किये घोडों पर सवार होकर चल दिया। लल्लन बाबू और उनका परिवार मुँह बाये खडा देखता रह गया था।

शाम को श्रीनगर लौटकर बच्चे गुलमर्ग की सैर-चर्चा में खो गये। उस रात मालती ने खाना नहीं खाया था।

लल्लन बाबू ने पत्नी की ओर देखा। 'आओ चलें।' आगे बढ़ते हुए उन्होंने धीरे से कहा।

'मैं सोच रही थी कि अब हमें वापस घर चलना चाहिये।' वह बोली।

'दो चार दिन और ठहर लो एल टी. सी. की बदौलत घूमना-फिरना हो गया। चलना तो है ही।'

'क्या फायदा तुम्हारी इस एल. टी. सी. से। रोटियों से ज्यादा आटा पलोथन में लग गया। सच कहूँ' धरती में आँखें गड़ाते हुए वह बोली— 'मैं तो अब

एक दिन भी यहाँ नहीं रहना चाहती। हर कदम पर पैसा चाहिये। बच्चे नई चीजें देखते हैं तो उनका मन ललचाता है।' वह चुप हो गई। ललन बाबू ने कोई जवाब नहीं दिया। दोनों आँखें झुकाये साथ-साथ चलते रहे। थोड़ी देर बाद मालती ने जैसे उनका मन टटोलने के लिए, कहा—'आप ठीक समझें तो थोड़ा और रुक लेंगे।'

'नहीं नहीं, कल ही चलना ठीक रहेगा। सही कहती हो तुम, मैं खुद भी यही सोच रहा था।' उन्होंने कहा और सधे हुए कदमों से चलते रहे।

सूरज अपनी किरणों का जाल समेट रहा था। साथ-साथ सिमट रही थी रोशनी, उनकी परछाइयाँ लम्बी होती जा रही थीं, अँधेरा घिर आने की तैयारी कर चुका था।

उसका दर्द

माधव नागदा

मोतीभाई ने दाहिने हाथ की अगुलियों को तीन बार दरवाजे की दहलीज और तीन ही बार अपने माथे से छुआ। होठों में कुछ बुदबुदाया। वही, जो रोज दुकान खोलते वक्त बुदबुदाया करते हैं। ताले खोलकर शटर को ऊपर की ओर हल्का-सा धक्का दिया। एक कर्कश आवाज उठी और आसपास की दुकानों में निकलने वाली ऐसी ही आवाजों के साथ मिलकर भाग गई।

दुकान से गरम-गरम भभका निकला। सीलन, जग और रातभर से कैद हवा का मिश्रण। मोतीभाई ने नाक के पास हथेली लेजाकर दो बार सू-सू किया। आज सूर्य स्वर चल रहा था, सो उसने पहले दाया पाव दुकान पर रखा। बाया पाव उठाया ही था कि पीछे से अभिवादन किया, 'मोतीभाई राम-राम।'

'साली कुत्ते की औलाद।' दुकान का साइनबोर्ड एक सिरे से खुलकर नीचे झूल गया था। मोतीभाई जैसे ही दुकान पर चढ़े कि बोर्ड का किनारा खोपड़ी से आ टकराया। थोड़ी देर वह माथा पकड़कर वहीं खड़े रहे, 'सुबे-सुबे किस हरामी का मुह देखा था' अभिवादनकर्त्ता भी अपने मन में यही बात लिये वहा से खिसक गया।

मोतीभाई ने स्टूल पर चढ़कर साइनबोर्ड को पुन यथास्थिति स्थापित किया। कई वर्ष पहले इस पर साफ चमकदार अक्षरों में लिखा रहता था, 'मोतीभाई तालेवाला।' पर धीरे-धीरे बोर्ड की हालत भी मोतीभाई की ही तरह खस्ता होती चली गयी। रग उखड़ने लगा। जग फफटने लगा। अक्षर गायब होने गए। आज अगर कोई मोतीभाई की दुकान केवल साइनबोर्ड के भरोसे ढूढने निकले तो सारा शहर छान मारने पर भी वह निराश ही होगा। बीच के दोनों शब्द गायब हो चुके हैं, रह गया है केवल 'मोती⋯⋯वाला।'

यदि कोई मोती लेने मोतीभाई की दुकान पर पहुच जाए तो? भीतर छ बाई पाच फुट की उस कोठरिया के एक कोने में बिखरे दिखाई देने जग लगे

ताले। उनमे से अधिकाश तो इतने बेकार कि उनके मालिक भी इन्हें वापस लेने नही आये थे। उधर लकड़ी के एक मैले चीकट खुले डब्बे में भरी हुई थी चित्र-विचित्र चावियां और लोहे के कई खांपे-खीले। इन्ही को मोतीभाई काटता-तराशता और बिन चाबी के तालों मे बैठाकर ग्राहकों को सौंपता। वैसे मास्टर चावियों का एक गुच्छा भी था जो पलस्तर उखड़ी दीवार पर टगा था। एक कोने में कुछ टूटी-फूटी, नयी-पुरानी टार्चों का ढेर था। हां, मोतीभाई टार्च रिपेयरिंग का काम भी करता था। यही नही मौका पड़ने पर टार्च के खारिज सैल भी चार्ज कर लेता था। वह सैल की चपड़ी उतारकर नौसादर के घोल मे डालता। दस-बारह घण्टे पडा रहने के बाद मुह पुनः बन्द करता। और सैल चालू! मोतीभाई का कुछ नहीं लगा पर ग्राहक उसे खुशी-खुशी पचास पैसा हर सैल का थमाता। तीन-चार रुपये मे नया खरीदने से तो यह बेहतर है। लेकिन मोतीभाई का सैल वाला धन्धा ज्यादा चला नही। सप्ताह भर तो ठीक प्रकाश देते। पर बाद मे एकदम बैठ जाते और फूट भी जाते। उनमें से निकले गीले मसाले से बेचारी टार्च का बुरा हाल हो जाता।

'जे बजरग बाला, तोड ग्राहक का ताला'। मोतीभाई अगरबत्तियां जलाकर हनुमानजी की तस्वीर के चारो ओर घुमा रहा था। कोई तीन-चार साल पुराना कैलेण्डर था। चार साल पहले इन हनुमानजी का बदन सिन्दूर-सा चमकता था। चेहरे पर लाल-लाल आभा थी। कन्धे पर भारी-भरकम गदा और एक हाथ कमर पर रखकर खडे रहने का हनुमानजी का यह अन्दाज मोतीभाई मे जिन्दगी से लडने की नयी ताकत फूकता। वह जीतता नही तो हारता भी नही। बाजी बराबर छूटती। पर धीरे-धीरे हनुमानजी पर धूल, कालिख और बीता हुआ वक्त चिपकता गया। अब ऐसे लगता है, जैसे ये भी थक हार कर मोतीभाई की सीलनभरी दुकान मे अपने दिन गिन रहे हैं।

मोतीभाई ने दीवार के एक छोटे से छिद्र मे अगरबत्तियां ठूसी। वह हमेशा अगरबत्तियो की स्थिति ऐसी रखता कि उनसे निकलने वाला सारा धुआ हनुमानजी की नाक मे घुस जाता। फलस्वरूप हनुमानजी का चेहरा लगूर की तरह काला हो गया था।

'जै हनुमान ज्ञान गुण सागर।' एकाएक मोतीभाई उठकर घुटनों के बल बैठ गया। हाथ जोड़े और बानर आंखों से तस्वीर की तरफ ताककर धीमे-धीमे बुदबुदाने लगा, 'जै हनुमान ज्ञान गुण सागर, मेरी तमन्ना पूरी कर। बीवी को तू भला कर, दुकान मालिक से दया कर। राजू को आगे पढ़ा,

पैसों का जुगाड़ भिड़ा। बेटी बड़ी हो रही है, मेरी खाट खड़ी हो रही है। उसका भी तू ध्यान लगा, मेरी बात पे कान लगा।' मोती भाई ने लगभग चालीस मांगें गिना दीं। हनुमानजी भी परेशान थे। पहले मांगों की संख्या बहुत कम थी। पर जैसे ही वे भूले से कोई मांग मन्जूर करते, मोतीभाई पांच मांगें और पेश कर देता। हनुमानजी के लिए मोतीभाई उग्रवादी से कम नहीं था। इसलिए उन्होंने अब अपनी आंखें मूंद ली थी।

मोतीभाई पूजा से उठा। थमी हुई आंखों की कोरें भीगी हुई थीं। कुर्ते की बांह से कोरों को पोंछा और कुर्ता उतारकर एक तरफ टांग दिया। भीतर की बनियान हवा महल का काम कर रही थी। कपड़ा कम छिद्र ज्यादा। वह अपनी हमेशा वाली जगह पर उकड़ूं बैठ गया। एक तो बैठने का यह अन्दाज और दूसरे पूजा के समय कई देर तक घुटने जमीन पर टिकाये रखने से मोती भाई का पाजामा घिस गया था। वह घुटनों को बार-बार बेनकाब कर देता। पाजामे की इस हरकत के खिलाफ मोतीभाई की पत्नी जमकर लोहा लेती। जो भी कपड़ा हाथ आता, घुटनों पर चेप देती। फलस्वरूप मोती भाई के एक घुटने पर हरके लाल रंग के तो दूसरे पर हरे रंग के कपड़े का पैबन्द लगा हुआ था। दोनों ही पैबन्द अन्तिम सांसें गिन रहे थे।

इस सबकी मोतीभाई को कोई परवाह नहीं थी। उसके मिशन के आगे ये बाधाएं निहायत मामूली थीं। बेटे को पढ़ा-लिखा कर डाक्टर बनाना, बेटी के हाथ पीले करना, बीमार पत्नी का इलाज करवाना। और यह सब करने के लिए अपना पेट काट कर, पसीना बहाकर पैसों का जुगाड़ करना। यह था उसकी जिन्दगी का ध्येय। दूसरों की निगाह में बहुत मामूली, मगर मोती भाई के लिए एक मिशन। इसी मिशन को पूरा करने के लिए वह नये-नये हुनर के बारे में सोचता। उन्हें अंजाम देता।

मोतीभाई का हाथ सबसे पहले टार्चों की ओर बढ़ा। एक टार्च उठाई। उसकी लाल-लाल खोपड़ी पर अपनी सूखी अंगुलियों का शिकंजा कसा। थोड़ी ही देर में टार्च की खोपड़ी धड़ से अलग हो गई। खोखले धड़ में केवल जीभ थी। मोतीभाई ने गौर से देखा। सारी खराबी यहीं थी। एक छोटा चिमटा उठाकर जीभ को थोड़ा ऐंठा। खोपड़ी को वापस फिट किया और सेल डालकर ट्रायल ली। टार्च की चमक के साथ मोतीभाई की दुखी-आंखों में भी चमक तैर गई।

'चलो एक रुपया चित हुआ।' वह टार्च एक तरफ रखते हुए बड़बड़ाया।

'राम राम मोतीभाई।' एक राहगीर ने दुकान से गुजरते हुए कहा।

'राम राम।'

'राधेश्याम मोतीभाई।' कुछ देर बाद पड़ोसी दुकानदार ने कहा।

'मुझे मुझे मेरे मुंह से स्वाद परखने का इरादा है क्या?' मोतीभाई को 'राधे-श्याम' कहना सुनना कतई पसन्द नहीं था। वह राधा कृष्ण के प्रेम को हरजाईपन समझता था। वह चिढ़ता, लोग उसे चिढ़ाते।

'राधेश्याम।' दूसरा दुकानदार बोला। मोतीभाई ने झुंझलाकर एक ताले का अस्थिपंजर उठाया। उसके एक-एक अंग को ध्यान से देखा। पर जल्दी ही उसकी आंखें थक गयी। दो-तीन बार मिचमिच किया। फिर इधर-उधर टटोलकर सदियों पुराना एक चश्मा ढूंढ निकाला। डण्डी की जगह पतली डोरी के फन्दे बना रखे थे। मोतीमाई ने अपने कान इन फंदों के हवाले किए और नाम मात्र की फ्रेम को नाक पर सेट किया।

'जय बजरंग बाला। तोड़ दुस्मन का ताला।' मोतीभाई ने गुहार लगाई। ताले से भिड़ने ही वाला था कि उसे एक आदमी हाथ में स्टोव पकड़े रास्ते से गुजरता दिखाई दिया।

'ओ स्टोव वाले भाई साहब।' मोतीमाई की आवाज सुनकर स्टोव वाले भाई साहब बिना होलो-हुज्जत के आ गये।

'क्या कोई खराबी है स्टोव में?'

'हां, मोतीमाई। इसका वाशर खराब हो गया। कम्बख्त पेच खुल ही नहीं रहा है।'

'बस इतनी-सी बात! आपको मोतीभाई के पास आ जाना चाहिये। उधर कहां जा रहे थे?'

'मुझे क्या पता कि तुम स्टोव भी ठीक करते हो?'

'क्या बात कही है आपने भी। अरे मोतीमाई सब ठीक कर सकता है। ताले, टार्च, सेल, स्टोव सब। अगर ठीक नहीं कर सकता तो केवल बीमार इन्सान।' मोतीमाई की आंखों के सामने एकाएक अपनी बीवी का अस्थिपंजर घूम गया। लगातार इलाज चलता है पर वह है कि ठीक होने का नाम ही नहीं लेती। आज उसकी दवाइयां खत्म है। अगले सप्ताह का कोर्स ले जाना है। यानी

बीस रुपयों का खर्च। राजू के स्कूल खुलने वाले हैं। राजू का ध्यान आते ही उसके हाथों में फुर्ती आ गयी।

'लो बाबूजी! आपका स्टोव एकदम रेडी।

'अरे वाह मोतीभाई, बड़ी फुर्ती है तुम्हारे काम में।

'मैंने कहा न आपको, मोतीभाई बीमार आदमी के अलावा सबको ठीक कर सकता है, बीमारी का इलाज करेगा मेरा बेटा राजू। डाक्टरी पढ़ रहा है।

'अच्छा! आपका बेटा डाक्टरी पढ़ रहा है! बड़ा [illegible]

'अजी नहीं, नहीं। ग्यारहवीं की परीक्षा दी है। साइंस [illegible]।

स्टोव वाले बाबू ने मोतीभाई के चेहरे पर एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि डाली। फिर धीमे से बोला, 'मोतीभाई, खुदा करे तुम्हारा सपना पूरा हो। पर अभी बहुत मुश्किलें हैं रास्ते में। पहले तुम्हारा राजू [illegible] ही पास होगा, तब जाकर डाक्टरी की पढ़ाई शुरू होगी। [illegible] पांच साल के लिये अनाप-शनाप खर्चा। मेरा भाई [illegible] है और [illegible] मुश्किलों का बखूबी पता है।'

दूसरे दिन मोती की दुकान भरी-भरी सी लगने लगी। दो-तीन पीपे अड़ोस-पड़ोस से ले आया था। एक पुरानी छतरी अपने ही घर के अटाले से ढूंढ-ढाढ़कर लेता आया। एक तरफ पीपे रखे। दूसरी तरफ छतरी। मोतीभाई अपने एक लोहार दोस्त से धौंकनी मांग लाया था। दुकान के नीचे ही फुटपाथ पर धौंकनी स्थापित की। गड्ढा खोदकर भट्टी बनायी। कोयले भरे और भट्ठी सुलगा दी। एक दो पीतल के बर्तन वह मकान मालकिन से लाया था यह वायदा करके कि चमका दूंगा मगर पैसा एक नहीं लूंगा। एक थाली अपनी भी लेता आया था।

दुकान का विस्तार देखकर मोतीभाई मन ही मन पुलकित हो रहा था। कहां से शुरू करे! पीपे से, छतरी से या कलई से। अथवा ताले से। उंह, ताले टार्च तो रोज के हैं। तो फिर पीपे से। आज तो बीस-पच्चीस सीधे हो जाने चाहिये। कल भी दवा नहीं ले जा सका। बेचारी ज्यादा बीमार पड़ेगी। बस, जम के बैठते हैं। छः सात रुपये पीपों के आ जायेंगे। ताले ठीक किये पड़े हैं, ग्राहक आ गये तो कुछ ये। कलई शुरू में फोकट की है, पर आ जायगा कोई माई का लाल, सारा दिन पड़ा है।

आज के भविष्य पर आश्वस्त होकर मोतीभाई ने सबसे पहले पीपा उठाया।

'राधेश्याम।' पड़ौस के नाकोड़ा भेरू किराणा मर्चेंट ने अभिवादन ठोका।

'साली कुत्ते की औलाद।' मोतीभाई ने प्रत्युत्तर दिया, इतना धीमे कि दुकानदार सुन न सके। फिर पीपे को काटकर ताबड़-तोड़ हथौड़िया पटकने लगा।

'बस करो, बस करो मोतीभाई। कान के दरवाजे फट रहे हैं। किराणा मर्चेंट कानों में अंगुलियां ठूसकर रिरियाया।

'बच्चू और बोलो राधेश्याम।' मोतीभाई दुकानदार की परेशानी पर आनन्दित होकर हथौड़ी बजाए जा रहा था, हालांकि पीपे की कटी तेज धार पूरी तरह मुड़ चुकी थी।

थोड़ी ही देर में ढक्कन वगैरह लगकर पीपा पेटी बन गया। मिनट भर मोतीभाई मुग्धभाव से उसे देखता रहा। फिर एकाएक ठहाका मारकर हंस पड़ा। शायद बहुत-बहुत दिनों बाद।

'क्या बात है मोतीभाई।' एक राहगीर चलते-चलते रुक गया था।

'बात क्या है, वो देखो पीपे की पेटी बन गई। मैंने आदमी को औरत बना

दिया। मोतीभाई क्या नहीं कर सकता है।' फिर हनुमानजी की तस्वीर की तरफ श्रद्धा-दृष्टि फेंककर गाने लगा, 'जै बजरंग बली, मोती की दुकान चली।'

उसने काट पीटकर बाकी के दोनों पीपों को भी औरत बना दिया। अब ? अब कलई की जाय। वह नीचे उतरा। भट्टी का निरीक्षण किया। अच्छी तरह चेतन हो गयी थी, एक बार रोड पर इधर-उधर देखा।

एक ग्राहक खड़ा था दो पीपे लेकर। मोती की बाछें खिल गईं। तो लोगों को मालूम पड़ गया कि मोती पेटी भी बनाता है। उसने पीपे रख लिए। बोला, 'शाम को ले जाना। कोई छतरी ठीक करवानी हो या बर्तनों पर कलई करवानी हो तो ले आना।'

मोती ने थाली भट्टी पर रखी और धौंकनी से धीरे-धीरे हवा देने लगा।

'मोतीभाई एक बात कहूं अगर तुम्हें बुरा नहीं लगे तो।' सिरामा मर्चेंट बोला।

'अच्छा लगने वाला तुम कहते ही कब हो ? चलो बोलो।'

'तुमने कलई की दुकान अच्छा दिन देखकर नहीं मांडी।

'क्या बकते हो ?' मोती ने पलटकर दुकानदार की तरफ देखा।

'ठीक कहता हूं। मन्त्री जी आने वाले हैं। यहां भीड़ ही भीड़ इकट्ठी हो जायगी। पुलिसवाला तुम्हारी दुकान उठवा देगा।

'क्यों उठवा देगा ? तुम सेठ लोग आधी-आधी सड़कें घेरकर पड़े हो तो पुलिसवाला कुछ नहीं कहता और मोतीभाई दो फुट जगह घेरकर अपनी गरीबी का इलाज करना चाहता है तो सबके मिरचें लग रही है। नहीं उठाऊंगा दुकान। मन्त्री कोई मेरे ऊपर नहीं आ रहा है।

थाली गरम हो चुकी थी। सण्डासी से पकड़कर नौसादर बुरका। धुएं का बादल उठा और मोती के फेफड़े में घुस गया। खांसी उठी। मगर वह डटा रहा। रांगा लगाया। रूई ली और तेजी से हाथ घुमाने लगा। अर्धनिद्रा ऊपर उसी पर चुनी हुई थाली दाग कर निखार बराबर कर दिया। थाली के चेहरे पर चमक आ गयी। मोती ने नखरा बदला। थाली मुस्कराने लगी।

'वाह भाई वाह, चेहरा देख लो।' मोती ने कहा और थाली में अपना चेहरा निहारने लगा। शीघ्र ही उसकी मूंछों पर हाथ फिर गया।

'मोतीया, तू इतना जल्दी बूढ़ा हो गया। तेरी उमर क्या है ? सिर्फ ... बाल और चेहरे के ... सिर पर खिचड़ी बाल, ...

हम उधर भी अभी तक धीरे धन घूमते हैं। सच है जिन्दगी की मार बुरी होती है, सहन से भी बुरी। फिर, घर में जिन्दगी तू भी आने वाली। जब तक हाथों में दम है तो भी तुमसे हारने वाला नहीं है। तुमसे बदला लेने को तो मैं अपने बेटे को डाक्टर बना रहा हूं।'

'मोतीभाई राम-राम।'

'राम-राम, ओह बाबूजी आप।' ये वो बाबूजी थे जो कल स्टोव ठीक करवाकर गए थे।

'किन ख्यालों में खोए हो! ये बर्तन रखे हैं, कलई कर देना।' मोती ने देखा कि उनके पास लगभग दर्जन बर्तन पड़े हैं। इतने एक साथ! उसने एकबार बाबूजी की तरफ देखा और एकबार भीतर हनुमानजी की ओर। आज तो बाबा मेहरबान है।

'ठीक है, दो घण्टे बाद ले जाना। हां, एक बात पूछूं बाबूजी!'

'बोलो?'

'छ सौ से कम में काम नहीं चलेगा?

बाबूजी कल के प्रसंग से जुड़ गया। दयार्द्र होकर बोला, 'हिम्मत और मेहनत से काम लो मोतीभाई। तुम्हारा बेटा जरूर एक दिन डॉक्टर बनेगा।'

इतने में दो लोग और आए कुछ बर्तन लेकर। मोती ने वे भी रख लिए। एक ग्राहक अपना ताला लेने आया। मोती ने उसे भी निपटाया। वह मन ही मन खुश हो रहा था। आज इतने पैसे जरूर आ जाएंगे कि वह अपनी बीवी के लिए दवाइयां खरीद सकेगा और कुछ गेहूं भी। कुछ दिनों बाद ग्राहकी और भी बढ़ेगी। कुछ बचा भी सकेगा, जिसमें से कुछ राजू की पढ़ाई पर खर्च करेगा और कुछ कमला के ब्याह पर। उसकी आंखों में सपने तैरने लगे।

वह वापस नीचे उतरा। बर्तनों को जांचा परखा। उन्हें पहले मांजना पड़ेगा।

सड़क पर चहल-पहल बढ़ने लगी थी। आम दिनों से कुछ ज्यादा। तांगे में बैठा एक आदमी माइक पर तेजी से कराहता हुआ निकल गया। जगह-जगह स्वागत द्वार बन गए। उधर बायीं ओर टैण्ट लग गया। सड़क को लोग इस तरह सजा-संवार रहे थे जैसे बहुत वर्षों बाद उसका परदेसी पति घर लौट रहा हो। सड़क का चेहरा जो हमेशा गड्ढों और झुर्रियों से अटा रहता था, इतना चिकना हो उठा कि मोतीभाई को पहचान में नहीं आ रहा था। इतने

में दो-तीन पुलिस वाले चहल कदमी करते हुए निकले। मोती को लगा कि वे उसकी दुकान को घूरते हुए जा रहे हैं। खूब घूरो प्यारो, बन्दा यहां से डिगने वाला नहीं है।

मोतीभाई ने बर्तनों को मिट्टी से अच्छी तरह मांजना शुरू किया।

'मोतीभाई राधेश्याम।'

कौन हरामी है। मोतीभाई ने थोबड़ा उठा कर देखा। चार नौजवान एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखे खड़े थे।

'चुप, मोतीभाई से राधेश्याम नहीं, सीताराम बोलो। मोतीभाई सीताराम।' उनमें से एक समझदारी का अभिनय करता हुआ बोला।

'हां, अब हुई न बात। ऐसे बोला करो।' मोती ने मुंह मोड़ा।

'मोतीभाई, हमारे एक बात समझ में नहीं आयी। तुमने सोडा के झूठे बर्तन मांजने का काम कब से शुरू किया?'

भाई साहब, झूठे बर्तन नहीं हैं। कम्पनी के लिए हैं। बिना मांजे चमक अच्छी थोड़े ना आती है। अरे भाई काम करना है तो टीपटॉप करो। यहां तक कि बीबी भी हो टीपटॉप और दो के बाद फुलस्टॉप। क्या समझे।

'नही, मैं दुकान नही हटाऊगा। हटवाना है तो उनको हटवाओ जो आधा रास्ता घेरकर बैठे हैं।'

'शाबाश। बिल्कुल सही कहा मोतीभाई ने। मोतीभाई डटे रहो, हम तुम्हारे साथ हैं।' चार-पांच युवको की दूसरी टोली आ गयी थी। मोती ने राहत की सास ली। चलो इस लट्ठ राज में कोई अपना तो है।

'मोतीभाई हटाओ ताम-झाम।' मोतीभाई के बायीं ओर से युवक झल्लाये।

'मोतीभाई मत हटाओ।' मोतीभाई के दायें वाले युवक बोले।

देखते ही देखते कलई की दुकान राजनीति का अच्छा खासा अखाड़ा बन गई। दोनों पक्ष अपनी जोर आजमाइश करने लगे। मोतीभाई बीच मे बैठा बुद्धुओं की तरह कभी एक पक्ष को देखता तो कभी दूसरे को। बात तूल पकड़ती गयी।

'अरे भाई, तुम लोग खामखां मेरी दुकान के पीछे क्यों झगडते हो? लो मैं हटाए देता हू आज का ही तो सवाल है'।

'नही, हरगिज नही हटाओगे मोतीभाई। शोषण के आगे कभी मत झुको।' दायी ओर वाले युवक थे।

'बड़े आये शोषण वाले। ऐसी ही चिन्ता है तो मोतीभाई को कोई बडी और अच्छी दुकान क्यो नही दिलवा देते? देखना, हम लोग आज मोतीभाई के लिए मन्त्री महोदय से बात करेंगे।' बायें वालो ने पासा फेंका।

'झासे में मत आना मोतीभाई, तुम्हारी जो दुकान है वो भी बेच खायेंगे, सब चोर है।'

'चोर किसको कहता है रे।' युवकों का धीरज चुक गया। एक ने चोर कहने वाले की गर्दन दबोच ली दोनो दलों में एक जग-सी छिड गयी, ठोकरो से पीतल के बर्तन टनन्-टनन् करते सडक पर लुढकने लगे। मोती लपक-लपक कर पकड़ता और दुकान मे लाकर डालता। इतने मे दो पुलिस वाले आ गये उन्होंने युवको को अलग किया और मोती की तरफ आगें तरेरी, 'डोकरे, बीच सड़क पर बर्तन फैलाकर दगा भडवाता है। अब अगर नीचे तामझाम नजर आये तो सीधे हवालात भेज देंगे, समझा।'

मोतीभाई कुछ नहीं समझा। कई देर तक तो वह गुमसुम बैठा रहा। फिर धीरे-धीरे हरकत मे आया और तालों का काम हाथ मे लिया। लेकिन उसका

मन नहीं लग रहा था। आज सोचा था कुछ 'इनकम' होगी पर ये मन्त्रीजी आ टपके। वह अधूरे मन से काम करता गया। कभी खराब टार्च हाथ में लेता, तो कभी ताला। पर दिमाग में कभी बीमार बीवी दौड़ती तो कभी जवान बेटी। कभी राजू का भविष्य तो कभी लगातार खस्ता होती जा रही खुद की हालत।

पाण्डाल भर गया था। लोग उसकी दुकान के सामने तक बैठे थे। दो तीन दुकान के ऊपर बैठने लगे।

'नीचे-नीचे। दुकान में मन्त्रीजी नहीं है। नीचे बैठो।' वह चिड़चिड़ा उठा।

भाषण चल रहे थे। आवाज मोतीभाई के कानों से टकरा रही थी। किन्तु उसकी इच्छा नहीं हुई कि झाँक कर भाषणवक्ता को देखे। यह सब उसे एक खेल लग रहा था।

'अब आपके सामने मन्त्री महोदय अपना भाषण देंगे।

मोती के भीतर विद्रोह की अनपहचानी-सी लहर उठी। इन्हीं की बदौलत आज मेरी रोजी के टोकरें लगी। मेरी बीवी आज फिर बेइलाज रह गयी। उसका चेहरा एकाएक कठोर हो गया। उसने एक पीपा उठाया और पेटी बनाने में जुट गया। ठक्, ठक् ठक्।

पीछे बैठे हुए लोगों में हलचल मच गयी।

'मोतीभाई बन्द करो ये खट-खट।' कुछ लोग उबले।

'मोतीभाई चालू रखो अपना काम।' कुछ दूसरे लोग चिल्लाये।

मोतीभाई के हाथ रुक गये। मानो कोई बात। कोई अखबारबाजी। अभी भीड़ में दो गुट बन जायेंगे और गुत्थम-गुत्था हो जायेंगे। सारे समझते हैं कि मोतीभाई राजनीति खेल रहा है। मोतीभाई के दर्द को कोई नहीं समझता। कुछ देर बाद सब चले गए। जैसे बिमान उड़ गई हो। मोती ने दायरे के कोनों की तरफ देखा। जगह-जगह गड्ढे पड़ गए थे। बड़ा सोचेंगे लोग कि मोदिया बर्तन पोस्कर मारा। अब मुझे रातभर हाजिर कर इनको मोटें निकालनी पड़ेंगी।

'मोतीभाई अपना काम हो गया?' एक ग्राहक था। दो ताले देकर गया था कुछ दिन पहले।

'हाँ, एकदम रेडी। बहुत दिन बाद आए।'

'बाहर चला गया था। अभी आ ही रहा हूं। दुकान रास्ते में पड़ती है, सो
सोचा ताले भी लेते चलें।'

'ये लो।' मोती ने ताले ढूंढ कर ग्राहक को थमा दिए।

'अरे हां, मोतीभाई, आज यहां कोई मन्त्री आये थे न। क्या कहा। भाषण तो तुमने भी सुना होगा।'

मोती ने ग्राहक को घूर कर देखा। गनीमत यही थी कि अभी आंखों पर चश्मा चढ़ा हुआ नहीं था वरना ग्राहक नौ दो ग्यारह हो जाता।

'बताता हूं बैठो। क्या कहा वो नहीं, वरन् क्या करके गए वो।'

ग्राहक ने समझा कोई जोरदार बात हुई है। वह जमकर बैठ गया।

मोती ने एकबार फिर खाड़े-बूचे बर्तनों की ओर देखा, धौकनी की पिचकी नाली को देखा और अपने उत्सुक श्रोता से बोला, 'मन्त्रीजी आये थे और मेरी ऐसी-तैसी करके गए हैं।'

'ऐं?' श्रोता चौंका।

'तीस-पैंतीस रुपयों की कमाई होती उसकी जगह दस रुपल्ली भी नहीं आयी। अब बीबी की दवाएं क्या खाक लेजाऊं? कुछ दिनों में राजू के भी स्कूल खुलने वाले हैं। ये रफ्तार रही तो डॉक्टर बनना दूर सादी पढ़ाई भी नहीं पढ़ सकेगा। और कमला . . ।' ग्राहक उकताने लगा। वह उठ गया।

'पर भाई साहब मोती भी हार मानने वाला नहीं है।' ग्राहक चला गया। मोती ने दीर्घ सांस छोड़ी और बर्तनों की मोचें निकालने में जुट गया।

किस्तूरी का बेटा

कमलेश शर्मा

उढकाई टीन की किवडिया हल्की-सी धपकी से खुल गयी। धुँआ आँगन, बरामदे को पार कर बाहर भी फैल गया। एक हाथ से किवाड का पल्ला थामे दूसरे से ऊपर आते धुंए के बादल को हटाने का प्रयास करता भीतर झाँककर वह हल्का-सा खाँसा। धुंए के धुंधलके में डोलती आकृति उसे झुँझला गयी। खीजकर बोला, 'आ रांड कुण अठै है—का जाने, छोरी है कै लुगाई। बाबजो कोई हेलो पाडूं।' पास आ जाने पर भी नहीं पहचान पाया उसे। थोडा और भीतर की ओर सरक यहाँ-वहाँ देखता बोला, 'कुण रैवे है अठै ?'

'थाँ कुण ने हेरो ?' उसकी ओर मुख किये बोली वो।

'किस्तूरी बाई अठै ई रैवे काँई ?'

चौंक्सी-सी कूकी वो, 'काँ थू कुण है ?'

'मूं नाराण' क्षण भर चुप्पी रही फिर पूछा,

'किसो नाराण ?'

लरजती-सी आवाज में बोला, 'किस्तूरी बाई रो बेटो नारायण सिंग।'

रुलाई का वेग थामे ना थमे। स्पर्श करती अघाती ही नहीं, आँख ता जैसे देख ही नहीं पा रही थी। रोती जाती वयना-सा कर बोलती जाती, 'इतराक दिन कठै रयो म्हारा वाछड्या, मूं मरी कै जीती थनै याद नी आई ?' 'अबार कियाँ आया ?' आँखें पोछती बोली वो।

'लुक-छिप के आयो, भाग आयो।' सुनते ही उसे पकडकर अन्दर ले गयी, जैसे अभी भी वो छुपकर भागा हुआ कैदी हो।

बधक रक्त, सदियों का दास, अनावश्यक भय, जी हजूरी इन्हें घुट्टी में पिला दी गयी हो जैसे। माँ बेटे अभी भी उस हादसे से उबर ही नहीं पा रहे।

भीतर से मद्धिम रोशनी के संग उनकी मिली-जुली आवाजें भी टाट के परदे से छनकर बाहर तक सुनायी दे रही थी। कभी लगता दुहत्थड़ मारकर स्यापा रही हो, जैसे रुक-रुककर हल्की सिसकती भी जाती। पन्द्रह वर्ष का अन्तराल, यों अतीत, बीते हुए रजवाड़े से जुड़े वर्ष, बहुत कुछ था कहने को।

अगले दिन नया ओढ़ना ओढ़े किस्तूरी, बेटे को संग लिए चली आयी। लगता था काम आज देर से करेगी। आप बीती सुनाने को, जी हल्का करने को मुझसे अच्छा श्रोता मिलता भी कहां। विश्वास भी उसे इतना था, कहा करती—

'बाई-सा कने बात यूं जमा हो जावे जिया समन्दर मे कांकरी फैंको और बस निश्चिन्त।'

'बाई-सा, इने कठेई काम सूं लगावणो पडसी', आदेश-सा देती बोली वो। फिर बेटे की ओर मुखातिब हो बोली, 'बाईसा कनै आवो करो, सरमावा की जरूरत नी है।'

वह उठकर सीधा मेरे पाँव छूने आगे बढ़ आया। 'कहाँ था रे अब तक?'

सुनते ही ये कहा। जिसे मैं मुस्कान समझ कुछ और कहूँ—खिचे होठ और खिंच गये। मुखमुद्रा ही बदल गयी, आँखों से बहे आँसू जैसे बता गये हों सभी कुछ। कहा तो बस माँ ने ही।

कहानी भी अजीबो-गरीब वही दरोगे, डावड़ियों का इतिहास रजवाड़ों की दास्तान, सुख कम, यातनाएँ अधिक। उसी के शब्दों में—

'बाई-सा रो ब्याव। घणो ऊँचो ठकाणो। दायजा में देवा वास्ते म्हारे कने कांई लादे? छोर्‌या दो-दो, पण बोबो चूषतो। कनै सदावे? आज पाँच बरस को टाबर्‌यो नाराण, बस इने पकड के बाई सा रे दायजा में भेज दियो।'

बात कितनी छोटी-सी है। उसी के कहे अनुसार रजवाड़े की मिट्टी, दगलदाजी भी करे तो कौन? यहाँ कोर्ट-कचहरी, पुलिस सभी नाकाम है। सदियों से यही तो होता आया है। जिनके बालक छीनकर भेजे जाते फरियाद करने पर जवाब मिलता—

'बण री है बेटी-बेटा थान्हों। जाणो गुवायो म्हे। पाटा-मांगो म्हे। थारा कांई?'

दहेज में हाथी, घोड़े, नौकर-चाकर सभी तो दिए जाते हैं। धनहानी ना

नहीं है । अबै सरकार दूजी है । मिनख मार के कियां बच जासी ? आ सारा बतायी मने मारी वातां । ऊँनै वठै पुलिस पकड़ के लेगी । ओ म्हारे कने भाग आयो अठै ।' बूढ़ी आँखों मे क्रोध एव हिंसा की जगह वात्सल्य तैर आया । उसे दुलारती-निहारती बैठी रही कितनी ही देर ।

कुछेक मिनट के मौन को तोडा सहज होते बेटे ने । सोचता झिझकता-सा बोला, 'मूं थाने पूछनो गाँव गियो तो हवेली वाळा बड़ा माजी मिल्या । वा बताया अक...थारी माँ तो मिनख मरतां ई दूजी ठौर बैठगी । ऊँ केइ साथे भाग गी ।'

इस आयु मे पुत्र के मुख पर ये आक्षेप, आंशिक रूप से ही कुछ न कुछ दम तो है बात मे । परन्तु स्वीकार वो कैसे करे ? जार-जार रोती बोली, 'कांई म्हारा लाल, कुण के भरोसे रैती उठै ! करजो कर-कर थारो बाप को इलाज करायो । बाँकी दवा दारू का करजा माँई नागी होगी, कुण को आसरो जोहती ? काम-काज की तलास मे यां ठाकुर सा के आगे भाग के सहर आगी । यां को आसरो न होतो तो मरगी होती किस्तूरी । हवेली का मिनख तो घणी दूर तक पीछो कियो म्हां लोगां को । एकली लुगाई जात कैयां रैती परदेस मां, कोई ने जाणू नी, बोल ! करती कांई, कीकर रैती ?'

हार गया सत्यकाम । इतनी सबल उसकी माँ नही जो सहज ही स्वीकार कर ले उस सत्य को । वो भी तो ब्याहकर छोड आया है गढ़ी मे ही अबला गुलाब कँवर को । जानता है कितनी कमजोर है नारी सहारे के बिना । मुस्काया अभी नही हुआ परन्तु समझता-बूझता सभी है ।

'पण अब्बे थाने हमारे साथ रैणो है । मूं करला मजूरी । खेती भी कर जाणूं । बाई सा के घर ने छोड अर दूजी मजूरी करवा की जरूरत नी है ।' जोरदार हुंकारे से समर्थन करती वो बलि-बलि जाती है उस पर ।

वो बात नहीं, जो दिखती है। जो कही है नहीं, दीसे भी नहीं परन्तु वो ही है। असल बात ही कुछ और है। जन्म-जन्मान्तर की दासी, कमाऊ अच्छी भली, परन्तु अशिक्षित। अब माँ से नहीं, उन्हीं ठाकरनुमा दरोगा जी से मिलो। भय कैसा तुम स्वयं ठाकुर वंश के।' मेरी थपथपायी पीठ, साहस भर गयी उसमें। लम्बी-सी हुंकार भर वो जा भिड़ा सुग्रीव-सा उसी के द्वार पर।

चबूतरे पर लगे टाट के परदे में से छन-छनकर आती ढिबरी की मद्धिम रोशनी में वाक् युद्ध। कथोपकथन के कुछ अंश, 'अबे मूं कांई सुणबो नी चाहूँ, मूं लेर जाऊँ म्हारी माँ ने।'

टालने के अन्दाज में पुरुष स्वर, 'थां अबार नया आया हो शहर मांय, कांई जाणो खरचो पाणी कियां चाले है। घणो खरचो पड़े है अठै। फेर किसी रकम लेर पधार्या हो? थां अबार टाबरपणा मांय हो, रमता खेलता आया हो.. बात बीच में काट व्यंग से हँस पड़ा ओठों को निमियानी-सी हँसी में एक ओर तिरछा-सा सिकोड़ता बोला, 'म्हारो टाबरपणो? को थां कांई बोल्या फेर?'

जली हुई बीड़ी झटक, धरती पर ओंधी टेके वर्तुलाकार घुमाता तीक्ष्ण सोचते बोला, 'रमता खेलता दिनां री भी कांई याद करो हो ठाकरां, टाबरपणा में रह्या तो जाणता के कांई होवे है रमवा खेलवा री बात थो भी ..दनरोज बड़ो डगळो जूठा बर्तन मांझ्या को ऊँटावड़ा बा, देर रात तलक भूखा तिरसा रगड़ता-रगड़ता थक जावता, मायत री गोद जाण ऊँ डगळा कनैं ई पड़ जाता, (रँध गया गला...) फेर पड़तो एक सड़ाको तो नींद मांय उठ'र काम लाग जाता। आज बोल्या हो थां रमवा खेलवा री खातिर '

खखारता थूक गटकता-सा ठाकुरनुमा दरोगा बिरजूरी का सम्बोधित कर बोला, 'फेर या लुगाई जात बिगर मिनख के सहारा के कठै रई ही नी, किया रैवेला अब? थां कांई जाणो म्हें किया रैता इतरा दिन? परदेस मांय म्हें दुख-सुख साथ सेन्या। मूं कदी इने तुकारो भी न दीदो। इणरदाशे को मांदो हाकवा सामने पाछे खाना। देगी बिरजूरी रे सामने लादतों। ब न बिरजूरी मूं तने कदी दुख दिदो? बीस बरस मांइ पधार्या हा, अबे माइत री मन में आवी है, बीस बिरजूरी कना इतरा दिन ई परदेस मांइ आता किदा रैसा। थारी बाला (बच्ची) को ब्याव कुरायो किदा किनो दस दो टाबरां ने।'

"ऊँ में कांई रही में बोलो। एक बात पूछूँ हूँ। इतरा दरो दुःख है, इतरा मोल का बात करे, कांई मन्नो बेटा रा म्हारा इतरा ?'

पेड़ तो कट गया

पुष्पा रघु

डाक्टर हरीश डिस्पेंसरी से काफी रात गए लौटा था। नींद अभी भरी नहीं थी परन्तु नीचे आगन में खटर-पटर की आवाजों से उसकी आँख खुल गई। सोचा शायद भाभी के उठने का समय हो गया है। भैया की मील में जब पहली पाली में ड्यूटी होती है, तब भाभी सुबह पाच बजे ही चूल्हा जला गरम पानी रख देती हैं। अबकी बार रुपयों का जुगाड होते ही गीजर अवश्य लगवाऊगा, यह निश्चय दोहरा कर, रजाई सिर पर खींच उसने फिर से सोने की चेष्टा की, परन्तु नीचे की आवाजे तेज हो गई। 'कोई बच्चा रो रहा है, भैया डाट रहे है, पिताजी भी कुछ बोल रहे है। अवश्य ही कोई विशेष बात है।' हरीश ने सोचा और शाल लपेट तेजी से सीढ़ियाँ उतर गया।

नीचे का दृश्य विचित्र था। शिरीष के पेड के नीचे खड़ा सोनू हिचकियां ले रहा था। भैया उसका कान उमेठते चिल्ला रहे थे—'बोल न कहाँ जा रहा था?' उनके पैरों के पास एक थैला पडा था जिसमें से सोनू का निकर झाक रहा था। भैया ने दूसरे हाथ में एक रूमाल ले रखा था, जिसमें कुछ नोट और रेजगारी थी। पिता जी भैया को शान्त रहने को कह रहे थे। भाभी पत्थर-सी चुप खड़ी थी। भैया ने हरीश को देख आलाप लिया—'देखा सिर चढ़ाने का नतीजा साहबजादे घर से भाग रहे थे।' हरीश जैसे आकाश से गिरा—'ऐसा बागी क्यों बन गया भला सोनू, कोई कमी भी मैंने अपनी ओर से तो छोड़ी नही।' तुरन्त यह बात हरीश के मन में आई। 'भैया ने सारा दोष मेरे मत्थे मढ दिया।' इस बात ने गहराई तक कचोटा हरीश को। वह तो बड़े भाई जगदीश को पिता से भी अधिक आदर देता है। सदैव याद रहता है उसे कि भैया ने स्वय एक साधारण पोरमैन होते हुए भी कितने कष्ट उठा कर उसे डाक्टर बनाया है। और सोनू! घर का पहला बालक प्रारभ से ही सब का दुलारा था, अम्मा नहीं रहीं तो उनके हिस्से का प्यार भी हरीश ने ही दिया है उसे। अपने पुत्र गबल्लू से भी अधिक प्रिय है सोनू हरीश को।

पेड़ से बूंदें टपकीं। हरीश ने कहा—'बड़ी ठंड है। यहाँ ओस पड़ रही है। अंदर चलिये।'

पिता जी ने शिरीष पर नजर डाली और बोले—'सारे अनिष्ट की जड़ ये सिरस है। तेरी माँ से कितनी बार कहा था—इसे कटवा दे भागवान! पर उसके तो जैसे प्राण बसते थे इसमें। अब मैं इसे कटवा ही डालूंगा।' यह घोषणा करके, पिता जी खड़ाऊं खटकाते 'शिवहरि-शिवहरि' बोलते हुए बैठक में चले गए।

शिरीष का पेड़ अम्मा को बेटे-पोतों से भी अधिक प्रिय था। वह कहा करती थी—'जब तुम्हारे पिता जी यहाँ की संस्कृत पाठशाला में आये तो ये घर भी मिला। ऊबड़-खाबड़ आंगन को खुरपी से ठीक करने लगी तो नन्हा-सा पौधा दिखाई पड़ा। थावला बना के पानी दिया। पास ही तुलसी का पौधा रोप दिया। तुलसी गहराती गई और सिरस ऊंचा होता गया।'

हालांकि अम्मा अनपढ़ थीं पर उनके स्नेह ने वहम और अंधविश्वास को पीछे धकेल दिया था। उन्होंने कई बार जिक्र किया था—'तुम्हारी बड़ी बहन दुर्गा से पहले के दो बालक छीज गये तो गाँव की बड़ी-बूढ़ी कहने लगीं—बहू, यह सिरस असगुनी पेड़ है, उजाड़ चाहता है। इसे कटवा दे। पर मैंने साफ कह दिया—'पेड़ बिचारे का क्या दोष है? ये तो सब कर्मों के भोग हैं।' इस प्रकार पेड़ अब भी खड़ा है, उसे पालने व बचाने वाली चली गई। [illegible] की बात का प्रतिवाद किसी ने नहीं किया सिवाय [illegible] के। [illegible] हिलो। हरीश ने सोनू के कंधे पर हाथ रखा—'सोनू, बड़ी [illegible] हवा है, भीतर चलो।' सोनू ने उसका हाथ झटक, गुस्सा [illegible] कर उसे घूरा और बोला—'नहीं जाऊंगा।' भैया बरामदे से [illegible]—'मार कर [illegible]। [illegible] साद ने ही इस का दिमाग खराब कर दिया है। जब देखो तब ही [illegible]
[illegible] में खिलता रहता है। [illegible] नहीं कि [illegible]

हरीश की सहन-शक्ति चुक गई वह उसे पीटने को बढ़ा, पर रोहिणी ने रोक लिया—'हैं। हैं। क्या करते हो ? पहले ही भाई साहब काफी मार चुके हैं देखो तो पाँचों उँगली उपड़ आई है इसके कोमल गाल पर। ऐसे मारा जाता है फूल से बच्चे को। आ मोनू ! ये सब गन्दे हैं। हम इनसे किसी से नहीं बोलेंगे। चल ऊपर मेरे पास सोना।'

अबकी बार मोनू ने विरोध नहीं किया पर जाते-जाते एक क्रोध-भरी दृष्टि हरीश पर डाल गया। क्या हो गया अचानक इस मोनू को ? मेरी तो एक आवाज पर ऐसे दौड़ता था जैसे बछड़ा दिनभर के बिछोह के बाद गाय की ओर दौड़ता है' हरीश ने सोचा। शेष रात घर के सारे सदस्यों ने (बच्चों को छोड़) करवट बदलते ही बिताई। हरीश पत्नी से बहुत कुछ पूछना चाहता था, पर यह सोच कर चुप था कि शायद मोनू जाग रहा हो क्योंकि नींद की गहरी साँसों में भी सिसकी का सा भ्रम हो रहा था। करवट के पास सोये मोनू पर हरीश ने दुलार भरी दृष्टि डाली — कैसा निरीह लग रहा है। आज इसका चुलबुलापन कहाँ चला गया ? उसे याद आया कि अम्मा की मृत्यु के बाद भी ऐसा ही सहमा सा रहने लगा था मोनू। हरीश ने कई बार लक्ष्य किया था कि वह अकेला बैठा आकाश को ताकता रहता। उसने टोका तो एक दिन बोल पड़ा—'चाचा सब कहते हैं कि अम्मा विमान में बैठ कर राम जी के घर चली गई, पर तारे तो रोज सुबह राम जी के घर जा कर शाम को फिर आ जाते हैं। अम्मा क्यों नहीं आतीं ? क्या उन्हें मोनू की याद नहीं आती ?'

पेड़ से चूने लगीं। हरीश ने कहा—'बड़ी ठंड है। यहाँ ओस पड़ रही है। अंदर चलिए।'

पिता जी ने सिरीस पर नज़र डाली और बोले—'सारे अनिष्ट की जड़ ये सिरस है। मेरी माँ ने कितनी बार कहा था—इसे कटवा दे भागवान! पर उसके तो जैसे प्राण बसते थे इसमें। अब मैं इसे कटवा ही डालूँगा।' यह घोषणा करके, पिता जी खड़ाऊँ खटकाते 'शिवहरि-शिवहरि' बोलते हुए बैठक में चले गए।

सिरीस का पेड़ अम्मा को बेटे-पोतों से भी अधिक प्रिय था। वह कहा करती थी—'जब तुम्हारे पिता जी यहाँ की संस्कृत पाठशाला में आये तो ये घर भी मिला। ऊबड़-खाबड़ आँगन को खुरपी से ठीक करने लगी तो नन्हा-सा पौधा दिखाई पड़ा। थांवला बना के पानी दिया। पास ही तुलसी का पौधा रोप दिया। तुलसी गहराती गई और सिरस ऊंचा होता गया।'

हालांकि अम्मा अनपढ़ थी पर उनके स्नेह ने वहम और अंधविश्वास को पीछे धकेल दिया था। उन्होंने कई बार जिक्र किया था—'तुम्हारी बड़ी बहन दुर्गा से पहले के दो बालक छीज गये तो गाँव की बड़ी-बूढ़ी कहने लगी—बहू, यह सिरस अपसगुनी पेड़ है, उजाड़ चाहता है। इसे कटवा दे। पर मैंने साफ कह दिया—'पेड़ बिचारे का क्या दोष है? ये तो सब कर्मों के भोग हैं।' इस प्रकार पेड़ अब भी खड़ा है, उसे पालने व बचाने वाली चली गई। पिता जी की बात का प्रतिवाद किसी ने नहीं किया सिवाय पेड़ के। उसकी टहनियाँ हिली। हरीश ने सोनू के कंधे पर हाथ रखा—'सोनू बड़ी तीखी हवा है भीतर चलो।' सोनू ने उसका हाथ झटक, सुबकना बंद कर उसे घूरा और बोला—'नहीं जाऊंगा।' भैया बरामदे से पलटे—'मार एक झापड़। अधिक लाड़ ने ही इस का दिमाग खराब कर दिया है। जब देखो तब टी. वी. रेडियो या कामिक्स से चिपका रहता है। बात मुंह से निकली नहीं कि माँग पूरी। अब भुगतो।'

अधूरी नींद-थकान और अप्रत्याशित-अप्रिय घटना का तनाव। हरीश झल्ला गया—'देख सोनू अभी तीन बजे है। मैं तो तीन-चार दिन में आया हूँ। रात को भी देर से लौटा, नींद आ रही है। चल सो जा।' सोनू ने जैसे सुना ही नहीं, वह पेड़ से टिक कर खड़ा हो गया। तभी रोहिणी, हरीश की पत्नी आ गई, उसने पुचकारा—'सोनू तो मेरा राजा बेटा है मेरे साथ चलेगा।'

सोनू ने दोबारा रोना चालू कर दिया और रोते-रोते बोलने लगा—'नहीं किसी का बेटा नहीं हूँ। नहीं जाऊंगा मैं।' वह मचल कर वहीं लेट गया।

हरीश की सहन-शक्ति चुक गई वह उसे पीटने को बढ़ा, पर रोहिणी ने रोक लिया—'हैं। हैं। क्या करते हो ? पहले ही भाई साहब काफी मार चुके हैं देखो तो पाँचों उंगली उपड़ आई हैं इसके कोमल गाल पर। ऐसे मारा जाता है फूल से बच्चे को। आ सोनू ! ये सब गन्दे हैं। हम इनसे किसी से नहीं बोलेंगे। चल ऊपर मेरे पास सोना।'

अबकी बार सोनू ने विरोध नहीं किया पर जाते-जाते एक क्रोध-भरी दृष्टि हरीश पर डाल गया। 'क्या हो गया अचानक इस सोनू को ? मेरी तो एक आवाज पर ऐसे दौड़ता था जैसे बछड़ा दिनभर के बिछोह के बाद गाय की ओर दौड़ता है' हरीश ने सोचा। शेष रात घर के सारे सदस्यों ने (बच्चों को छोड़) करवट बदलते ही बिताई। हरीश पत्नी से बहुत कुछ पूछना चाहता था, पर यह सोच कर चुप था कि शायद सोनू जाग रहा हो क्योंकि नींद की गहरी साँसों में भी सिसकी का सा भ्रम हो रहा था। सवेरे के पास सोये सोनू पर हरीश ने दुलार भरी दृष्टि डाली — कैसा निरीह लग रहा है। सारा उसका चुलबुलापन कहाँ चला गया ? उसे याद आया कि अम्मा की मृत्यु के बाद भी ऐसा ही सहमा सा रहने लगा था सोनू। हरीश ने कई बार लक्ष्य किया था कि वह अकेला बैठा आकाश को ताकता रहता। उसने टोका तो एक दिन बोल पड़ा—'चाचा सब कहते हैं कि अम्मा विमान में बैठ कर राम जी के घर चली गईं, पर तारे तो रोज सुबह राम जी के घर जा कर शाम को फिर आ जाते हैं। अम्मा क्यों नहीं आतीं ? क्या उन्हें सोनू की याद नहीं आती'

पेड़ से बूंदें टपकी। हरीश ने कहा—'बड़ी ठंड है। यहाँ ओस पड़ रही है। अंदर चलिये।'

पिता जी ने शिरीष पर नजर डाली और बोले—'सारे अनिष्ट की जड़ ये सिरस है। तेरी माँ से कितनी बार कहा था—इसे कटवा दे भागवान! पर उसके तो जैसे प्राण बसते थे इसमें। अब मैं इसे कटवा ही डालूंगा।' यह घोषणा करके, पिता जी खड़ाऊ खटकाते 'शिवहरि-शिवहरि' बोलते हुए बैठक में चले गए।

शिरीष का पेड़ अम्मा को बेटे-पोतों से भी अधिक प्रिय था। वह कहा करती थी—'जब तुम्हारे पिता जी यहाँ की संस्कृत पाठशाला में आये तो ये घर भी मिला। ऊबड़-खाबड़ आगन को खुरपी से ठीक करने लगी तो नन्हा-सा पौधा दिखाई पड़ा। थावला बना के पानी दिया। पास ही तुलसी का पौधा रोप दिया। तुलसी गहराती गई और सिरस ऊंचा होता गया।'

हालांकि अम्मा अनपढ़ थी पर उनके स्नेह ने बहम और अंधविश्वास को पीछे धकेल दिया था। उन्होंने कई बार जिक्र किया था—'तुम्हारी बड़ी बहन दुर्गा से पहले के दो बालक छीज गये तो गाँव की बड़ी-बूढ़ी कहने लगी—बहू, यह सिरस अपसगुनी पेड़ है, उजाड़ चाहता है। इसे कटवा दे। पर मैंने साफ कह दिया—'पेड़ बिचारे का क्या दोष है? ये तो सब कर्मों के भोग है।' इस प्रकार पेड़ अब भी खड़ा है, उसे पालने व बचाने वाली चली गई। पिता जी की बात का प्रतिवाद किसी ने नहीं किया सिवाय पेड़ के। उसकी टहनियाँ हिली। हरीश ने सोनू के कंधे पर हाथ रखा—'सोनू बड़ी तीखी हवा है भीतर चलो।' सोनू ने उसका हाथ झटक, सुबकना बंद कर उसे घूरा और बोला—'नहीं जाऊंगा।' भैया बरामदे से पलटे—'मार एक झापड़। अधिक लाड़ ने ही इस का दिमाग खराब कर दिया है। जब देखो तब टी वी रेडियो या कामिक्स से चिपका रहता है। बात मुंह से निकली नहीं कि माँग पूरी। अब भुगतो।'

अधूरी नींद-थकान और अप्रत्याशित-अप्रिय घटना का तनाव। हरीश झल्ला गया—'देख सोनू अभी तीन बजे हैं। मैं तो तीन-चार दिन से आया हूँ। रात को भी देर से लौटा, नींद आ रही है। चल सो जा।' सोनू ने जैसे सुना ही नहीं, वह पेड़ से टिक कर खड़ा हो गया। तभी रोहिणी, हरीश की पत्नी आ गई, उसने पुचकारा—'सोनू तो मेरा राजा बेटा है मेरे साथ चलेगा।'

सोनू ने दोबारा रोना चालू कर दिया और रोते-रोते बोलने लगा—'नहीं किसी का बेटा नहीं हूँ। नहीं जाऊंगा मैं।' यह कहकर वहीं लेट गया।

हरीश की सहन-शक्ति चुक गई वह उसे पीटने को बढ़ा, पर रोहिणी ने रोक लिया—'हैं। हैं। क्या करते हो ? पहले ही भाई साहब काफी मार चुके हैं देखो तो पाँचों उंगली उपड आई है इसके कोमल गाल पर। ऐसे मारा जाता है फूल से बच्चे को। आ मोनू ! ये सब गन्दे हैं। हम इनसे किसी से नहीं बोलेंगे। चल ऊपर मेरे पास सोना।'

अबकी बार सोनू ने विरोध नहीं किया पर जाते-जाते एक क्रोध-भरी दृष्टि हरीश पर डाल गया। 'क्या हो गया अचानक इस सोनू को ? मेरी तो एक आवाज पर ऐसे दौड़ता था जैसे बछड़ा दिनभर के बिछोह के बाद गाय की ओर दौड़ता है' हरीश ने सोचा। शेष रात घर के सारे सदस्यों ने (बच्चों को छोड़) करवट बदलते ही बितायी। हरीश पत्नी से बहुत कुछ पूछना चाहता था, पर यह सोच कर चुप था कि शायद सोनू जाग रहा हो क्योंकि नींद की गहरी साँसों में भी सिसकी का सा भ्रम हो रहा था। संकल्प के पास सोये सोनू पर हरीश ने दुलार भरी दृष्टि डाली—'कैसा निरीह लग रहा है। आज इसका चुलबुलापन कहाँ चला गया ?' उसे याद आया कि अम्मा की मृत्यु के बाद भी ऐसा ही सहमा सा रहने लगा था सोनू। हरीश ने कई बार लक्ष्य किया था कि वह अकेला बैठा आकाश को ताकता रहता। उसने टोका तो एक दिन बोल पड़ा—'चाचा सब कहते हैं कि अम्मा विमान में बैठ कर राम जी के घर चली गईं, पर तारे तो रोज सुबह राम जी के घर जा कर शाम को फिर आ जाते हैं। अम्मा क्यों नहीं आतीं ? क्या उन्हें सोनू की याद नहीं आती ?'

तब हरीश ने और भी अधिक समय देना शुरू किया था सोनू को। रोहिणी से भी झड़प हो गई थी—'देखो रोहिणी मैंने मेट्रिक लड़की इसीलिये नहीं ली कि मेरी पत्नी मेरे घर में रह कर परिवार के सब सदस्यों के विकास में सहयोग दे सके।' 'क्या सहयोग दूँ, घर का काम भाभी जी करने नहीं देतीं। न कोई सोसायटी है न आउटिंग। मेरी तो शिक्षा ही बेकार हो गई। एक दे सकने पर ही परेशान किये रखता है।' रोहिणी झुंझलाई थी। हरीश ने कहा था—'भाभी बेचारी तो चार-चार को सम्भालती है फिर रश्मि की शादी हो जाने और अम्मा के न रहने से घर की जिम्मेदारी भी सारी उन्हीं पर आ पड़ी है। तुम उनकी स्थिति को समझने का प्रयत्न करो न।'

'मुझसे और सोनू से दोनों से ही खिंची खिंची रहती हैं, न जाने क्यों ? सोनू तो बेचारा रोज ही किसी न किसी बात पर पिट जाता है।'

'तुम इतना भी नहीं समझतीं कि वह बेचारी चार बच्चों ... के विमाता की बेटी ठहरीं। हीन-भावना से ग्रसित हो तुमसे खुल नहीं पाती हैं। सोनू

महाशय दादी बुआ के सिर चढ़े रहे हैं, क्योंकि उन्हीं के पास रहा है वह। सोनू के दस महीने बाद ही तो मोनू आ गया था और उसके एक साल बाद ही जुड़वां किन्नी-मिन्नी।'

'उंहूं, आप डाक्टर होकर भी घर वालो को अक्ल नही दे सके।' मजाक पर उतर आई थी रोहिणी।

पर तब से वह संकल्प के साथ-सोनू-मोनू को भी नित्य डेढ़ दो घण्टे पढ़ाने लगी। नटखट सोनू कुशाग्र भी था, अतः चाची का भी लाडला बन गया। हरीश का तो गले का हार ही था। होड़ लगी रहती थी तीनो बच्चों में हरीश की अधिक से अधिक से निकटता पाने की। बड़े होने के कारण बाजी सोनू के हाथ रहती। वह उसके आते ही चालू हो जाता—'चाचा आज हमारे मास्टर जी ने मुझे बहुत शाबासी दी, आज तो आधी छुट्टी मे छुट्टी हो गई, मजा आ गया, या आज मम्मी ने फिर पीटा था या चाची आज सारे दिन नावल पढ़ती रही हमे होमवर्क नही कराया।' दुनिया-जहान की बातें, दिन भर की डायरी चाचा को सुनाये बिना न छोड़ता। यहाँ तक कि टी. वी. देखते हुए भी उसका रिकार्ड चालू ही रहता। हरीश चाहे कितनी ही देर से घर आता, पर सोनू रात्रि का भोजन चाचा के साथ ही करता। हरीश बहुत खुश था, और घर के सभी लोगो को भी खुश रखने के प्रयास में रहता था। अच्छी-खासी चल रही थी जिन्दगी, पर ये अचानक सोनू को क्या सूझी ?

बहुत सोचा हरीश ने, सोनू से भी बहुत पूछा, तरह-तरह से बहलाया फुसलाया परन्तु सोनू के पलायन का कारण समझ मे नही आया। तब रोहिणी से पूछा हरीश ने—'क्या मेरे जयपुर जाने के पश्चात कोई विशेष घटना घटी थी घर मे? भाभी ने अधिक मारा-पीटी करी होगी? मैं तो ठीक-ठाक छोड़ कर गया था सोनू को।' रोहिणी ने बताया कि 'ऐसी तो कोई भी बात नही हुई—पर हाँ यह कुछ खोया-खोया सा तो लगता था। ऊधमबाजी भी छोड़ दी थी। सबने यही सोचा कि आपके चले जाने से उदास है, परन्तु यह तो कोई सोच भी नही सकता था। सोनू ऐसा कदम उठायेगा।'

यह बात सुनते ही सहसा हरीश को याद आ गई अपने जयपुर जाने वाले दिन की यह घटना—जैसे स्विच ऑन करते ही बल्ब जल उठे। उसने यह बात रोहिणी को बताई—'कान्फ्रेंस का तार मिलते ही मैं तैयारी करने के लिए घर आ रहा था। देखा, सोनू गली में गन्दे-गन्दे बच्चों के साथ कंचे खेल रहा था। बस्ता भी एक किनारे पड़ा धूल चाट रहा था। कितने [illegible] मारकर [illegible] हैं इसके, तुम्हें तो पता ही है। मुझे बहुत बुरा लगा। [illegible] पीटा [illegible]

मैंने उसे टोका तो हँस कर बोला था—'ओ अच्छा कभी-कभी तो मेलना ही चाहिये।' मुझे उसकी निर्लज्ज हँसी और दुस्साहस पर बड़ा गुस्सा आया। एक चाँटा रसीद कर दिया उसे। शायद पहली बार उस पर हाथ उठाया था।'

'यह तो बुरा किया आपने। बड़ा संवेदनशील है सोनू। दोस्तों के सामने उस चाचा से प्रताडित होना उसे कितना बुरा लगा होगा जिसकी बड़ाई करते उसकी जीभ थकती ही नहीं।'

'अरे! तो क्या इतना भी अधिकार नहीं मुझे? भाभी तो रोज ही कूटती रहती हैं उसे।' मन का पछतावा छुपाता हुआ बोला हरीश।

'च्च च्च, इतने पढ़े-लिखे होकर कैसी बातें करते हो? तुम पुरुष लोग हम स्त्रियों पर तो संकीर्णता का आरोप लगाते हो। तुम्हें पता होना चाहिये कि भाभी जी पीटती हैं, तभी तो सोनू उन्हें अपनी विमाता समझता है।'

'विमाता समझता है? तुमसे किसने कहा?'

'स्वयं सोनू ने कहा' फिर रोहिणी ने वह प्रसंग बताया—एक दिन मैं छत पर कपड़े सुखा रही थी। सोनू आया। बड़ा गम्भीर था वह। बोला—'चाची एक बात बताओगी?' हाँ-हाँ पूछो। 'रात की पिक्चर में वह औरत अपनी बड़ी लड़की को इतना क्यों पीटती थी?' मैंने बताया कि वह उस की विमाता थी न।' 'विमाता क्या होती है?' पूछने पर मैंने कहा था कि उसकी माँ मर गई तो उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया।' तब सोनू ऐसे बोला था जैसे कोई कठिन सवाल हलकर लिया हो—'अच्छा तो ये बात है। मेरी मम्मी भी मेरी विमाता है न चाची!' 'चल हट! किसने कहा? वह तो तेरी अपनी माँ है पगले!' पर वह नहीं माना। बोला—'आप झूठ बोलती हो। माँ भी कभी ऐसे पीटती है भला! आप संकल्प को कितना प्यार करती हो और मम्मी भी सोनू और विन्नी-मिन्नी को कब पीटती हैं?'

हरीश यह सुन विस्मय-विमूढ़ हो गया। वह छोटी सी घटना जिसे बिल्कुल साधारण मान वह अपनी व्यस्तता में भूल बैठा था, अपनी बहुत बड़ी गलती लग रही थी अब उसे। हाँ अब याद आ रहा था, उसे कि चाँटा लगने पर रोया नहीं था सोनू, अपितु पथराया सा उसे देखता रह गया था। खोया-खोया सा हरीश काफी देर बाद बोल सका—'ओह मैं तो कभी सोच भी नहीं सकता था कि यह पिद्दी-सा छोकरा इतनी गहराई से सब बातों को लेता है!'

'हाँ डॉक्टर साहब! यही तो हम लोग नहीं समझ पाते कि बच्चा हम बड़ों से अधिक सूक्ष्मता एवं संवेदना से हर बात को ग्रहण करता है। पर सच तो

है उसके डाक्टर बनने में। 'मैं कैसे डाक्टर बन सकता हूँ, मैं तो सरकारी स्कूल में पढ़ता हूँ। डाक्टर तो मयंक बनेगा। पब्लिक स्कूल में पढ़ता है। कितना अच्छा लगता है वह जब वहां की यूनिफार्म पहन कर बस में जाता है।' हरीश ने समझाया था—'नहीं बेटे हम भी तो तुम्हारे वाले स्कूल में ही पढ़े हैं। पब्लिक स्कूल तो यहां अब खुला है, पहले से होता तो तुम्हें भी वहीं पढ़ाते।'

हरीश के विचार और निश्चय कार्य का रूप ले भी न पाये थे कि परिवार पर वज्रपात हो गया—सोनू एक दिन स्कूल से लौटा ही नहीं। घटे दिन करते-करते-महीने बीत गये पर सोनू नहीं मिला। उस की मम्मी अक्सर बिस्तर पर पड़ी रहती हैं। उसके पापा झुंझलाये बौखलाये से रहते हैं। रोहिणी अब बच्चों को नहीं पढ़ा पाती है। बच्चे, यहां तक कि अबोध किशी-मिशी भी, सहमे से रहते हैं। हरीश हर समय एक अपराध बोध से दबा सा रहता है। पिताजी तो पहले ही किसी बात से मतलब न रखते थे अब और भी कट गये हैं। उनका मंदिर में बैठने का समय दुगना हो गया है।

हाँ! उन्होंने सिरीष का पेड़ कटवा दिया है। पर सोनू के बिना जितना सूना-सूना हो गया है, उससे भी अधिक सूना हो गया है आँगन बिना सिरस के।

पानी तेरा रंग

नेतन स्वामी

बदरी की आंखों के कोये पलटते से लग रहे थे। हालत मेरी भी बुरी थी, मानो किसी ने गले तक रेत भरकर छोड़ दिया हो।

'मास्टर, मरेंगे।' बदरी के बोल गहरे कुएं से निकले जैसे, 'मुझसे और नहीं चला जाता।'

लपक कर बदरी बुई के झाड़ पर बैठ गया। तब इसकी पीर बुई की टेरें निकली जैसे उपालम्भ दे रही हो।

दूर-दूर तक आपस में गलबाथ भरते धोरे ही धोरे रेत के समन्दर का आर न छोर। आसपास एकाध पेड़ भी नजर नहीं आया, जिसके हरे तिनके चुनकर प्यास के साथ परेख कर लेते।

मैंने रुआंसा होते कहा, 'बदरी, थोड़ा सुस्ता ले और सुन हौसला मत [illegible]

सच है कि जैसे एक पौधा पूर्ण वृक्ष है वैसे ही बालक भी समग्र मनुष्य है। पर मैं सोनू के लिए यह कब ही जान पाई हूँ।'

सच में सुमन बड़ी भावुक हो गई। उसके दिमाग को ठेस लगी है। मैं सोनू का नाम पूछता। सारी बात पूछा उसने। शायद यह सुन भी हो जाता मैं सईद की तरह सभी बच्चों के लिये उपहार लाया था जयपुर से, परन्तु उस दिन एक आपरेशन के कारण हरीशजी तो देर से लौटा और वह गायब हो गया।

यह निर्णय करके मानो वह उतर गया हरीश के हृदय में। रोहिणी ने सोनू को उससे अधिक समझा है निस्संदेह। अब तो हरीश को और भी कई बातें याद आ रही हैं सोनू की भावुकता एवं संवेदनशीलता की। वह साल उसकी आँखों में चमक उठी जब दशहरे की छुट्टियाँ थीं। बहन दुर्गा के बच्चे भी आये हुए थे। हरीश सब के साथ छत पर बैठा था, उसने सबसे पूछा था कि वे बड़े हो कर क्या बनना चाहते हैं? सबने अपनी-अपनी पसंद बताई थी, पर सोनू कुछ न बोला तो हरीश ने कुरेदा था, 'तुम भी बताओ न सोनू क्या बनने को सोचते हो?' तब वह बोला था—'चाचा बनना तो मैं भी डाक्टर ही चाहता हूँ आपकी तरह पर—पर वह अटका था तो हरीश ने पूछा था कि क्या अड़चन है उसके डाक्टर बनने में। 'मैं कैसे डाक्टर बन सकता हूँ, मैं तो सरकारी स्कूल में पढ़ता हूँ। डाक्टर तो सकल्प बनेगा। पब्लिक स्कूल में पढ़ता है। कितना अच्छा लगता है वह जब वहां की यूनिफार्म पहन कर बस में जाता है।' हरीश ने समझाया था—'नहीं बेटे हम भी तो तुम्हारे वाले स्कूल में ही पढ़े हैं। पब्लिक स्कूल तो यहाँ अब खुला है, पहले से होता तो तुम्हें भी वहीं पढ़ाते।'

हरीश के विचार और निश्चय कार्य का रूप ले भी न पाये थे कि परिवार पर वज्रपात हो गया—सोनू एक दिन स्कूल से लौटा ही नहीं। घटे दिन करते-करते-महीने बीत गये पर सोनू नहीं मिला। उस की मम्मी अक्सर बिस्तर पर पड़ी रहती है। उसके पापा झुंझलाये बौखलाये से रहते हैं। रोहिणी अब बच्चों को नहीं पढ़ा पाती हैं। बच्चे, यहां तक कि अबोध किन्नी-मिन्नी भी, सहमे से रहते हैं। हरीश हर समय एक अपराध बोध से दबा सा रहता है। पिताजी तो पहले ही किसी बात से मतलब न रखते थे अब और भी कट गये हैं। उनका मंदिर में बैठने का समय दुगना हो गया है।

हाँ! उन्होंने शिरीष का पेड़ कटवा दिया है। पर सोनू के बिना जितना सूना-सूना हो गया है, उससे भी अधिक सूना हो गया है आँगन बिना सिरस के।

पानी तेरा रंग

चेतन स्वामी

बदरी की आंखों के कोये पलटने से लग रहे थे। हालत मेरी भी बुरी थी, मानो किसी ने गले तक रेत भरकर छोड़ दिया हो!

'मास्टर, मरेंगे।' बदरी के बोल गहरे कुए से निकले जैसे, 'मुझसे और नहीं चला जाता।'

लपर कर बदरी बुई के झाड़ पर बैठ गया। एक हलकी चीख बुई की ठेसे निकली जैसे उपालम्भ दे रही हो।

दूर-दूर तक आपस में गलबाथ भरते धोरे ही धोरे रेत के पसराव का ओर न छोर। आसपास एकाध फोग भी नजर नहीं आया, जिसके हरे तिनके चूसकर प्यास के साथ फरेब कर लेते।

मैंने रुआसा होते कहा, 'बदरी, थोड़ा सुस्ता ले, और सुन, हौसला मत छोड़ यार! मैं इधर-उधर देखता हूं कि कहीं पानी।'

बदरी ने ढीली गर्दन से हामल भरी और पस्तगी से आंखें मीच ली।

उतरते बैसाख की धूप वैसी ही थी, जैसा उसे होना चाहिए। जूतियों में ही एड़िया और पंजे सुलग रहे थे, पर सूखते गले के आगे यह जलन नाकुछ होकर रह गयी थी। रेत पर तिरछी किरणें पड़ रही थीं जिनसे रेत की लहरें पानी होने का भ्रम रचे थी। इस भ्रम के पानी से किसकी प्यास बुझी है कि हम इसे पीने का मसूबा बांधते! अथाह सी इस रिड़-रोही में प्यासे मरते हुए पाव घसीटने के सिवाय कोई चारा नहीं था। एक ऊंचे टीबे पर चढ़ते हुए मेरी आंखों के आगे अंधेरी छाने लगी। अपने से जोरमत्ता करते टेकरी पर पहुंचा, तो दो-तीन मेन के फासले पर रेलवे-क्वार्टर नजर आए। बरबस [illegible] मैं जैसे पांख जितना हल्का हो गया।

लौटकर मैंने उसे झिझोड़ा 'बदरी, पानी....पानी।'

बदरी डगमगाता हुआ उठने लगा।

रास्ता हम पहले ही बिसरा चुके थे। बदरी को कंधे पर थामे मैं अन्दाज से आगे बढ़ने लगा। गुमटी की दिशा मे पाव घसीटते हुए मैं उस मुहूर्त को कोसने लगा, जिसमें मैंने बारात चलने की हामल भरी थी। कितना अच्छा होता अगर मैं बारात में आता ही नही! और फिर कम से कम बदरी को तो यहा आने से मुकर ही जाना!

दिन उगने के बाद से यह तीसरा बुलावा था। इस बार ब्याह का नाई नही, बोदूरामजी का बड़का पोता आकर कह गया, 'काकाजी, फुर्ती करो....लॉरी स्टार्ट हो चुकी है।'

उसके निकलते ही बापू ने मधरे सुर मे कहा, 'मिनख को मिनख के बुलाये जाना पड़ता है रे! क्यो बेचारो को फालतू भागदौड़ करवाता है। जाना है तब इन घडी-घडी के बुलावो मे क्या पडा है, और जाना नही तो फिर...!'

'कौन, सुगना है क्या?'

सुनकर मैने कमरे के दरवाजे से झाककर देखा, बापू को नाम से पुकारते बोदूराम जी खुद चले आए थे। इसी वक्त मेरे मुह से निकल पडा था, 'मारे गए, बुढऊ खुद चले आए, अब तो जाना ही पडेगा।'

दो-चार कपड़े और टूथ-पेस्ट, ब्रश और दाढ़ी का सामान थैले मे ठूसता मैं बोदूरामजी के पीछे ही निकल पड़ा। घर से तीसरी गली मे ही नगरपालिका के भूतपूर्व अध्यक्ष बोदूराम जी का पुराना मकान था। चौड़ी गली मे पैट्रोल की लॉरी खड़ी थी और एक सयाना-सा आदमी बारातियो को हाँक-हाँक कर लॉरी मे बैठा रहा था। कच्चे-बच्चे चिल्ल-पौं मचाये थे। बग की अगली

मैंने उन दोनों को गौर से देखा। दूल्हे की काली धोती पर गहरे सुनहरे [illegible] हुई थी और कागज के मौर से सजा दिया गया था। दोनों की दाढ़ी ताजा बनाई हुई और [illegible] मूंछों के बीच पान से लाल होंठ। उनके कानों में लौंग हुए इन के [illegible] में उठती [illegible] खुशबू [illegible] रही थी। मुझे मन ही मन खुशी हुई यह बात की [illegible] कि बारातों की शान ही अलग होती है। [illegible] मंदी में [illegible] के बावजूद नए जमाने में भी इस भांति में लोगों का मोह नहीं छूटा है। देखकर कुछ मजा सा आया मुझे।

थोड़ी देर में ही गीत गाता हुआ स्त्रियों का झुण्ड चला आया, जिसके बीचों-बीच छोटे से दूल्हे राजा देर से नजर आए। राजाजी का साफा सभाले नहीं सभलता था। लॉरी में घुसते हुए, दूल्हे-राजा ने उस अपने दोनों हाथों से ऐसे थामा जैसे कांच का बर्तन हो और ठेस लगते ही फूट पड़ेगा। मैं चौबूरामजी की समझदारी में मीन-मेख करने ही लगा था कि सहसा एक रौनकदार आवाज आई, 'अरे वाह ! क्या कहने ! आ गया बदरू।'

बदरी पनवाड़ी एक सस्ता-सा हवाई बेग लटकाए हाफता हुआ लॉरी में चढ़ा था। मेरे बाजू की दो वाली सीट पर बैठकर उसने अपनी हाफनी थमने का इन्तजार किया, फिर बोला, 'मास्टर, तू कब आया ?'

'आए तो देर हो गई। बुलावे पर बुलावा आने लगा, तो भागना पड़ा। और यहां अभी चलने की कोई सूरत नहीं बनी।'

'फिर ठीक है।' बदरी तसल्ली से बोला, 'मुझे फिकर थी कि मैं ही सबसे बाद में पहुंचूंगा. ले, खा !' बोलते-बोलते ही बदरी ने पतलून की जेब में हाथ डाल लिया था, मेरे सामने मुट्ठी खोलता बोला।

सुपारी का टुकड़ा लेकर मैंने पूछा, 'पैसे तो नहीं मांगेगा ?'

'नकद न सही, वापस आकर खाते में मांड दूंगा।' कहकर बदरी ने जोरदार

ठहाका जड़ दिया। मुझे भीतर-भीतर संतोष हुआ, बदरी का संग रहेगा तो ऊब नहीं होगी।

कुछ देर बाद मैंने बदरी के कान पर होंठ धरकर हौले-हौले पूछा, 'यार बदरी, पांच कोस का फासला नहीं और लगन शायद गोधूलि वेला का है, फिर यह अल-सबेरे हाय-तौबा मचाने की बोदूरामजी को क्या जरूरत थी ?'

'तू मास्टर सचमुच भोला है।' बदरी ने जैसे भेद खोला, 'फालतू टीगरों के चोटी-कान खींचता है। यह लॉरी मुफ्त की है जो तेल के खर्च में बारात छोड़ देगी .लॉरीवाला हाथों-हाथ कोई पैसे देने वाली बारात उठाने आता होगा।'

साढ़े दस बजे बारात ठिकाने पर आ पहुंची। एक बाड़े में घिरी गोदामनुमा धरमशाला में जनवासा था। बाराती टिके ही थे कि नाश्ते की तश्तरियां बटने लगीं। मैंने बदरी से कहा, 'तश्तरियां शायद अंधेरे-अंधेरे ही सजा कर रखी होंगी।'

'बोदूरामजी का तप क्या कम है मास्टर! वर्ना ऐसे निपट देहात में . ····

बाहर नटनियों का गुच्छा गा रहा था, जिससे धरमशाला की जर्जर भीतें गुंजायमान हो रही थीं। रसिक बाराती तश्तरियां हाथों में उठाये वहां पहुंच चुके थे और नटनियों को न मालूम किस चीज से ललचाते से लग रहे थे।

एक अधेड़ नटनी, जिसका गला गाने के लिए नहीं शायद गुहार लगाने के लिए ही बना था, छैलेनुमा बारातियों के सामने अदा से बोलती जा रही थी, 'भांवरिये पट्टों वाले बाबू, आपकी जवानी बनी रहे, आपके चांद सरीखा फूटरा बेटा जनमे ..दो, हम मगतियों को भी अपने हाथ का नेग दो।'

छैला-बाबुओं का मन इस गुहार में कत्तई नहीं रम रहा था। वे अपनी जवानियों को इस अधेड़ नटनी की जवान बेटी से तोलने में लगे थे। बोदूराम जी आसपास नहीं थे, वर्ना संकोच में रस-लोलुपता खुलकर नहीं मिलती। अधेड़ नटनी के लटको-झटकों से लॉरी में मेरे पास बैठे इत्र के फोहों वाले छैलों का दिल पसीज आया था। उन्होंने जेब से रुपये का सिक्का निकाल कर हथेली पर नचाना शुरू कर दिया था और अधेड़ नटनी और करीब चली आई थी, 'लाओ बाबू. भगवान आपके यहां लक्ष्मी की मेहरबानी बनाये रखे।'

'ऊं-हूं...तू नहीं, उसको भेज।' उनका इशारा समझने में अधेड़ नटनी ने भूल नहीं की। आखिर वह आज ही अधेड़ नहीं हुई थी। उसकी उम्र के पग-पग पर

इन बाबुओं-छैलों के दिल-दिमाग की बनावट का इतिहास दर्ज था। ऐसे सम्पत्ति-समृद्ध लोगों का उसे पूरी उम्र से अनुभव था। बिना हील-हुज्जत के उसने गुच्छे में शामिल गीत गाती अपनी बेटी को कोहनी का टहोका दिया और गीतेरन ने हथेली पसार दी।

इस बीच अध-बूढ़े बारातियों को कहीं से प्रकट होकर भोपा-भोपी ने अपने में उलझा लिया था। ज्यों-ज्यों भोपी मूमल का रूप-बखान करती जाती, बूढ़ा भोपा टेक उठाता जाता, 'हम्मे... हम्मे भाई, बूढ़ी हो जायेगी!' ऐसा लगता था कि मूमल की जवानी के बहाने वह खुद को ही आगाह कर रहा था कि बूढ़ा हो जायेगा पर हद है उम्र का ढीठपन कि भोपा-भोपी दिनोंदिन बूढ़े होते ही जा रहे थे।

मैंने बदरी की बांह लपककर कहा, 'चलें यार, घूमकर गांव देख आएं।

'मना किसने किया?' बदरी बोला, 'मैं तैयार हूं पर लौट जल्दी आएंगे क्योंकि धूप तर-तर तेज हो रही है।'

धरमशाला से चलकर हम दोनों गांव के बीच वाले मैदान में आ थमे। जलदाय विभाग की सार्वजनिक टूटियों का एकमात्र स्टेण्ड घूंघटे और घड़े से एकमेक हो चुकी औरतों से घिरा था। बड़े-से मैदान में जाल, पीपल और नीम के घेर-घुमेरे बिरछ झूम रहे थे। एक नीम की छाया में हमारी बारात वाली लॉरी खड़ी देखकर बदरी मुझे उधर ले गया। न जाने उसे कैसे पता लग गया कि लॉरी का ड्राइवर जर्दा खाता है। हमारे करीब पहुंचने तक खलासी पानी की केतली भर लाया। बदरी ने पूछा, 'कैसे ड्राइवर साब!' ड्राइवर ने मजाकिया गम्भीरता से कहा, 'पास के गांव से एक बारात उठानी है। बस अब चले, यों ही चाय-पानी में देर कर दी।'

'कौन से गांव से?' बदरी ने पूछा और बातों की पटकार करते ड्राइवर से जर्दा मांग डाला।

मैंने पूछा, 'क्यों, सिराजसर तेरी ससुराल है बदरी ?'

'नहीं रे मास्टर...तू तो मजाक करने लगा। तू सरकारी नौकर है, तुझे क्या पता यह प्राइवेट दुकानदारी क्या चीज होती है। पहले पास से सामान दो, फिर पैसों के लिए पीछे भागो....'

'बस, बस। मैं समझ गया।' मैंने बीच में ही कहा, 'तो वहां तेरे को उधार वसूलने जाना है।'

'हां, यार ! और जाते ही पैसे मिल जाएंगे। कैसे ड्राइवर सा'ब, सिराजसर कितनी देर में पहुंच जाएंगे ?'

ड्राइवर ने लॉरी स्टार्ट कर दी थी, खिड़की में सिर निकालकर बताया, 'कोई आधेक घण्टे में। क्यों, चलना हो तो छोड़ दूं।'

बदरी ने कातरता से मेरी तरफ देखा और हिसाब फैलाने लगा, 'आध घण्टे का मतलब कि साढ़े ग्यारह तक पहुंचेंगे...खाने के वक्त तक आराम से लौट सकते हैं।'

मेरी ढीली मुस्कुराहट को बदरी ने हामल समझ लिया और मुझे खींचकर लॉरी में चढ़ाने लगा। मैं कसा-कसा सा भीतर पहुंचा कि बदरी ने कहा, 'चलो, ड्राइवर सा'ब.. मास्टर क्या जानेगा कि गाव की बारात में गया था।'

बदरी ने मुझे रास्ते में ही बताया कि उसका देनदार और कोई नहीं, गाव के डोकलरामजी कुम्हार का बेटा हड़मानिया है। गये बरस वह पोस्ट-आफिस में कच्ची नौकरी पर रहा था। महकमे ने उसे पक्का कर के इस गवई डाक-व्यवस्था का डाकिये से लेकर पोस्टमास्टर तक बना डाला और पहली नियुक्ति पर यहां ला पटका, जहां पखेरू भी शायद रास्ता भूले ही पहुंचते होंगे।

पूछते-पाछते हम डाकघर पहुंचे। मुड़-गोबर के मिश्रण से बना कच्चा आसरा जिसके ऊपर फूस की छाजन थी। हड़मान के पास दो-तीन आदमी 'ढेरियां' पर ऊट की जट कातते बैठे थे। हमें देखते ही हड़मान किलकारी मारकर आया, जैसे भरत को खोजते-खोजते हम दो राम एक साथ आ पहुंचे हों। बारी-बारी हम दोनों से गले मिलकर वह ढेरिया थामे भौचक देखते मर्देडियों से मुखातिब हुआ, 'देखते क्या हो....मेरे गांव से आए हैं, भाई हैं मेरे, जाओ दूध-चाय का बंदोबस्त करने के लिए मेरे घर कहो।'

उनमे जो कम उम्र का लड़का-सा था, वह उठकर चला । हडमान ने जाते हुए उसे बुलाया, 'अरे, सुण....हुणताराम . घर पर रसोई का भी कह देना । अब कोई खाए बगैर थोड़े ही भेजूंगा इनको ।'

'ना, ना हडमान.. ।' बदरी ने मनाही करने को मुह खोला, 'हम तो बारात मे आए है ।'

'ना माईजी, ऐसा कैसे होगा कि आप इस काले कोसो मेरे पास आए और बिना खाए पिए जाने दू, हरगिज नही ।'

'मैं तो, तेरा कुछ हिसाब ।' बदरी ने असल बात बताने मे ही भलाई देखी ।

'हा, वो मैं अभी कर देता हू बदरी माईजी. पर मेरे घर पर कुल्ला थूके बिना हरगिज नहीं जाने दूंगा ।' हडमान ने अनसुनी करते अपनी जेब से नोट निकाले और गिनकर एक सौ तीस रुपये बदरी को थमा दिये । बदरी रुपये हाथ मे लिए अबश सा मेरी तरफ देखने लगा ।'

'चाय आए तब तक आप यही बैठो.. मै ब्राह्मण दादे की दुकान मे निगाह करता हू कि कोई हरी सब्जी हो तो... ब्राह्मण दादा इस गाव का बडा बाजार है, जहा साग-भाजी से लेकर सोना-चादी तक की खरीद-बेच होती है ।' हडमान ने हँसकर बताया और कहा 'अभी चाय आती है, और मैं भी आता हू...आप यही आराम करो ।'

मुझे प्यास लगी थी । मैने सोचा, चाय लाने वाले से पानी मगाऊगा । हडमान उतावला-सा निकल चुका था । मैंने हडमान के हिये की हुलस का असर बदरी के चेहरे पर ढूढना चाहा । उसका चेहरा उड़ा हुआ था । मुझसे नजर मिलते ही बोला, 'मास्टर, आज तो फॅस गए ।'

मैं बदरी के इस अप्रत्याशित व्यवहार से अचभित रह गया । तभी बदरी फिर बोला, 'चल अब खड़ा रहने मे भी मुसीबत है.. बात तेरे को रास्ते मे बताऊगा, चल आ-जा ।'

बदरी ने फिर मेरी बाह पकड़ी और उस कच्चे आसरे से खीचकर मुझे बाहर ले आया । मै उसे रोककर पूछता, पर उसकी बदहवासी देखकर मुझे भी किसी अनहोनी की आशका ने घेर लिया । तरह-तरह के अनुमान साधता मैं बदरी के पीछे चुपचाप चल पड़ा ।

गाव की हदो से आगे निकल आने पर ही बदरी ने तसल्ली की सास भरी । मै भी तेज चलने से बुरी तरह हाफ चुका था । दोनो की सासें मद पर आई तो

[illegible] हाँफता [illegible] में [illegible] की हुई डाली [illegible]
[illegible] के नजदीक पहुंचा। [illegible] देखा जो अपने अपने स्थान पर [illegible] को मजबूर हुई। पेड़ के नाम पर [illegible] हुआ होगा [illegible] पड़ा हमारा मुंह चिढ़ा रहा था। [illegible] हम [illegible] बढ़ते रहे। थोड़ी देर में ऐसा लगने लगा कि [illegible] के सिवा कुछ भी नहीं आ रहा। [illegible] जैसे [illegible] हूं [illegible] की तरह [illegible] चुका था। बदरी ने मुंह लटका दिया और [illegible] आवाज में बोला [illegible] अब '

मेरा [illegible] बदरी आगे बढ़ [illegible] रहा था। [illegible] गरम रेत से [illegible] आ रही थी। ज्यों-ज्यों [illegible] निकट आ रहा था मेरे भीतर जैसे नये प्राणों का संचरण होने लगा।

बदरी अपनी [illegible] पर आ चुका, [illegible] अब तक [illegible] सामने थी। [illegible] गुमटी [illegible] के नीचे पहुंचकर बदरी ने मेरा कंधा छोड़ दिया और जमीन सूंघने लगा। मैं लपक-कर गुमटी की तरफ बढ़ा।

गुमटी में ऊंघता हुआ आदमी मुझे बाद में नजर आया, पहले मैंने पानी का घड़ा देखा। किसी अजनबी की अचानक उपस्थिति से वह फटेहाल, अधबूढ़ा आदमी हड़बड़ाया और उठकर उसने दकाल की 'ठहर!'

मेरे हाथ-पैर उसकी दकाल सुनकर जस के तस रह गये। मेरे हाथ में उठाई हुई डोली उसने छीन ली और कहा, 'यों पानी पीकर तुम्हें मरना है क्या?. पहले थोड़ा सुस्ता लो।'

मैं जैसे रो पड़ा होऊं बोला, 'बाहर मेरा दोस्त है....प्यास से मर रहा है.... बेहोश हो चुका है।'

'कुछ नहीं होगा, उसको।' आदमी ने सयत होकर कहा। फिर खुद घड़ा उलटाकर डोली भरी और गुमटी से बाहर निकला।

थोड़ा सुस्ताने के बाद हमें चुल्लू-चुल्लू पानी पिलाकर उसने इस बेतुकी यात्रा का हालचाल पूछा। मेरे संक्षेप में बताने पर बोला, 'शहरी लगते हो, पढ़े-लिखे हो, ब्राह्मण हो...हू?' उसकी इस गहरी 'हूं' का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। वह पलटकर बदरी की तरफ मुड़ा और बोला 'पंडतजी, मेरी तरफ देखो . पानी पीने से पहले न सही, पीकर जात नहीं पूछोगे?'

बदरी ने मुंह उठाकर देखा, पर बोला नहीं।

'मैं हरिजन हूं, जात का भंगी। यह घड़ा जिसका पानी पीकर आपकी आंखें खुली हैं, मेरा ही है। ब्राह्मण का धर्म लेने का गुनाह कर के मैं भी नरक का भागी हो गया...बोलो, हुआ या नहीं ?'

बदरी आंखें फाड़े आदमी की तरफ देखता रहा। मैं एक तरफ खड़ा दोनों को देख रहा था।

वह आदमी चुप हो गया, तो बदरी खिसकता हुआ उठा और आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रख दिया, 'भगवान मुझे माफ करना, भगवान।'

'चलो, ब्राह्मण देवता गुमटी की छाया में थोड़ा आराम कर लो कुछ देर ठहर कर, पेट भर पानी पीकर निकलना। मैं रास्ता पकड़ाने साथ चलूंगा कुछ दूर...।' आदमी ने हँसकर कहा और गुमटी की तरफ मुड़ गया।

बदरी भारी कदमों से आदमी के पीछे चल रहा था। मैंने आवाज दी, 'बदरी...!'

'मास्टर, बहस मत करना। चुपचाप गुमटी में चला आ।' हारे हुए लहजे से बदरी मुझसे बोला, तो मैं देखता रह गया।

पीछे छूटे हुए सारे धोरों की रेत जैसे बदरी के चेहरे पर पसरी हुई थी।

डायमंड की दुनिया

चन्द्रकान्ता कक्कड

'चाची ! खाना लगा दिया है, जल्दी आओ। दादी अम्मी कहती है सब ठंडा हो जायेगा।'

न चाहते हुए भी उसे उठना पड़ा। कालेज से लौटकर बस पर्स ही तो रखा था टेबल पर कि विचारों ने उसे जकड़ लिया था। जब तब वह अतीत की गिरफ्त में आ जाती है। छः वर्ष हो गये हैं उसकी शादी को। अभी तक बच्चा-वच्चा कोई है नहीं। बस बड़ी दीदी (जेठानी) के बच्चे को जी-जान से प्यार करती है। उसकी बात तो रखनी ही पड़ेगी, सो झट से बोली, 'आयी, टिंकू बेटे।' साड़ी खोल गाउन पहन लिया और खाने की मेज पर जा बैठी।

नाना व्यजनों से सजी मेज देखकर मुस्करायी। वह सोच रही थी कि एक तरफ भूख, दूसरी तरफ पैसा। सुख वहां भी नहीं था, यहां भी नहीं है। वहां स्ट्रगल थी यहां बोरियत है। भरे-पूरे परिवार में रहकर भी निहायत अकेला महसूस करती है। बिजनेसमैन का घर है। फैक्टरी चलती है। बेशुमार धन बिखरा पड़ा है, लेकिन वह आनन्द नहीं, जो वह चाहती है।

'क्या बात है, अजलि। कॉलेज में कोई पार्टी-वार्टी थी क्या? आज तुम कुछ खा ही नहीं रही हो?'

। लेकिन कौर गले में अटक-अटक जाता था। परिवार म
रही-लिखी है। दीदी दसवें में फेल रही। ननद रानी
[illegible] नवें दर्जे के बाद ही बिजनेस सम्हालने
[illegible]। हां, उसका पति अंतिम जरूर
[illegible] उसके साथ मैरिज कर ली थी।
[illegible], लेकिन परिवार में आते कई बार
[illegible] है। 'नई, वे कहते हैं, ज्यादा लिखा है

निखिल अच्छी तरह समझ गया, अब हम अनपढ़ों का ज़माना तो गया। बिजनेस में सारा दिमाग चाहिये।'

उसने फिर जबान खोलना ठीक न समझा था। बात भी ठीक है, आखिर उसकी औकात भी क्या है? यही न कि सिर्फ एम. ए. बाकी तो कुछ नहीं। निहायत गरीब बाप की बेटी। तीन कपड़ों में आ गयी अनिल के घर! लव मैरिज समझो एक तरह से!

देवांगना-सी सुन्दर! ऊंची-लम्बी कदकाठी! गुलाब-सा खिला-खिला रंग! भरी-भरी, मांसल, सुघड़ देहयष्टि। अजन्ता एलोरा की कोई कला-कृति हो जैसे। जो कोई देखता, देखता ही रह जाता है।

जैसे-तैसे दो-चार कौर निगल उठ खड़ी हुई। टिंकू, रिंकू हमेशा की तरह उसके साथ लग लिये, 'चाची, देखो, डैडी मेरे लिए हेलीकाप्टर लाये हैं। मैं इसमें बैठ कर उड़ूंगा।'

'और मेरे लिए कैरम बोर्ड आया है, चाची, हमारे साथ खेलो।'

उसने जैसे कुछ नहीं सुना, 'देखो, राजा बेटे! आज कॉलेज में बहुत बोलना पड़ा। सिर में बहुत तेज़ दर्द है, मैं तो अब सोऊंगी। शाम को खेल जमायेंगे।'

'मैं आपका सिर दबा दूं, चाची?' अब और वह बच्चों को नहीं रोक पायी थी। बोली, 'अच्छा, चलो तुम लोग सो रहना यहां।' कुछ देर बच्चे उछल-कूद और धमाचौकड़ी मचाकर कमरे से निकल गये। वह कहीं दूर डूबी रही।'

हायर सैकण्डरी करते ही पिता ने कहा था—'तू अब कहीं नौकरी कर ले, बेटी।' उसने हताश मन अपनी फ्रेंड से कहा था—'मीतू! देख डैडी कहते हैं कि मैं कोई नौकरी करूं।'

'तुम्हारी पढ़ाई?'

'पढ़ाई खत्म।'

'पगली! ऐसा हरगिज़ न करना। चुपचाप बी. ए. कर ले।' जैसे-तैसे मम्मी से यह सुन कर उसने बी. ए. में प्रवेश लिया था। हां, घर की आर्थिक दुर्दशा देखते हुए उसने तीन-चार ट्यूशन ले लिये थे।

था। अब तो घर उसकी तरफ खिंचा चला आ रहा था। घर में खुशहाली छा गयी थी। बदनसीबी खुशनसीबी में बदल गयी थी।

दिल्ली कॉलेज में उसका खूब मन लगा था। स्टूडेंट्स बहुत कदर करते थे। हर कोई उसकी पर्सनेलिटी और खूबसूरती के साथ-साथ पढ़ाने के गुणों से प्रभावित था।

तभी एक दिन ! आज से ठीक एक वर्ष पहले ! अनिल भारत एम्पोरियम में उससे टकरा गया था। 'मिस ! ये मेरे अंकिल हैं।' परिचय कराने वाला उसका स्टूडेंट अमित था।

दूसरे दिन अमित ने कहा था, 'मिस ! मेरे अंकल आपसे मिलना चाहते हैं।'
'ओह ! हां उनसे कहना वे मुझे मेरे होस्टल में मिल सकते हैं।'

'थैंक्यू, मैडम, वे आज शाम सात बजे आपसे मिलेंगे। उन्होंने कहा था कि मैडम चाहें तो उनका एड्रेस ले आना, शाम को यही टाइम कह देना।'

'ओ. के.।' उसके मन में फिर कुछ कौंधा, पर ऊपर से संयत बनी कलाम लेती रही थी।

ठीक सात बजे चमचमाती गाड़ी आकर उसके रूम के आगे रुकी। 'आइये,' उसने उठकर अभिवादन किया। अन्दर से आयी।

'मुझे अनिल कहते हैं। कल आपको पहली बार क्या देखा, लगा कि अपनी तलाश पूरी हो गयी।'

वह मुस्करा भर दी।

'चलिये, जरा मौर्य होटल तक घूम आया जाय।'

'मौर्य होटल। नहीं-नहीं।' इस मामले में तो वह पूरी फकीर है। प्रकट में बोली—'आप नहीं जानते, अनिल साहब, मेरी वार्डन एकदम सख्त मिजं हैं, इस मामले में।'

'परमीशन मैं लेता हूं आपके लिए, यू डोंट वरी।' बस फिर तो उसकी ट्यूशन का पत्ता गोल हो गया—रोज का रूटीन। दिल दे बैठी, यानी यौवन का तकाजा भी यही था। उसके सामने उसके परिवार के भरण-पोषण का सवाल था। अनिल धनी बाप का बेटा था। बहुत बड़ी एक कम्पनी का मालिक। बेशुमार दौलत का धनी। साथ अक्सर रहने की बीमारी। अब वह ड्राइवर की जगह कार भी खुद ड्राइव करने लगा था।

ाजलि, होस्टल छोड़ दो तुम अब ? ऐसा करो ग्रीन पार्क में ही मेरे
ा के सामने एक कमरा ले लो, जिससे मेरे मम्मी, डैडी तुम्हें देख सकें।'

तो मेरा कल्याण हो गया समझो। आधा वेतन उस कमरे की भेंट चढ़ा
बाकी क्या खुद खाऊ, क्या परिवार को खिलाऊ ?' प्रकट में बोली,
, यह तो हरगिज़ नहीं होगा। वहां से मालूम है मेरा कॉलिज कितनी दूर
गा।'

ीरी-गरीबी की गहरी खाई दोनों के अधबीच यहां भी खड़ी थी। वह
ामा-सी और वह देवराज इन्द्र-सा। भला मेल हुआ कहीं। ऐसा ? तब
-साफ क्यों नहीं सब बता देती गीताजली अनिल से। ठीक है आज वह
मे साफ शब्दों में कह देगी। झझावात से मुक्त होने का यही तरीका है
।

था। अब तो घर उसकी तरफ खिंचा चला आ रहा था। घर में खुशहाली छा गयी थी। बदनसीबी खुशनसीबी में बदल गयी थी।

दिल्ली कॉलेज में उसका खूब मन लगा था। स्टूडेंट्स बहुत कदर करते थे। हर कोई उसकी पर्सनेलिटी और खूबसूरती के साथ-साथ पढ़ाने के गुणों से प्रभावित था।

तभी एक दिन! आज से ठीक एक वर्ष पहले! अनिल भारत एम्पोरियम में उससे टकरा गया था। 'मिस! ये मेरे अंकिल हैं।' परिचय कराने वाला उसका स्टूडेंट अमित था।

दूसरे दिन अमित ने कहा था, 'मिस! मेरे अंकल आपसे मिलना चाहते हैं।'
'ओह! हां उनसे कहना वे मुझे मेरे होस्टल में मिल सकते हैं।'

'थैंक्यू, मैडम, वे आज शाम सात बजे आपसे मिलेंगे। उन्होंने कहा था कि मैडम चाहें तो उनका एड्रेस ले आना, शाम को यही टाइम कह देना।'

'ओ. के।' उसके मन में फिर कुछ कौंधा, पर ऊपर से सहज बनी प्रणाम लेती रही थी।

ठीक सात बजे चमचमाती गाड़ी आकर उसके रूम के आगे रुकी। 'आइये,' उसने उठकर अभिवादन किया। अन्दर ले आयी।

'मुझे अनिल कहते हैं। कल आपको पहली बार क्या देखा, लगा कि अपनी तलाश पूरी हो गयी।'

वह मुस्करा भर दी।

'चलिये जरा मौर्य होटल तक घूम आया जाए।'

'मौर्य होटल। नहीं-नहीं।' इस मामले में तो वह पूरी सतर्क है। प्रकट में बोली—'आप नहीं जानते, अनिल साहब, मेरी पॉलिसी एकदम साफ [illegible] है, इस मामले में।'

'गीतांजलि, होस्टल छोड दो तुम अब? ऐसा करो ग्रीन पार्क मे ही मेरे विला के सामने एक कमरा ले लो, जिससे मेरे मम्मी, डैडी तुम्हे देख सकें।'

'तब तो मेरा कल्याण हो गया समझो। आधा वेतन उस कमरे की भेंट चढा दू। बाकी क्या खुद खाऊं, क्या परिवार को खिलाऊ?' प्रकट में बोली, 'ऊहू, यह तो हरगिज नही होगा। वहा से मालूम है मेरा कॉलेज कित्ती दूर पड़ेगा।'

अमीरी-गरीबी की गहरी खाई दोनो के अधबीच यहा भी खडी थी। वह सुदामा-सी और वह देवराज इन्द्र-सा। भला मेल हुआ कही। ऐसा? तब साफ-साफ क्यो नही सब बता देती गीताजली अनिल से। ठीक है आज वह उससे साफ शब्दो मे कह देगी। झझावात से मुक्त होने का यही तरीका है अब।

दूसरे दिन सब कुछ सुनकर अनिल ने जोर देकर कह दिया था, 'मुझे सिर्फ तुमसे मतलब है, तुमसे।'

'मेरे डैडी सिवाय मेरे, कुछ नही दे सकेंगे दहेज के नाम।'

'फिर वही मूर्खता भरी बातें।'

'लेकिन अपने पेरेंट्स से तो पूछ लो? फिर सोचो, डियर। मेरी नौकरी से मेरा परिवार चलता है। भाई को जब तक पैरों पर खड़ा नहीं कर लेती, तब तक कैसे शादी कर सकती हूँ?'

'ओह! आखिर तुम समझती क्यों नहीं, तुम्हारा वेतन बाकायदा उन्हें पहुंचता रहेगा। हमारे घर इतना पैसा तो नौकरों पर खर्च हो जाता है।'

ीताजलि, होस्टल छोड दो तुम अब ? ऐसा करो ग्रीन पार्क मे ही मेरे
ंगला के सामने एक कमरा ले लो, जिससे मेरे मम्मी, डैडी तुम्हे देख सकें।'

तब तो मेरा कल्याण हो गया समझो। आधा वेतन उस कमरे की भेंट चढ़ा
ू। बाकी क्या खुद खाऊ, क्या परिवार को खिलाऊ ?' प्रकट मे बोली,
ऊहू, यह तो हरगिज़ नही होगा। वहां से मालूम है मेरा कॉलेज कित्ती दूर
पड़ेगा।'

अमीरी-गरीबी की गहरी खाई दोनो के अधबीच यहा भी खडी थी। वह
सुदामा-सी और वह देवराज इन्द्र-सा। भला मेल हुआ कही। ऐसा ? तब
साफ-साफ क्यो नही सब बता देती गीताजली अनिल से। ठीक है आज वह
उससे साफ शब्दो मे कह देगी। झझावात से मुक्त होने का यही तरीका है
अब।

दूसरे दिन सब कुछ सुनकर अनिल ने जोर देकर कह दिया था, 'मुझे सिर्फ
तुमसे मतलब है, तुमसे।'

'मेरे डैडी सिवाय मेरे, कुछ नही दे सकेंगे दहेज के नाम।'

'फिर वही मूर्खता भरी बातें।'

'लेकिन अपने पेरेंट्स से तो पूछ लो ? फिर सोचो, डियर। मेरी नौकरी से
मेरा परिवार चलता है। भाई को जब तक पैरो पर खडा नही कर लेती, तब
तक कैसे शादी कर सकती हूँ ?'

'ओह। आखिर तुम समझती क्यो नही, तुम्हारा वेतन बाकायदा उन्हे पहुचता
रहेगा। हमारे घर इतना पैसा तो नौकरो पर खर्च हो जाता है।'

अनिल के माता-पिता और भाई-भाभी गीताजली को देखकर खिल उठे थे,
'भई लड़की है कि कोई रत्नजड़ा-हीरा। गजब की खूबसूरती और यह
इम्प्रेसिव पर्सनेलिटी।' वे सब भी उस पर लट्टू हो गये थे। अनिल के
उदारवादी विचार वाले डैडी को पता नही क्या खुशी थी था कि उनका
भाग्य ही प्रसन्न हो उठा था, वे उसी शाम उसे अपने घर साथ लिवा ले

वह तो चौंधिया ही गयी थी। 'अच्छा, तुम्हारे अफसर, अब
ान पर हमारी बाईन ... होती है।' उसकी ...
ो हो ढग से निकल आना चाहती थी। उसका

अनिल चला गया तो वह अकेली विचित्र भूल-भुलैया में छटपटाने लगी। नयी अजानी जगह, अनजाने लोग। लगा जैसे किसी पक्षी के पर काट दिये गये हों! करीब रात दस बजे द्वार धीरे से बजा। वह कांप गयी। इन अमीरों की जीवन का क्या भरोसा! अब क्या करे? खोले या नहीं दरवाजा।

कॉल-बैल फिर बजी। वह भय से थर-थर कांपने लगी, बदन पसीने से नहा उठा! पत्ते की नाईं कांपते दरवाजा खोल दिया। भय से फफक पड़ गयी वह! 'डैडी तुम? इतनी रात गये! कैसे आये? घर में सब ठीक तो है न? मां—भाई—बहनें।' वह एक सांस में पूछ गयी।

'इतना हांफ और हकला क्यों रही है, बेटी! तुम्हीं ने तो तार देकर बुलवाया है! लड़के टेलीग्राम मिला और मैं चला। घर तो बेटी बहुत ही अच्छा है। कितना किराया है?'

बात उसकी समझ में आ गयी। उसे संयत होने में समय लगा, 'बैठो न डैडी, सब बतलाती हूं।' वह कुछ कहे कि सुदामा के आगे भगवान कृष्ण आ खड़े हुए साक्षात्। अनिल और उसके डैडी। फिर उसके कहने को कुछ नहीं था।

सब कुछ सुनकर डैडी ने कहा, 'लेकिन देने को मेरे पास यही सच्चा मोती है सिर्फ—गीता। और कुछ भी नहीं, निहायत दरिद्र आदमी हूं।'

बस पखवाड़े में सब कुछ तय हो गया। दोनों तरफ का प्रबन्ध अनिल की तरफ से हुआ। लाज ढांप ली गयी। गीताजली विधिवत् ब्याहकर धूम-धाम और सम्मान के साथ डोली में बैठ विदा हो आयी।

तब से अब—पूरे छः साल का समय! गीता है समझदार। सास ननदों के बावजूद नौकरी कर रही है। कुछ भी हो, सर्विस वह कभी नहीं छोड़ेगी। अनिल की मम्मी के डर से आधा वेतन मां को भेजती है, आधा मम्मी (सास) को दे देती है। सेवा चलाती आ रही है, जब तक भाई पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता।

उत्सवों पर रेडियो आर्टिस्ट बुलाये जाते है। ब्याह-शादियों पर तो पूरी फिल्में ही तैयार की जाती है। कहा दरिद्रनारायण का वह जीवन ! कहा यह महा ऐश्वर्य ! वह हतप्रभ है। घर-परिवार मे उसके धन के आगे विद्वत्ता की पूछ कितनी है !

छोटे देवर की शादी फाइव स्टार होटल मे हुई। थाल भर चादी-सोना और डायमंड के सेट आये। एक अगूठी उसे भी मिली। रह-रहकर वह देखती रही, यह डायमंड है या व्हाइट मेटल। अरे इन अमीरों के चोचलो का क्या कहना ! ये डायमंड को नकली, नकली को असली डायमड बतला दें—'समरथ को नहिं दोस गुसाई।'

वह तो इस माहौल मे बेतरह ऊब गयी है। घर परिवार की बैठको, गोष्ठियो में उसका मानव उखडा-उखड़ा रहता है। रह–रहकर उसके मन मे कुछ अटक जाता है। इस तरह तो उसका कैरियर ही खत्म हो जायेगा !

उसके बारे मे हर सदस्य की अलग प्रतिक्रिया थी। ससुर कहते, 'धन तो सभी ला रहे है, पर लडकी तो बहू रूप मे पहली आयी है घर में !'

वह जिस आसमान का परिदा है, उसके लिए पेड़ की ठण्डी छाया काफी है। घरों की छतो के नीचे कैद, बन्द दीवारों पर खिंचे पर्दों के भीतर पसरा अपरिमित वैभव—इसमे घुट गयी है वह। उसकी सवेदनाओं को मरने से बचाना होगा। सवेदनाओं की पराकाष्ठा तो उस दिन हो गयी थी।

'किशनसिंह ! यह चाय किसके लिए लिये जाते हो ?' मम्मीजी ने मर्डोर से सवाल किया।

'चिड़िया की टीचर के लिए।'

'क्या रोज-रोज चाय ! खाली चाय पीते-पीते टीचर मरेगी नहीं क्या ?'

'तो मम्मी, नाश्ते मे कुछ भेज दो न ?' वह बात मे बीच मे बोल पड़ी।

मम्मी मुख-[illegible] से उसे घूरने लगी। रेणु को मम्मी से कहते उसने सुना था, 'मम्मी ! यह छोटी भाभी जाने समझती क्या है अपने को ! नौकर से चाय-कॉफी भी तो नहीं मांगती, किस बूते पर अकड़ी रहती है भला ?'

यह सब [illegible] मात्र अभिनय [illegible] है। [illegible]

इसके। आखिर सरकार कहां जायेगे ? कभी कुछ देगा हो तभी न ? बाप के घर भुखमरी और महागरीबी होगी !'

उसके बारे में हर सदस्य की अलग प्रतिक्रिया थी। ससुर कहते, 'धन तो सभी ला रहे हैं, पर लड़की तो वह रूप में पहली आयी है घर में ! सुन्दर, सुघड़ नेक और सुशील।'

'तभी तो अपने, सामने किसी को समझती ही नहीं कुछ', बड़ी ननद बोली थी।

'अरे भई, कुंठाग्रस्त है', रेणु कहने लगी।

'जाने पिताजी ने इसे इतना सिर क्यों चढ़ा रखा है ?' जेठजी भी बड़बड़ाये थे।

सभी सेवक छोटी मेम साब का आदर-सम्मान करते थे, आपस में कहते, 'छोटी मेम साब कितना मीठा बोलती है, रे किशना ! एकदम कोयलिया-सी मीठी बोली है उनकी।'

'मुझे कभी डाटा नहीं उन्होंने बड़ी मेम साब की तरह।'

'अपनी छोटी मेम साब सिम्पल कितनी है न', ड्राइवर एक दूसरे से बतियाते।

'किसी गरीब घर की हैं, सुना है।'

'चाहे जो हो, हमें तो उनसे बहन का-सा अपनापन मिलता है, रे रामसिंह ! मेरा मन करता है ... व की टहल में ही लगा रहूं।'

उलझ पड़ी–ज़रा सी देर श्रीराम

मैं बना जाती हूं,

थे। यही हालत रात को सोने के समय थी। बूढ़ी-बड़ी महिलाओं और आद-
मियों के बीच उसी बड़े हॉल में ही दोनों के लिए जमीन पर गद्दे-रजाई डाल
दिये गये थे। तब वह सहन न कर सकी थी। उसने बलात् बहन को कमरे में
हाथ पकड़कर खींच लिया था। अगले सवेरे (बहू के घर में आते ही) उसने
उन्हें घर के लिए रवाना कर दिया था। लहू का घूट पीकर रह गयी थी
गीतांजलि।

उसकी रही-सही सहन शक्ति तब जवाब दे गयी थी, जब मम्मी ने कई लैटर
लिख-लिखकर उसकी सास और उसके ससुर को अपने घर बुलाया था। बड़ी
मुश्किल से ये लोग तैयार हुए थे जाने को। हुआ यह था कि उसके इकलौते
भाई विश्वास को लेक्चररशिप मिल गयी थी। इस खुशी में पापा बुलवा रहे
थे। इस्टालमैंट्स पर फ्रिज, टी. वी. भी उन्होंने ले लिया था, ताकि किसी
कदर समधी को अच्छा रिपोर्ट दे सकें। पिछले हफ्ते भर से ये लोग बुरी
तरह जुटे हुए थे। रात-दिन एक करके अपने हाथों से घर को सजाया था
उन्होंने।

वही, मम्मी और रेणु (सास, ससुर, रेणु) और वह खुद, पाँचवां ड्राइवर—
पाँच जने दो दिन के लिए गये थे, माँ के पास। मम्मी-पापा और वह इनकी
तीमारदारी में जुटे रहे थे। इनकी मौलिकता के आगे विश्वास किसी भी ला
रहा थी। परन्तु सासजी को जैसे वहां पल-पल मुश्किल और भारी पड़ रहा
था। रह-रहकर वह गाड़ी में जा बैठती। साथ क्या [illegible] से कम थी।
[illegible] शृंगार के प्रसाधनों से भरे बॉक्स उनके साथ रहते थे सदा। कहीं भी
जाने से पहले चेहरे पर सफेदी कुनिया [illegible] जातीं और बिंदी [illegible]
[illegible]।

'टाप्स ?'

'गीताजलि ! सुना, रेणु का पर्स कहीं उड़ गया ! उसके किशोर के दिये हुए डायमड के टॉप्स थे। यानी सगाई मे जो लड़केवालो की तरफ से आये थे।'

सबके चेहरे फक पड़ गये। मा तो बुरी तरह काप गयी, विश्वास के चेहरे पर आक्रोश तमतमा आया।

'कुछ भी हो गीता, विद्वता तो हमने तेरी खातिर थाम दी, लेकिन हमारी ईमानदारी पर आच नहीं आनी चाहिये। यही तो हम लोगों की महान दौलत है।'

'कुछ याद पड़ता है कहा छोड़ा, बेटी ?' मा बेहद सहमी हुई थीं।

'यहीं लायी थी। पिक्चर चलते वक्त भी था, पर फिर मालूम नहीं....।

भाई-बहने सब घर छानने में लग गये गोया गरीबो की तलाशी ली जा रही हो। जो गोपनीय था घर का वह भी सार्वजनिक हो गया। पर्स हो तो मिले !

गीताजलि ने माथा पकड़ लिया, डायमड, सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गये। दूसरे दिन सवेरे एक गांठ मन मे पालकर ये लोग गीना को लेकर चले आये। उधर मम्मी-पापा बेचैन, इधर गीताजलि छटपटाने लगी ! सोने की दीवारों मे उसका दम घुटने लगा। रात भर सो न सकी ! सहन करने की भी कोई सीमा होती है ! उसने सवेरा होते ही नाश्ते की मेज पर पूरे परिवार के सामने अपना विकल्प पेश कर दिया। मैं अब और यहा रहना नही चाहती। हमे आप जोर-बाग वाला मकान खाली करवा दो, पापा ! यहा रहकर न तो मैं रिसर्च कर सकती हू, न ही खुले दिमाग से कुछ सोच सकती हू, हर वक्त एक तनाव मुझे खाये जाता है। यह सोना, चादी, डायमड की दुनिया तुम्हीं सम्हालो। मुझे तो रिसर्च करना है। सच्चे डायमड से सौदा करना है। अब मैं अपने उत्थान का एक दिन भी यहा और बलिदान नहीं कर सकती।'

उसने अनिल से भी साफ कह दिया था, 'आखिर मैं एक प्रोफेसर हू। मेरा भी अपना एम्बीशन है। फिर छ. साल हो गये इस टेंशन की दुनिया मे रहते ! हमारे एक बच्चा अब तक नहीं हुआ। दुनिया में जीने के लिए सिर्फ पैसा ही सब कुछ नहीं होता ! मैं अपने ढग से जीना चाहती हू। मुझे तुम्हारी डायमड की दुनिया से कोई मोह नहीं। हम लोग वैसे बहुत निर्धन है, पर बेईमान नहीं। तुम धनी दूसरी तरह के हो, हम दूसरी तरह के। सरस्वती-लक्ष्मी एक साथ नहीं रह सकतीं—समझे। मुझे खुला जीवन चाहिये ! बोलो, है मंजूर,

थे। यही हालत रात को सोने के समय थी। बूढ़ी-बड़ी महिलाओं और आद-मियों के बीच उसी बड़े हॉल में ही दोनों के लिए जमीन पर गद्दे-रजाई डाल दिये गये थे। तब वह सहन न कर सकी थी। उसने बलात् बहन को कमरे में हाथ पकड़कर खींच लिया था। अगले सवेरे (वह के घर में आते ही) उसने उन्हें घर के लिए रवाना कर दिया था। लहू का घूंट पीकर रह गयी थी गीतांजलि।

उसकी रही-सही सहन शक्ति तब जवाब दे गयी थी, जब मम्मी ने कई लैटर लिख-लिखकर उसकी सास और उसके ससुर को अपने घर बुलाया था। बड़ी मुश्किल से ये लोग तैयार हुए थे जाने को। हुआ यह था कि उसके इकलौते भाई विश्वास को लेक्चररशिप मिल गयी थी। इस खुशी में पापा बुलवा रहे थे। इंस्टालमैंट्स पर फ्रिज, टी. वी. भी उन्होंने ले लिया था, ताकि किसी कदर समधी को अच्छा रिगार्ड दे सकें। पिछले हफ्ते भर से वे लोग बुरी तरह जुटे हुए थे। रात-दिन एक करके अपने हाथों से घर को सजाया था उन्होंने।

डैडी, मम्मी और रेणु (सास, ससुर, रेणु) और वह खुद, पांचवा ड्राइवर—पांच जने दो दिन के लिए गये थे, मां के पास। मम्मी-पापा और वह इनकी तीमारदारी में जुटे रहे थे। इनकी भौतिकता के आगे विवशता खिंची ही जा रही थी। परन्तु सासजी को जैसे वहां पल-पल मुश्किल और भारी पड़ रहा था। रह-रहकर वह गाड़ी में जा बैठती। सास क्या फिल्म एक्ट्रेस से कम थीं। सोलह शृंगार के प्रसाधनों से भरे बॉक्स उनके साथ रहते थे सदा। कहीं भी जाने से पहले चेहरे पर तगड़ी कूचियां फेरी जातीं और विदेशी सेन्ट छिड़के जाते।

वह लड़की अभी ज़िन्दा है

रघुनन्दन त्रिवेदी

पहले पहल जब उसे देखा, चारों तरफ कोहरा छाया हुआ था। कुछ भी साफ नज़र नहीं आ रहा था। यहाँ तक कि वह ज़मीन भी, जिस पर मैं खड़ा था और जो बेहद खुरदरी और ऊबड़-खाबड़ होने के बावजूद मुझे मखमल के नरम कालीन जैसी लग रही थी। याद नहीं वह कौन सा वर्ष, महीना और दिन था। इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि तब मेरी उमर सोलह से भी कम रही होगी, जबकि मेरी गलतियों पर गुस्सा होते वक्त लोग मुझे इतना बड़ा होकर भी समझ नहीं आने का उलाहना देते थे और जब वे किसी गम्भीर किस्म की बातचीत में मशगूल होते, मुझे बड़ों के बीच नहीं बैठने की हिदायत देते हुए वहाँ से भगा देते थे। समझ मुझमें थी या नहीं, यह तो पता नहीं, परन्तु अगर समझदारी का मतलब चीज़ों को अपने तरीके से देखना होता है तो निश्चय ही मेरी आँखों पर एक ऐनक लगने लगी थी, जिसकी वजह से अच्छे-बुरे का फैसला मैं थोड़ा-बहुत अपने ढंग से करने लगा था। मां बहुत पहले से ही मुझे अलग सुलाने लगी थीं और अब तो मेरा कमरा भी अलग हो गया था। कहानियाँ भी, जिनसे मुझे बेहद प्यार था, अब मुझे खुद पढ़नी पड़ती थीं। किताबें घर में खूब थीं। और शायद उस लड़की का जन्म उन्हीं किताबों से हुआ होगा।

पहले ही कह चुका हूँ, मुझे वह साल, महीना और दिन याद नहीं, जबकि पहली बार उसे देखा। अब अपनी कल्पना के सहारे यह अनुमान ज़रूर लगा सकता हूँ कि वह शायद दिसम्बर महीने की कोई शाम रही होगी, क्योंकि आज भी दिसम्बर का महीना और शाम का वक्त मुझ में अजीब-सी बेचैनी भर देता है। दिसम्बर के दिनों में दोपहर की तेज़ धूप, सड़कों पर रंग-बिरंगे स्वेटर पहने बच्चे और लड़कियाँ, शाम को ठंड से बचने के लिये तेज़ी से घरों की तरफ भागते लोग, लिहाफ़ में दुबकी रातें और सुबह दम चाय की प्यालियों से उठती हुई भाप—ये सब मुझे अच्छे लगते हैं और जब गरमी का मौसम आता है, तो ऐसे ही दिनों की याद मुझे उदास कर देती है।

वर्ना मैं खुद जा रही हूं।'

ससुर साहब उदार विचारों के थे काफी हद तक। देखा जाय तो केवल उनकी स्नेहिल छत्रछाया ही उसे इस घर से जोड़े हुए थी। उन्होंने जोरबाग वाला घर एक माह के भीतर टेनेंट से खाली करवा दिया अपनी प्रोफेसर बहू के लिए।

जहा वह अनिल के साथ सुखी गृहस्थी बसाने मे जुट गयी।

सेल्फ मे बुक्स जमाते हुए वह मन में 'डायमंड की दुनिया' शोध-विषय की रूप रेखा तैयार करने लगी।

ऑफिस के फोन नंबर, गहरे अक्षरों में बार-बार लिखा हुआ मेरा अपना नाम और फिल्मी गीतों की पंक्तियाँ लिखी हुई थीं मैंने कविता लिखनी शुरू की

'जाड़ों की रात में
जब लोग
लिहाफों में दुबके होंगे
तुम अपनी
टेबल पर झुकी
जाने क्या पढ़ रही होओगी
कोई तुम्हें
देखता होगा
दूर अंधेरे में खड़ा
कब जान पाओगी तुम।'

बाद में ये ही पंक्तियाँ ज्यों की त्यों मैंने पापा की दी हुई एक डायरी में लिख दी, जो आज भी शायद घर में किसी लोहे के बक्से में पापा की किताबों के साथ दबी पड़ी होगी। यह मेरे जीवन की पहली कविता थी। और उसके बाद कविताओं का एक सिलसिला। दो-तीन महीनों में ही मेरी डायरी भर गई। फिर दूसरी, तीसरी और चौथी डायरी भी। डायरियाँ भरते मैं बड़ा होता गया और वह लड़की भी। जितने बदलाव मुझमें आये थे, उतने ही परिवर्तन उस लड़की में भी आते गये। जैसे कि पहले वह सिर्फ एक तस्वीर भर थी, जो ज्यादा से ज्यादा हँसती, बोलती, रोती या उदास हो जाती थी। परन्तु अब वह सोचने लगी थी। हालाँकि अभी भी उसकी सोच का दायरा बहुत सीमित था।

दरअसल मैं खुद भी नहीं चाहता था कि वह मुझ से परे, मुझ से अधिक किसी और विषय पर सोचे। मैं चाहता था उसकी सोच मेरे इर्द-गिर्द घूमती रहे। यह उसका भीतरी चेहरा था, जो बहुत कुछ मां जैसा ही था। मां की तरह वह जल्दी जाग जाती। सुबह दम मेरे लिए चाय लाती। मैं गुस्सा होता वह रो देती। मैं पापा की तरह बाहर से खाना खाकर लौटता, वह भूखी ही सो जाती। मैं पूरे दिन भटक कर घर लेट पहुँचता, वह दरवाजे के पास मेरे इन्तजार में खड़ी मिलती। मैं किसी दूसरे शहर चला जाता, वह गुमसुम हो जाती। दुनिया भर की दिलचस्पियाँ एक तरफ और मैं अकेला एक तरफ। उसकी दिलचस्पी अच्छी जगहें देखने, भड़कीले लिबास पहनने और लोगों के झुण्ड में घिरे रहने के बजाय मुझे जानने में होती। इस तरह मैं अपने तईं मैंने उस लड़की को हर तरह से बांध दिया था और मैं किसी

तानाशाह की तरह हो गया था, जो अपनी मर्जी के बिना एक पत्ता तक नहीं हिलने देना चाहता था।

ये ही वे दिन थे, जबकि मैंने उस लड़की को सिनेमा और किताबों के अलावा कॉलिज में, सम्बंधियों के यहाँ शादियों में, शहर के कुलीन इलाकों में रास्तों पर ढूंढ़ना शुरू कर दिया था और तभी पहले-पहल मीना मेरी जिन्दगी में आई थी।

मीना! हाँ, यही नाम है, उस लड़की का जो उस दिन मिंटो बस में ऐन मेरी बगल की सीट पर बैठी बस की खिड़की से छूटते हुए रास्ते को देख रही थी। उसके बाल हवा में उड़ रहे थे और अंगुलियां गले में पड़ी चेन से खेलने में व्यस्त थी। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि इस तरह भी कोई सिलसिला शुरू हो सकता है, परन्तु हुआ। हम मिलने लगे, बस में, रास्तों पर और कॉलिज में। धीरे-धीरे मीना उस लड़की की जगह लेने लगी और मैंने मीना में उस लड़की को देखना शुरू कर दिया।

संशोधन की एक प्रक्रिया भी यहीं से शुरू हुई। मीना के हिसाब से थोड़ा बहुत परिवर्तन उस लड़की में हुआ और उस लड़की के हिसाब से थोड़ा-सा बदलाव मीना में लाना पड़ा। मीना के चेहरे पर पूरे नौ तिल थे, जो मैंने उस लड़की के चेहरे पर चिपका दिये, उस लड़की के बाल बहुत लम्बे थे, जबकि मीना के बाल कटे हुए। मेरे कहने पर मीना ने लम्बे बाल रखने शुरू कर दिये। परन्तु अभी ये दोनों सिर्फ एक दूसरे के सामने खड़ी थीं और परस्पर बदली जाने वाली चीजें बाहरी थीं। दोनों के भीतरी चेहरों का मिलान अभी शुरू नहीं हुआ था और मैं यह सोचकर कि बाहर की तरह भीतर से भी दोनों एक जैसी हो जाएंगी, अपने में तल्लीन था।

पहाड़ पर खड़े होकर बारिश में भीगना कैसा लगता है, मैं नहीं जानता। मैं कभी इस तरह भीगा भी नहीं। ढेर सारे फूल बिछा कर उन पर चलते हुए कैसा लगता है, मैं नहीं कह सकता। मैंने कभी ऐसा नहीं किया। परन्तु उन दिनों मीना के साथ घूमते हुए मुझे ऐसी ही विचित्र अनुभूतियां हो रही थीं। रास्ते इसी शहर के थे, जिन पर बाकी लोगों की तरह मैं भी चल रहा था, लेकिन जाने क्यों मुझे लगता था मैं सबसे अलग, सबसे ऊंची चोटी पर खड़ा हूँ और आसमान मेरे हाथों की जद में है। जब चाहूँ, हाथ बढ़ाकर किसी भी

लेकिन जल्दी ही मुझे एक झटका लगा। मीना और वह लडकी अचानक ही कई बातों में एक दूसरे की विरोधी हो गई। और दोनों के मतभेद दिनों-दिन बढने लगे। मीना जो अब मेरी पत्नी थी, खुद को भीतर से बदलने के लिए कतई तैयार नहीं थी। बल्कि वह सोचती थी, वक्त के साथ उस लडकी को ही बदल जाना चाहिए। मीना चाहती थी, वह लडकी मेरे सिवाय दुनिया की दूसरी चीजों में भी दिलचस्पी ले, अच्छी जगहों पर घूमे, कीमती कपडे पहने और लोगों से घिरी रहे। मैं लेट आऊँ तो दरवाजे पर खडी होकर मेरी प्रतीक्षा करने के बजाय खुद भी अपनी किसी सहेली के यहाँ हो आए। परन्तु इतने सारे परिवर्तन मुझे मंजूर नहीं थे। मैंने मीना को समझाने का प्रयास किया, किन्तु व्यर्थ। स्थिति यह हो गई कि अब या तो मीना रह सकती थी या फिर वह लडकी। बेशक मीना मेरी पत्नी थी, परन्तु वह लडकी? उसे सिर्फ सपना कहूँ, तब भी बडे जतन से कितनी ही रातों की नींद देकर पाला था उसे। एकाएक अपनी जिन्दगी से निकाल कर कैसे कहीं फेंक सकता था उसे?

मीना और उस लडकी के बीच मैं बँटने लगा। मेरी दुनिया भी दो हिस्सों में बँटती गई। उजाले के हिस्से में दफ्तर, दोस्त, मीना और फिर बच्चे रहने लगे, और अँधेरे के हिस्से में वह लडकी। इन दोनों हिस्सों में यह सुरजीत कुमार नाम का आदमी अलग-अलग तरीके से रहने लगा। उजाले में जो लोग थे, उन्हें हरगिज यह पता नहीं था कि उनसे अलग मेरी अपनी एक दुनिया और भी है, जो हर रात बत्ती बुझते ही जाग जाती है। इस दुनिया से मेरा पहला परिचय भी अजीब ढंग से हुआ था।

मुझे अच्छी तरह याद है, वे अक्टूबर के दिन थे। सरदी अभी आई नहीं थी, पर हवा में हल्की-सी ठंडक रहने लगी थी। दिन छोटे हो रहे थे और धूप जो अभी सडक पर होती, पलक झपकते ही उचक कर पेडों की टहनियों पर जा बैठती। वह शाम का ही कोई वक्त था, तीन-चार दिनों तक दौरे पर रहने के बाद मैं उसी दिन घर लौटा था। मीना बच्चे को लेकर कहीं शादी में गई हुई थी। घर में मैं अकेला था और अकेलेपन से उबरने के लिए शराब पी रहा था। शायद वे बहुत कमजोर क्षण थे, जबकि अचानक कहीं से आकर वह लडकी एकदम मेरे सामने खडी हो गई। मैंने उसकी तरफ देखा तो वह मुस्कराई। मैंने उसे छूना चाहा, परन्तु शीशे की पारदर्शी दीवार हमारे बीच थी। अचानक ही मैं भावुक हो गया। शायद मेरी आँखों में पानी-सा कुछ तैरने लगा था। वह लडकी मेरी नम आँखें बर्दाश्त नहीं कर पाई और आहिस्ता से उठकर मेरे बिल्कुल पास सरक आई। मैं बिस्तर पर लेट गया। वह मेरे बालों में सहलाने

तानाशाह की तरह हो गया था, जो अपनी मर्जी के बिना एक पत्ता तक नहीं हिलने देना चाहता था।

ये ही वे दिन थे, जबकि मैंने उस लड़की को सिनेमा और किताबों के अलावा कॉलिज में, सम्बन्धियों के यहाँ शादियों में, शहर के कुलीन इलाकों मे रास्तों पर ढूंढना शुरू कर दिया था और तभी पहले-पहल मीना मेरी जिन्दगी मे आई थी।

मीना ! हाँ; यही नाम है, उस लड़की का जो उस दिन सिटी बस मे ऐन मेरी बगल की सीट पर बैठी बस की खिड़की से छूटते हुए रास्ते को देख रही थी। उसके बाल हवा मे उड़ रहे थे और अंगुलियाँ गले में पड़ी चेन से खेलने मे मग्न थीं। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि इस तरह भी कोई सिलसिला शुरू हो सकता है. परन्तु हुआ। हम मिलने लगे, बस मे, रास्तों पर और कॉलिज में। धीरे-धीरे मीना उस लड़की की जगह लेने लगी और मैंने मीना में उस लड़की को देखना शुरू कर दिया।

संशोधन की एक प्रक्रिया भी यहीं से शुरू हुई। मीना के हिसाब से थोड़ा बहुत परिवर्तन उस लड़की में हुआ और उस लड़की के हिसाब से थोड़ा-सा बदलाव मीना में लाना पड़ा। मीना के चेहरे पर पूरे नौ तिल थे, जो मैंने उस लड़की के चेहरे पर चिपका दिये, उस लड़की के बाल बहुत लम्बे थे, जबकि मीना के बाल कटे हुए। मेरे कहने पर मीना ने लम्बे बाल रखने शुरू कर दिये। परन्तु अभी वे दोनों सिर्फ एक दूसरे के सामने खड़ी थी और परस्पर बदली जाने वाली चीजें बाहरी थी। दोनों के भीतरी चेहरों का मिलान अभी शुरू नहीं हुआ था और मैं यह सोचकर कि बाहर की तरह भीतर से भी दोनों एक जैसी हो जाएगी, अपने में तल्लीन था।

पहाड़ पर खड़े होकर बारिश में भीगना कैसा लगता है, मैं नहीं जानता। मैं कभी इस तरह भीगा भी नहीं। ढेर सारे फूल बिछा कर उन पर चलते हुए कैसा लगता है, मैं नहीं कह सकता। मैंने कभी ऐसा नहीं किया। परन्तु उन दिनों मीना के साथ घूमते हुए मुझे ऐसी ही विचित्र अनुभूतियाँ हो रही थी। रास्ते इसी शहर के थे, जिन पर बाकी लोगों की तरह मैं भी चल लेकिन जाने क्यों मुझे लगता था मैं सबसे अलग, सबसे ऊंची चोटी हूँ और आसमान मेरे हाथों की जद में है। जब चाहूँ, हाथ बढ़ाकर तारे को तोड़ सकता हूँ।

ये सारी अनुभूतियाँ मीना की वजह से थी, जो अनायास ही मेरी आ गई थी। वह लड़की जिसकी तस्वीर मन में लिये बचपन से था, मीना के रूप में प्रत्यक्ष मेरे सामने थी।

... धरती का पेड़

लेकिन जल्दी ही मुझे एक झटका लगा। मीना और वह लड़की अचानक ही कई बातों में एक दूसरे की विरोधी हो गई। और दोनों के मतभेद दिनों दिन बढ़ने लगे। मीना जो अब मेरी पत्नी थी, खुद को मौसम से बदलने के लिए कतई तैयार नहीं थी। बल्कि वह सोचती थी, वक्त के साथ उस लड़की को ही बदल जाना चाहिए। मीना चाहती थी, वह लड़की मेरे सिवाय दुनिया की दूसरी चीजों में भी दिलचस्पी ले, अच्छी जगहों पर घूमे, कीमती कपड़े पहने और लोगों से घिरी रहे। मैं लेट आऊँ तो दरवाजे पर खड़ी होकर मेरी प्रतीक्षा करने के बजाय खुद भी अपनी किसी सहेली के यहाँ हो आए। परन्तु इतने सारे परिवर्तन मुझे मंजूर नहीं थे। मैंने मीना को समझाने का प्रयास किया, किन्तु व्यर्थ। स्थिति यह हो गई कि अब [illegible] थी या फिर वह लड़की। बेशक मीना मेरी पत्नी थी परन्तु [illegible] सिर्फ सपना नहीं [illegible] तब भी वह जगत में कितनी [illegible] था उसे। तत्पश्चात अपनी जिन्दगी में [illegible] मुझे?

लगी। धीमे-धीमे जमीन मुझसे छूटने लगी और मैं एकदम हल्का होकर आकाश में तैरने लगा। यह क्रम पता नहीं कितनी देर चलता रहा। मैं सो गया था। और जब आँख खुली तो किचन में बरतनों की खटर-पटर सुनाई दे रही थी। मीना लौट आई थी। पर वह लड़की? उसका कोई अता-पता नहीं था। मुझे लगा, मैंने कोई सपना देखा था, परन्तु उसी रात वह फिर आई और फिर कई दिनों तक आती रही। उसके आने और फिर गायब हो जाने का अन्दाज कुछ ऐसा होता था कि जब तक वह मौजूद रहती, मैं अपने को पूरे होश-हवास में महसूस करता परन्तु जब वह चली जाती और मैं नींद में डूब जाता, तब जागते ही मुझे लगता मैंने कोई सपना देखा था।

होता यह कि जैसे ही बत्ती बुझा कर मैं लेटता, थकान के कारण मुझे नींद आ जाती, परन्तु थोड़ी ही देर में किसी आहट से अचानक मेरी आँख खुल जाती। घड़ी की टिक्-टिक् और किवाड़ों की झिरियों में छिपे पिस्सुओं की विचित्र आवाजों के अलावा पूरे घर में सन्नाटा-सा छाया होता। ऐसे में उस लड़की की पदचाप मुझे सुनाई पड़ती। मैं लिहाफ का कोना खिसका कर देखता, अंधेरे के बावजूद वह खड़ी नजर आ जाती। मैं धीमे से उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने पास खींच लेता। वह आकर किसी उदास खयाल की तरह मेरे सिरहाने बैठ जाती और पता नहीं कैसे वे दिन जिन्दा हो जाते, जो बरसों की बर्फ के नीचे दब कर कब के मर चुके थे और अब जिनकी धुंधली-सी याद भी मुझे अनमना कर देती। दरअसल वे दिन भी मैंने मीना के साथ ही शहर के सूने रास्तों, उजाड़ पार्कों और रेस्तराओं में घंटों बतियाते हुए गुजारे थे, परन्तु तब मीना और उस लड़की में मुझे कोई फर्क नजर नहीं आता था। इसी वक्त मुझे बदली हुई मीना का खयाल भी आता और मुझे लगता मीना से शादी करके मैंने भयंकर भूल कर दी है। पछतावा मुझ पर हावी होने लगता और वह लड़की थपकियाँ देकर मुझे सुला देती।

सुबह का उजाला फैलते ही यह तिलिस्म टूट जाता और मैं दफ्तर, दोस्त, मीना और फिर बच्चों में खुद को खपाने लग जाता। लेकिन ये सब तो बहुत पुरानी बातें हैं, शायद सोलह-सतरह साल पुरानी। अब तो इस तरह की सोच एकदम बचकानी लगती है। उस लड़की को देखे हुए भी काफी समय हो गया। शुरू-शुरू में हर रात उसका आना मुझे अच्छा लगता था, लेकिन फिर इस तरह रात के अंधेरे में अतीत की जुगाली करना कोरी भावुकता से अधिक कुछ नहीं लगने लगा। घर, बड़े होते हुए विपुल और रिन्कू, काम के फैलते हुए दायरे और दूसरी कितनी ही समस्याओं ने धीरे-धीरे वह तिलिस्म पूरी

तरह तोड़ दिया। वह लड़की मेरे रूखे व्यवहार के कारण मुझसे दूर होती गई, और एक दिन, जब उसे देखे चार-पाँच साल हो गए थे मैंने सोचा वह मर गई है. इस ख्याल ने मुझे कुछ पल उदास रखा, परन्तु फिर थोड़ी देर बाद मैं अपनी दुनिया में व्यस्त हो गया था।

लेकिन आप शायद ताज्जुब करेंगे, बरसों बाद अभी थोड़ी देर पहले मैंने उस लड़की को जीवित देखा है, न केवल जिन्दा बल्कि उसी रूप में। उमर का जैसे कोई असर ही नहीं था उस पर। मेरे सिर में आधे से ज्यादा बाल सफेद हो चुके और चेहरे की चमड़ी ढीली होकर थोड़ी लटकने लगी है, परन्तु वह अभी भी ज्यों की त्यों थी।

आप भले ही यकीन नहीं करें, परन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि वह लड़की अभी जिन्दा है। अभी थोड़ी देर पहले जब मैं एक सादे कागज की तलाश में विपुल (अपने बच्चे) के कमरे में गया, वहीं मैंने उस लड़की की आहट सुनी। मुझे देखते ही वह हवा में घुल गई लेकिन उसका अधूरा-सा चित्र विपुल की गणित की कापी में बना हुआ था।

रचनाकारों का परिचय

अशोक आत्रेय

—रचनात्मक लेखन में 1965 से सक्रिय। राष्ट्रीय महत्व की सभी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, कविताएँ, लेख, समीक्षाएँ आदि का लगातार प्रकाशन। आधुनिक तथा परम्परागत चित्रकला पर समीक्षाएं विभिन्न पत्रों में प्रकाशित।

—देश की समाचार समितियों व समाचार पत्रों (दैनिक) में विगत 20 वर्षों से सक्रिय लेखन—समाचार सम्पादन।

—समाजसेवा कार्यों में अजमेर तथा उदयपुर के ग्रामीण व आदिवासी अचलों में संलग्न जन सम्प्रेषण – साक्षरता कार्यों से सम्बद्ध लेखन और प्रकाशन।

—राजस्थान विश्वविद्यालय, राजस्थान भण्डार व्यवस्था निगम, टाइम लाइफ बुक्स, इण्डिया बुक हाउस, वॉयस ऑफ अमेरिका, नेशनल ज्यॉग्राफिक सोसायटी आदि संस्थाओं से जुड़ाव।

—प्रकाशित कृतियाँ मेरे पिता की विजय, उदाहरण के लिए (कहानी संग्रह) थव डमाड (लम्बी कविता) टाइम फीचर (मोनोग्राफ)।

—सम्पर्क—डी 38/39 देवनगर, टोंक रोड, जयपुर–302 015

हरदर्शन सहगल

—जन्म — 1935 में कुंदिया, जिला-मियांवाली

—गत 20 वर्षों से निरंतर कहानी-लेखन में सक्रिय। सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। कुछ कहानियाँ उर्दू में भी। कुछ कहानियों का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में हुआ है। छिटपुट लेख, साहित्यिक टिप्पणियाँ भी प्रकाशित।

—प्रकाशित कृतियाँ—मौसम, टेढे मुँह वाला दिन (कहानी संग्रह) सफेद पखों की उडान (उपन्यास) सही रास्ते की तलाश, अपने-अपने काम (बाल साहित्य)।

—राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 1986-87 में 'सफेद पंखों की उड़ान' उपन्यास पर 'रांगेय राघव कथा पुरस्कार' से पुरस्कृत ।

—सम्पर्क—5/E/9 'संवाद' डूप्लेक्स, पवनपुरी, बीकानेर (राज.)

हसन जमाल

—जन्म—21 अगस्त, 1942 जोधपुर ।

—लम्बे अरसे से हिन्दी की सभी अग्रणी पत्रिकाओं में कहानियाँ तथा बाल-कथाएँ प्रकाशित होती रही है ।

—प्रकाशित कृतियाँ—अश अश दश (1982), आवर्गीना (1986) (कहानी संग्रह) अनाथ बालिश्त भर दर्द, कुरआन की कहानियाँ (बाल पुस्तकें) ।

—सम्पादन—शेष (अनियतकालीन)

—सम्पर्क – पन्ना निवास, लोहारपुरा, जोधपुर—342 001

प्रभा सक्सेना

—जन्म —2 सितम्बर, 1945

—शिक्षा—एम ए (हिन्दी), पी एच डी

—कहानी, कविता, आलोचना आदि विधाओं में लेखन तथा विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन । आकाशवाणी से कविताओं और कहानियों का नियमित प्रसारण ।

—प्रकाशित कृतियाँ—टुकड़ों में बंटा इन्द्रधनुष (उपन्यास) उपादेवी मित्रा व्यक्तित्व एवं कृतित्व (शोध प्रबंध)

—सम्प्रति—कानोड़िया कॉलेज, जयपुर के हिन्दी विभाग में अध्यापन ।

—सम्पर्क—प्लॉट न. 51, क्लार्क होटल के सामने, मानवीर नगर, जयपुर ।

हिमांशु भारद्वाज

—जन्म—1 अक्टूबर, 1936, अल्मोड़ा, (उ प्र)

—शिक्षा—एम ए (हिन्दी), पी एच डी

—हिन्दी की प्रायः सभी स्तरीय पत्रिकाओं में चारेक सौ कहानियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी से कहानियों और निबंधों का प्रसारण। कुछ कहानियों का कन्नड़, उर्दू, अंग्रेजी और नेपाली में अनुवाद।

—प्रकाशित कृतियाँ—एक और अनेक, डॉ. आनन्द, दो बीघा जमीन, फिर वही बेसुदी (उपन्यास), पराया सुख, श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ, तलाश, अपना-अपना सुख, गले लगने का सुख (कहानी संग्रह)

—सम्पर्क—138, विद्या विहार, पिलानी–333 031

मोहरसिंह यादव

—जन्म—1 जुलाई, 1947, ग्राम–मैनपुर (अलवर) में।

—शिक्षा—एम. ए (भूगोल)

—प्रकाशित कृतियाँ—बजर धरती, सुखिया का संसार (उपन्यास)

—देश की सभी अग्रणी पत्रिकाओं मे करीब 50 कहानियाँ प्रकाशित।

—सम्प्रति—व्याख्याता भूगोल, राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर।

—सम्पर्क—1, मोती डूंगरी, अलवर (राजस्थान)

शुभू पटवा

—स्वभाव से ही पत्रकार, 1965 से 1970 तक 'सत्य विचार' का सम्पादन, 1970 से 1982 तक 'सप्ताहान्त' का सम्पादन, 'नवभारत टाइम्स' के संवाददाता तथा 'राजस्थान पत्रिका' के बीकानेर मे प्रतिनिधि रहे।

—नवभारत टाइम्स, दिनमान, धर्मयुग, जनसत्ता, नई दुनिया, राजस्थान पत्रिका, इतवारी पत्रिका, मधुमती आदि मे लेख, रिपोर्ताज, कहानी आदि का प्रकाशन।

—प्रकाशित कृतियाँ—उस दिन (उपन्यास), शतरंज का प्यादा, [illegible] (कहानी संग्रह), पर्यावरण की संस्कृति।

—सम्प्रति—स्वतंत्र पत्रकारिता।

—सम्पर्क—भीनासर, बीकानेर-334 403

रामानन्द राठी

—जन्म—जुलाई, 1956, गूगी (अलवर)

—शिक्षा—एम एस-सी (प्राणिशास्त्र)

—प्रकाशित कृति—एक साक्ष्यहीन मौन (कहानी संग्रह) जिसका अंग्रेजी मे Dying in Rajasthan नाम से अनुवाद प्रकाशित।

—सम्पादन—

1 कला के सरोकार (कलाविषयक निबन्धों का संग्रह) 2 Elysium in the Halls of Hell (Poms by David Ray—An American Poet) 3 Dispossessed Nests (Poms by Jayant Mahapatra) 4 A Prayer in Daylight (Poms by Yuyutsu R D)

—सम्पर्क—फीचर सम्पादक अग्रप्रभा 19 विकास पथ अजमेर।

मालचंद

—जन्म -19 मार्च, 1958।

—शिक्षा—एम ए (आधा) हिन्दी मे।

—प्रकाशित कृतियाँ—पानीदार तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) पर्यायवाची (उपन्यास), धुंधन्द (राजस्थानी कहानी-संग्रह) भोळावण (राजस्थानी उपन्यास)

—अनेक कहानियाँ पुरस्कृत तथा देश की अग्रणी पत्रिकाओं में कहानियों का अनवरत प्रकाशन।

—सम्पर्क—बाड़ेबास, श्री डूंगरगढ़ (चूरू) राजस्थान।

श्याम जांगिड

—जन्म—9 मई, 1949, चुरू

—शिक्षा—वाणिज्य में स्नातक

—बचपन से ही लेखन-अध्यापन का शौक तथा रंगमंच से जुड़ाव।

—1971 में प्रथम कहानी प्रकाशित तथा 1973 में एक कहानी पुरस्कृत। विभिन्न पत्रिकाओं में दर्जनों कहानियाँ, लेख तथा व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित किन्तु कहानी विधा अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम।

—प्रकाशित कृति—जुड़े हुए फासले (कहानी संग्रह)

—सम्पर्क—पाणिनि कुटीर, काठमण्डी, स्टेशन रोड, चिड़ावा-333 026

सत्यनारायण

—जन्म—मां की अंगुलियों के हिसाब से आसोज की अमावस, संवत् 2013, सरेरी स्टेशन, जिला भीलवाड़ा।

—शिक्षा—एम ए., पी.एच.डी।

—नौकरियाँ—कण्डक्टरी से ट्रेवलिंग एजेन्सी, प्राध्यापकी से पत्रकारिता तक अनेक प्रकार की नौकरियों के बाद फिलहाल स्वतंत्र लेखन एवं पत्रकारिता।

—लेखन शौक न होकर एक विवशता। विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

—सम्पर्क—'ज्वाला' साप्ताहिक, एम. आई. रोड, जयपुर

अशोक सक्सेना

माधव नागदा

—जन्म—लालमादड़ी (नाथद्वारा)

—शिक्षा—एम एस-सी (रसायन शास्त्र)

—विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे एव कथा-सकलनों मे कहानियाँ प्रकाशित ।

—प्रकाशित कृति—उसका दर्द (कहानी सग्रह)

—'उसका दर्द' सग्रह पर राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 1987 मे सुमनेश जोशी पुरस्कार (प्रथम प्रकाशित कृति के लिए) से पुरस्कृत ।

—कुछ कहानियाँ कन्नड, तेलुगु और सिंधी मे अनूदित । राजस्थानी मे भी लेखन ।

—सम्पर्क—व्याख्याता रसायन शास्त्र, राजकीय उ मा विद्यालय, राजसमन्द (उदयपुर) राजस्थान

कमलेश शर्मा

—जन्म—उ. प्र के एक गाव मे ।

—शिक्षा—एम ए (समाज शास्त्र)

—लेखन—महज व्यसन, सो भी गत सात आठ वर्षों से लगा है । पर अब लगता है कि एक विवशता भी बन गया है । विविध पत्रिकाओं म अनेक कहानियाँ प्रकाशित तथा आकाशवाणी मे प्रसारित । 'हीरामन' शीर्षक उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य ।

—सम्पर्क—द्वारा श्री डी सी शर्मा, सयुक्त आयुक्त, देवस्थान, उदयपुर ।

पुष्पा रघु

—जन्म—1939 मे गाजियाबाद (उ प्र)

—अग्रज डॉ प्रेमनारायण शर्मा के संसर्ग से लिखने का शौक बचपन से ही लग गया । विभिन्न पत्रिकाओं मे रचनाएँ प्रकाशित ।

—प्रकाशित कृति—एक थी पग्नी (कहानी सग्रह)

—सम्प्रति—अनेक सस्थाओं मे अध्यापन करने के पश्चात पीरामल बालिका उ मा विद्यालय, बगड मे प्राचार्या ।

श्याम जांगिड़

—जन्म—9 मई, 1949, [illegible]

—शिक्षा—वाणिज्य में स्नातक

—बचपन से ही लेखन-अध्ययन का शौक तथा रंगमंच से जुड़ाव।

—1971 में प्रथम कहानी प्रकाशित तथा 1973 में एक कहानी पुरस्कृत। विभिन्न पत्रिकाओं में दर्जनों कहानियाँ, लेख तथा व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित किन्तु कहानी विधा अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम।

—प्रकाशित कृति—जुड़े हुए फासले (कहानी संग्रह)

—सम्पर्क—पाणिनि कुटीर, काठमण्डी, स्टेशन रोड, चिड़ावा-333 026

सत्यनारायण

—जन्म—मां की अगुलियों के हिसाब से आसोज की अमावस, सवत् 2013, सरेरी स्टेशन, जिला भीलवाडा।

— शिक्षा—एम ए, पी एच डी।

—नौकरियां—कण्डक्टरी से ट्रैवलिंग एजेन्सी, प्राध्यापकी से पत्रकारिता तक अनेक प्रकार की नौकरियो के बाद फिलहाल स्वतंत्र लेखन एव पत्रकारिता।

—लेखन शौक न होकर एक विवशता। विभिन्न पत्रिकाओ मे रचनाएँ प्रकाशित।

—सम्पर्क—'ज्वाला' साप्ताहिक, एम आई रोड, जयपुर

अशोक सक्सेना

—जन्म—23 दिसम्बर, 1953

—शिक्षा—एम. ए.

—अब तक डेढ दर्जन कहानियां प्रकाशित तथा इतनी ही आकाशवाणी से प्रसारित।

—कुछ समय सचार मत्रालय, भारत सरकार मे नौकरी, फिर राष्ट्रदूत के सम्पादकीय विभाग मे कार्य, कुछ समय तक स्वतत्र पत्रकारिता और सम्प्रति एक शिक्षण सस्थान मे सम्बद्ध।

—सम्पर्क—सूरदास का घेर, भरतपुर।

माधव नागदा

—जन्म—लालमादड़ी (नाथद्वारा)

—शिक्षा—एम. एस-सी. (रसायन शास्त्र)

—विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में एवं कथा-संकलनों में कहानियाँ प्रकाशित।

—प्रकाशित कृति—उसका दर्द (कहानी संग्रह)

—'उसका दर्द' संग्रह पर राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 1997 में सुमनेश जोशी पुरस्कार (प्रथम प्रकाशित कृति के लिए) से पुरस्कृत।

—कुछ कहानियाँ कन्नड़, तेलुगु और सिन्धी में अनूदित। राजस्थानी में भी लेखन।

—सम्पर्क—व्याख्याता रसायन शास्त्र राजकीय उ. मा. विद्यालय राजनगर (उदयपुर) राजस्थान

श्याम जांगिड़

—जन्म—[illegible] मई 1949, चू[illegible]

—शिक्षा—वाणिज्य में स्नातक

—बचपन से ही लेखन-अध्ययन का शौक तथा रंगमंच में जुड़ाव।

—1971 में प्रथम कहानी प्रकाशित तथा 1973 में एक कहानी पुरस्कृत। विभिन्न पत्रिकाओं में दर्जनों कहानियाँ, लेख तथा व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित किन्तु कहानी विधा अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम।

—प्रकाशित कृति—जुड़े हुए धागे (कहानी संग्रह)

—सम्पर्क—शान्ति कुटीर, बाढ़मण्डी स्टेशन रोड, चिड़ावा-333 026

सत्यनारायण

—जन्म—माँ की अंगुलियों के हिसाब से आसोज की अमावस, संवत् 2013, गरेरी स्टेशन, जिला भीलवाड़ा।

—शिक्षा—एम ए, पी एच डी.।

—नौकरियाँ—कण्डक्टरी से ट्रेवलिंग एजेन्सी, प्राध्यापकी से पत्रकारिता तक अनेक प्रकार की नौकरियो के बाद फिलहाल स्वतंत्र लेखन एव पत्रकारिता।

—लेखन शौक न होकर एक विवशता। विभिन्न पत्रिकाओ मे रचनाएँ प्रकाशित।

—सम्पर्क—'ज्वाला' साप्ताहिक, एम आई रोड, जयपुर

अशोक सक्सेना

—जन्म—23 दिसम्बर, 1953

—शिक्षा—एम. ए.

—अब तक डेढ दर्जन कहानियाँ प्रकाशित तथा इतनी ही आकाशवाणी से
~ सारित।

मय सचार मत्रालय, भारत सरकार मे नौकरी, फिर राष्ट्रदूत के
ोय विभाग मे कार्य, कुछ समय तक स्वतत्र पत्रकारिता और
क शिक्षण संस्थान से सम्बद्ध।

दास का घेर, भरतपुर।

ो का पेड़

हेतु भारद्वाज

जन्म—15 जनवरी 1937 रामनेर (उ.प्र.) नामक गाँव में।

शिक्षा—राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से हिन्दी में एम.ए., पीएच.डी.।

सम्प्रति—राजकीय महाविद्यालय, नीम का थाना में अध्यापन।

रचनाकर्म—राजस्थान की हिन्दी युवा कहानी को इमेज देने वाले अग्रणी कथाकार। 'तटस्थ' त्रैमासिक का सम्पादन तथा 'आज की कविता' आन्दोलन का प्रस्तावन।

प्रकाशित कृतियाँ—तीन कमरों का मकान, जमीन से हटकर, धीरे गाव आ रहे हैं, तीर्थ यात्रा, सुबह-सुबह, (कहानी संग्रह) बनती बिगड़ती लकीरें (लघु उपन्यास) उधार का लिया जाना (व्यंग्य) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा (शोध) परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य (आलोचना)।

—'जमीन से हटकर' कहानी संग्रह पर 1980 में राजस्थान साहित्य अकादमी का अकादमी पुरस्कार।

—प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ– 1985, 1986 तथा 1987 का सम्पादन।

—हिन्दी की सभी अग्रणी पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ, एकांकी, व्यंग्य, समीक्षात्मक निबंध तथा टिप्पणियों का नियमित लेखन।

सम्पर्क—छावनी, नीम का थाना (राजस्थान) 332 713